कर अचरज मानके उनकी हंसी करते हुए लांघ कर वेगसे चले गये। इस से बड़े बड़े तपस्वी वालखिल्य ऋषियोंने अति दुःखी और क्रोधयुक्त होकर इन्द्र के भयदायी एक महान् कार्य्य का अनुष्ठान किया। हे शौनकजी! आप सुने जाइये। वे व्रतशील ऋषिलोग इस कामनासे, कि "हमारे व्रत और तपके फल से आज कामवीर्य्य, कामचारी, देवराज को भयदायी, इन्द्र से सैकड़ों गुणी सूरता और वीरतापूर्ण मनोहर उग्रमूर्त्ति दूसरे एक इन्द्र देवलोक में उत्पन्न होवें" बड़े बड़े मन्त्रों से अग्नि में आहुति चढ़ाने लगे। देवराज इन्द्र यह सुनकर बड़े दुःखी हुए और व्रतशील कश्यप ऋषि की शरण ली। प्रजापति कश्यप ने देवराजकी बात सुनकर बालखिल्य ऋषियोंके समीप जाकर पूछा, कि "क्या आप लोगोंका कार्य्य पूरा हो गया?" सत्यवादी बालखिल्य लोग बोले, कि "हां हुआ है।" अनन्तर कश्यप प्रजापति जी उनको समझाकर बोले, "हे तपोधनो! इन्होंने ब्रह्माजी की आज्ञा से तीनो भुवन के इन्द्रका पद प्राप्त किया है, आप लोगभो दूसरे इन्द्रके लिये चेष्टा कर रहे हैं, पर ब्रह्मा जीको बात झूठी कर देनी आपको नहीं चाहिये, हे सत्तमो! आपके अभीष्ट सङ्कल्पकोभी मिथ्या करना नहीं चाहता हूं, आपने जिसको इन्द्र बनाना चाहा है, वह महाबली और वीर्य्यशाली पुरुष पक्षियोंका इन्द्र होवे; देवराज इन्द्र प्रार्थना कर रहे हैं, कि आप उन पर प्रसन्न होवें। तपोधन बालखिल्यगण, मुनिश्रेष्ठ कश्यप प्रजापति से ऐसे कहे जाकर सम्मान पूर्वक उनसे बोले, "हे प्रजापते! हम सबोंने इन्द्रकी उत्पत्ति के निमित्त और आपकी सन्तान उपजाने की अभिलाषासे इस यज्ञ का प्रारम्भ किया है, सो आप हमारे कर्म्मफल को लेकरके जो कुछ अच्छा जान पड़े, वही कीजिये।

श्रीसौतिजी बोले, कि इस समय शुभलक्षणा कल्याणी यशस्विनी दक्षपुत्री तपोरता विनता ऋतुस्नान-पूर्व्वक व्रत कर और शुचि होकर पुत्र की कामना से पतिके पास गई। कश्यपजी उस्से बोले, "देवि! तुम जो चाहती हो, वह पूरा होगा, मेरे सङ्कल्प और बालखिल्य मुनियोंके तपोबलसे तुम्हारे गर्भसे बड़े भाग्यवान्, तोनों भुवन में प्रधान दो पुत्र उत्पन्न होकर त्रिलोक में पूजे जायंगे। भगवान् कश्यपजी फिर विनता से बोले, "प्यारी! तुम अप्रमत्त होकरके अपने सुमहान् गर्भ को धारण किये रहना, क्योंकि यह लोकों में माननीय महावीर कामरूपी दोनों पक्षी सम्पूर्ण पक्षियों पर अधिकार फैलाये रहेंगे।" अनन्तर कश्यप प्रजापति जी प्रसन्नहृदय से देवराजसे बोले, "हे पुरन्दर! तुम्हारी सहायता करनेवाले दो भाई उपजेंगे, उन से तुम्हारी कोई हानि नहीं होगी, हे इन्द्र! तुम्हारा दुःख दूर होवे, तुम सदा इन्द्र बने रहोगे, पर तुम फिर कभी ब्रह्मज्ञानी, वज्रसमान वचन बोलनेवाले, अति क्रोधी ब्राह्मणों का अहङ्कार से अपमान न करना। कश्यप जीके इतना कहने पर स्वर्गनाथ भय को दूरकर स्वर्गधाम को पधारे; विनता भी मनोरथ पूर्ण होने के कारण प्रसन्न हुई और समय आने पर अरुण और गरुड़ यह दो सन्तान प्रसव कीं; पर अरुण विकलाङ्ग होकर सूर्य्य के सारथि बने; गरुड़ पक्षियोंके इन्द्र के पद पर बैठे। हे भृगुनन्दन! उस पक्षिराज गरुड़के आश्चर्य्य कार्य्य की कथा कहता हूं, सुनिये।

आदिपर्व्वमें ईकतीसवा अध्याय समाप्त।

श्रीउग्रश्रवाजी बोले, कि हे द्विजश्रेष्ठ! वृहस्पति जीके वचन सुनके देवों के पूर्व्वोक्त रीति से बनठन लेने पर पक्षीराज गरुड़ बड़े वेगसे उनके पास आ पहुंचे। देवगण महाबली गरुड़ को देखते ही कांपने लगे और भयसे

यह भूलकर, कि क्या करना चाहिये, आप ही आप सर्व्व अस्त्रों से एक दूसरे को मारने लगे। उन में बिजली और आगके समान प्रकाशमान् अति वीर्य्यवान् अप्रमेयात्मा विश्वकर्म्मा जी अमृत रखते थे, वह क्षणभर पक्षीवर से लड़कर पङ्ख, चोंच और नखों की चोट से काटे कूटे जाकर मरने पर हुए। आगे पक्षीराजने पङ्खों की हवासे सम्पूर्ण लोकों को उजाले से खाली करके उस धूल से देवोंको भो आच्छादित कर लिया। देवगण धूलसे आच्छादित होकर मोहयुक्त हो गये और अमृत के रखवारे भी अन्धों के समान बनकर गरुड़जी को देख नहीं सके। पक्षीनाथने इस प्रकार से स्वर्गधाम को विकल किया और पङ्ख और चोंचों की चोटोंसे देवों को घायल करने लगे। अनन्तर सहस्रनेत्र इन्द्रने पवनदेवको आज्ञा दी, कि "हे पवन! तुम तुरन्त इस धूल-वृष्टि को रोको। यह तुम्हारा ही कर्त्तव्य है।" यह सुनकर महाबली बायु ने सम्पूर्ण धूल हटा दी, इससे आकाश की अंधेरी साफ होनेपर देवोंने उस पक्षी पर चढ़ाई की। महाबली गरुड़ देवोंसे आघात पाकर सर्व्वभूतों में भय उपजानेवाले प्रलयकालिक बादल के समान अति घोर गर्ज्जन करने लगे और वह महावीर्य्यवान् शत्रुनाशी पक्षीनाथ आकाशको उड़े। कवचधारी, इन्द्रादि सम्पूर्ण देवोंने आकाश को उड़े और अपने ऊपर विराजते हुए गरुड़जी को पट्टिश, परिघ, शूल, गदा, प्रज्वलित क्षुरप्र, सूर्य्य समान चक्रादि नाना अस्त्रों से घेर लिया। पक्षीनाथ चारों ओर से भांति भांति के अस्त्रों की मार सहकरके भी घोर युद्ध करने लगे, एक वार भी विकल नहीं हुए, वरण मानों तेज से सबों को जलाने लगे वह प्रतापी विनता-पुत्र पङ्ख और छाती की चोट से देवों को चारों ओर गिराने लगे; पक्षीराज गरुड़ से गिराये जाकर और चोंच तथा नखों की चोटों से घायल होकर लड़ाई करते हुए बड़े तेजस्वी देवगण अति कातर-चित्तसे मुंह से रक्त गिराने लगे। और पूरी हार मान कर वार वार पीछे देखते हुए भागने लगे। उनमें से साध्य और गन्धर्व्वलोग पूर्व्व ओर, वसु और रुद्रगण दक्षिण ओर, आदित्यगण पश्चिम ओर और दोनों अश्विनीकुमार उत्तर ओरको पधारे। पक्षीनाथ गरुड़ अश्वक्रान्द, रेणुक, क्राथन, तपन, उलूक, श्वसन, निमिष, प्ररुज, पुलिन इन महावीरों से घोर युद्ध करने लगे। जिस प्रकार प्रलयकाल में पिनाकधारी क्रुद्ध होकर पिनाक से सबों का नाश करते हैं, उसी प्रकार शत्रु-मथनेहारे विनतापुत्रने पङ्ख, चोंच और नखों से उन वीरों को घायल किया। महाबलो बड़े उत्साही वे सब देवता सर्व्व शरीर में घायल होकर रक्तवर्षानेवाले बादल की भांति शोभा पाने लगे। पक्षीश्रेष्ठ गरुड़ने उन वीरों को घायल कर अमृत लाने को जाकर देखा, कि अग्नि-देवता अमृत को चारों ओर से घेरे हैं, उस अग्नि की शिखायें सब तरफ फैली हैं, जान पड़ता है, कि मानों वह शिखा तेज हवा से उड़कर दिननाथ को भी जला रही हैं। यह देख करके वेगवान्, महात्मा, शत्रु-दुःखदायी, कामरूपी गरुड़ने चलकर आठ सहस्र एक सौ मुंह धारण करके उन सब मुखों से सम्पूर्ण नदियों का जल पीकर फिर अतिवेग से आकर उस जलको छिरकाकर जलती हुई आगको बुझाया और बुझा करके ही अमृत लाने के निमित्त भीतर घुसने को दूसरी एक अति छोटी देह धारण की।

आदिपर्व्व में बत्तीसवां अध्याय समाप्त।

श्रीउग्रश्रवाजी बोले, कि गरुड़, किरणों से सुशोभित उस सुवर्णमय शरीरको धारणकर, जिस प्रकार जल का सोता समुद्र में जा घुसता

है, उसी प्रकार से बलपूर्व्वक वहां जा घुसे और देखा, कि जलते हुए सूर्य्य की भांति, अति भयानक, लोहे से बने अस्तुरेके समान तीक्ष्णधार एक चक्र अमृत की चारों ओर सदा घूम रहा है। देवोंने अमृत चुरानेवालों को काटने के लिये उस कठोर यन्त्रको बनवा रखा था! पक्षीनाथ उस यन्त्र में प्रवेश की थोड़ी सी जगह देखकर आरों के बीच के छेद से भीतर जा घुसे और उसमें देखा, कि प्रज्वलित अग्नि के समान चमकीले, बिजली के समान चञ्चल जीभवाले अति वीर्य्यशाली, प्रज्वलित मुख और नेत्रवान् देखने में विष-समान, महा-घोर, सदा क्रोधी, अति बली, लाल नेत्रवाले, आखों की पुतली हर घड़ी स्थिर किये हुए, दो कराल सर्प अमृत रखने के निमित्त सदा नियुक्त हैं। उन दोनों में से एक जभी किसीको देखे, तभी वह भस्म हो जाय। विनता-पुत्र गरुड़ने सहसा धूल फेंककर उन दोनों सर्पों की आखें बन्द कर दीं और आकाश से अलक्षित भावसे चढ़ाईकर उनके शरीर में मारने लगे, और बिना विलम्ब उन को टुकड़े टुकड़े कर अमृत पर दौड़े। अनन्तर वह महाबली विनतापुत्र यन्त्र को पूर्णरूपसे मथनपूर्व्वक अमृत का कलसा उठाकर स्वयं न पी करके बाहर निकलने के पश्चात् बड़े वेगसे उड़े और ऐसी लड़ाई आदिसे भी न थककर सूर्य्य का तेज रोककर चलने लगे। जानेके काल में आकाश में विष्णुजीसे भेट हुई। श्रीनारायणजी उनको अमृत पीने के लोभ से रहित देखकरके प्रसन्न होकर बोले, "हे पक्षि! तुम वर मांगो।" पक्षीवर बोले, "मुझको यह वर दो, कि मैं तुम्हारे ऊपर विराजूं" और फिर यह प्रार्थना की, कि अमृत न पोने पर भी मैं अजर अमर हो सकूं। विष्णुजीने "तथास्तु" कहकर वही वर दिया। विनतानन्दन गरुड़ दोनों वर पाकर विष्णुजी से बोले, कि तुम भी कोई वर मांगो। मैं वह तुमको दूं। विष्णु-महाबली, वीर्य्यशाली गरुड़से प्रार्थनाकी, कि "तुम मेरे वाहन बनो।" आगे भगवान् नारायणने ऊपर रखने के निमित्त गरुड़ को ध्वजा पर विराजने कहा। गरुड़जी देवोंके देव श्रीनारायण जोसे "तथास्तु" कहकर वायु को हरा करके अति वेगसे चलने लगे। इन्द्रजीने पक्षीनाथ गरुड़को अमृत हरकर ले जाते देख क्रोध से उन पर वज्र मारा। पक्षीनाथ गरुड़ वज्रकी मार खाकर हंसकर देवराज से बोले, "हे इन्द्र! जिस ऋषिकी हड्डोसे वज्र बना है, उनके सम्मान रखनेके निमित्त और तुम्हारे वज्रकी मर्य्यादा बनाये रखने को मैं एक पर त्याग देता हूं, तुमको इसका भी अन्त नहीं मिलेगा; देखो, तुम्हारे इस वज्र की चोट से मुझको कुछ भी पीड़ा जान नहीं पड़ी।" पक्षीश्रेष्ठने यह कहकर एक पर गिरा दिया। सब लोगोंने उस फेंके हुए सुन्दर पर की अपूर्व्व शोभा देखकर उसका "सुपर्ण" नाम रखा। सहस्रनेत्र पुरन्दर यह अत्याश्चर्य्य देखकर ऐसा सोचते हुए, कि "यह पक्षी लघु नहीं है; निश्चय कोई महाप्राणी होगा" बोले, "हे पक्षीवर! मैं जानना चाहता हूं, कि तुम्हारा बल कितना है और तुम से सदा मित्रता रखने की इच्छा होती है।

आदिपर्व्वमें तैंतीसवां अध्याय समाप्त।

गरुड़जी बोले, कि हे देवराज, पुरन्दर! तुम मेरे साथ मित्रता करना चाहते हो; अच्छा, वही होगा। मेरा बल बहुत और न सहनेयोग्य है, हे शतक्रतो! पण्डितलोग अपने बल की प्रशंसा वा स्वगुण कीर्त्तन नहीं करते; हे मित्र! तुम मित्र बनकर पूछते हो, इस लिये कहता हूं, नहीं तो बिना कारण अपनी प्रशंसा की बात न कहनी चाहिये। मैं एक पङ्खसे पर्व्वत, नगर, वन, फलवारी, और समुद्र-जल

सहित धरती को उठा ले सकता हूं, यदि तुम भी उस पङ्ख पर बैठे रहो, तौभी मुझे कष्ट नहीं जान पड़ेगा। ज्यादा कहने का प्रयोजन नहीं, स्थावर-जङ्गम पूर्ण सम्पूर्ण भुवनको एकत्र कर एकही काल में लेजाने में मैं थकता नहीं, इतना बल मुझमें है। श्रीउग्रश्रवाजी बोले, कि हे शौनक! सर्व्व लोकोंके हित-चाहनेवाले प्रभु किरीटधारी, श्रीमान् देवराज वीरवर गरुड़ के यह वचन सुनकर बोले, "गरुड़! तुमने जो कुछ कहा, सभी तुम्हारे लिये सम्भव हैं, इस क्षण तुम मेरे से मित्रता करो और तुमको अमृत का प्रयोजन न हो, तो वह मुझे लौटा दो, तुमने जिनको अमृत देने की इच्छा की है, वे सदा हमारी हानि किया करते हैं।" गरुड़जी बोले, "किसी विशेष कारण से अमृत ले जाता हूं, पर किसी को यह अमृत पीने नहीं दूंगा। हे स्वर्गपति, सहस्र नेत्र! मैं इस अमृत के कलसे को ले जा करके जहां रखूंगा, तुम वहां से उसी क्षण हर लाना। इन्द्र जी बोले, "हे अण्डोत्पन्न द्विजराज! तुम्हारी इस बातसे मैं बड़ा प्रसन्न हुआ। तुम मुझसे जो कुछ वर लेना चाहो मांग लो।" श्रीउग्रश्रवा जी बोले, कि यह बात सुनकरके गरुड़ कद्रुके पुत्रों के व्यवहार और माताके दासीपन के कारणरूपी कद्रुके छल को स्मरण कर बोले, "मैं हर तरह से समर्थ होने पर भी तुमसे यह वर मांगता हूं, कि हे शक्र! महाबली सर्पगण मेरे भोजन की सामग्री बनें।" दानवनाशी इन्द्रने "तथास्तु" कहकर योगीश्वर, देवों के देव महाप्रभावी हरि के समीप जा करके यह सब कह सुनाया। हरिके गरुड़ की कही हुई हरेक बात मान लेने पर भगवान् स्वर्गनाथने गरुड़ को पुकार कर फिर कहा, कि तुम्हारे अमृत रखते ही मैं उसे हर लाऊंगा। अनन्तर गरुड़ उसी-क्षण माता के निकट लौट गये और प्रसन्न हृदयसे सर्पों से बोले, कि हे नागो! मैं तुम्हारे निमित्त यह अमृत लेता आया हूं और उसे कुशापर रखता हूं, तुम स्नान और मङ्गला-चरण करके अमृत पिओ। तुम सबोंने मिल-कर जैसा कहा था, मैंने वैसाही किया है, सो आजसे मेरी माता सेवकाई से छूट जायं। यह सुनकर सर्पगण ने गरुड़ जीसे "तथास्तु" कह कर विनता को सेवकाई से छुड़ाकर नहाने गये, इस अवसरमें इन्द्र भी अमृतका कलसा लेकर स्वर्गधाम को पधारे। सर्पों ने प्रफुल्लित चित्तसे स्नान, जप और मङ्गलाचरण करके अमृत पीने के निमित्त, जहां कुशासन पर अमृत का कलसा धरा था, वहां आ करके देखा, कि कलसा चोरी गया है, तब उन्होंने सोचा कि, "हमने जैसे छल से विनता को दासी बनाया था, गरुड़ ने भी वैसेही छल से उस को सेवकाई से छुड़ाया है।', आगे इस विचारसे, कि कुशासन पर अमृत रखा था, सर्पगण जन कुशोंको चाटने लगे, इससे उनकी जीभ कट कर दो भागों में बंट गई। अमृत के स्पर्श से कुश भी पवित्र हुआ। महात्मा गरुड़ इस प्रकारसे अमृत हरण तथा प्रत्या-हरण करके सर्पों को दो जीभवाले बनाया। अनन्तर वह पक्षीराज प्रफुल्लित हृदय से माता के साथ उस वन में बसने लगे और सम्पूर्ण सर्पों से भले प्रकार पूजे जाकर और सर्पभक्षक बनकर दूसरों के करने के अयोग्य कीर्त्ति से माताका आनन्द बढ़ाने लगे। जो नर ब्राह्मणों की सभा में यह कथा सुनते वा पढ़ते हैं; वह अति प्रभावी पक्षीराज गरुड़ जीके चरित्र कहने का पुण्य लेकरके बिना सन्देह देवलोक में पधारते हैं।

आदिपर्व्वमें चौंतीसवां अध्याय समाप्त।

श्रीशौनकजी बोले, कि हे सूतनन्दन! माता से सर्पों का शाप और अरुण से विनता

का शाप इन दोनों के कारण तुमने कह सुनाये और पति से कद्रु और विनता के वर पाने का वृत्तान्त वर्णनपूर्व्वक विनता के पुत्रोंके नाम कह चुके हो, पर हे सौति! सर्पों के नाम कहे नहीं हो; और कुछ नभी हो, तो प्रधान प्रधान सर्पों के नाम कह सुनाओ, हमकी सुनने की अभिलाषा है। श्रीउग्रश्रवा जो बोले, कि हे तपोधन! सर्पों के बहुत होने के कारण सबोंके नाम नहीं कहूंगा, केवल प्रधान प्रधानोंके नाम कहता हूं, सुनिये।

सबों से पहिले शेषनागने जन्म लिया, अनन्तर वासुकि का जन्म हुआ, इसके पश्चात् ऐरावत, तक्षक, कर्कोटक, धनञ्जय, कालकेय, मणिनाग, पूरण, पिञ्जरक, एलापत्र, वामन, नील, अनिल, कल्माष, शवल, आर्य्यक, उग्रक, कलशपोतक, सुरामुख, दधिमुख, विमल-पिण्डक, आप्त, करोटक, शङ्ख वालिशिख निष्ठानक, हेमगुह नहुष, पिङ्गल, वाह्यकर्ण, हस्तिपद, मुद्गरपिण्डक, कम्बल, अश्वतर कालीयक, वृत्त, सम्वर्त्तक, पद्म, महापद्म, शङ्खमुख, कुष्माण्डक, क्षेमक, पिण्डारक, करवीर, पुष्पदंष्ट्र, विल्वक, विल्वपाण्डर, मूषकाद, शङ्ख शङ्खशिरा पूर्णभद्र, हरिद्रक, अपराजित, ज्योतिक, श्रीवह, कौरव्य, धृतराष्ट्र, शंखपिण्ड, विरजा, सुवाहु, शालिपिण्ड, हस्तिपिण्ड, पिठरक, सुमुख, कौणपाशन, कुठर, कुञ्जर, प्रभाकर, कुमुद, कुमुदाक्ष, तित्तिरि, हलिक कर्द्दम, बहुमूलिक, कर्कर, अकर्कर, कुण्डोदर, और महोदर, यह सब प्रधान प्रधान नागों के नाम कहे गये; हे द्विजश्रेष्ठ! अधिक होने के भयसे दूसरे सब सर्पों के नाम नहीं कहे। हे तपोधन! इनके पुत्र पौत्रादि भी बहुत हैं, इसलिये उनको कथा भी नहीं सुनाई, वास्तव में अनेक सहस्र, अनेक अजुत, अनेक अर्व्बुद नाग हैं, उनकी संख्या भी नहीं हो सकती है।

आदिपर्व्व में पैंतीसवां अध्याय समाप्त।

श्रीशौनकजी बोले, कि बेटा! तुम महावीर्य्यशाली सर्पों की कथा कह चुके, पर यह बोलो, कि उन्होंने माताके शाप को सुनने के पश्चात् क्या किया था। श्रीउग्रश्रवाजो बोले, कि तब सर्पों में अति यशस्वी भगवान् शेष नाग कद्रुको छोड़कर गन्दमादन, वदरिका, गोकर्ण, पुष्कर, हिमालय आदि सम्पूर्ण तीर्थ और आश्रमों में घूमकर तपोमग्न, व्रतशील, एकान्तवासी जितेन्द्रिय और वायुभक्षी होके कठोर तप करने लगे। जटा और चीरधारी हो करके कठोर तप करते करते उनका मांस, चमड़ा और नसें सूख गईं। आगे पितामह ब्रह्माजी से उनकी भेट होने पर ब्रह्माजो ने उनको अटल धैर्य्य से तप करते देखकर कहा, कि हे शेष! तुम यह क्या करते हो? प्रजाओं का जिससे मङ्गल हो, वही करो; हे अनघ! तुम कठोर तप से प्रजाको दुःख दे रहे हो; हे शेष! मुझसे कहो, कि तुम्हारे चित्त में कौनसी अभिलाषा है। शेषजी बोले, कि मेरे सब सहोदर भाई ही दुष्ट-बुद्धि हैं, उनके साथ एकत्र वसना नहीं चाहता, सो आप वैसी आज्ञा दीजिये। वे आपस में शत्रुके समान सदा द्वेष रखते हैं, इस हेतु मैं मन में यह सोच कर तपकर रहा हूं, कि फिर उनसे भेट न करना पड़े। वे सदा विनता और उसके पुत्रकी हानि किया करते हैं, हमारे सौतेले भाई विनतापुत्र गरुड़, अपने पिता महानुभाव कश्यप प्रजापति के वर से अति बलवीर्य्यशाली हुए हैं; इस हेतु मेरे सहोदरगण सदा उनकी हिंसा किया करते हैं, सो मैं तप करके यह शरीर पतन करूंगा, कि फिर दूसरे जन्म में भी उन भाइयों से किसी प्रकार संसर्ग करना न पड़े। शेषके यह कहने पर पितामह ने उत्तर दिया, कि हे शेष! मैं तुम्हारे भाइयों के सब व्यवहार जानता हूं, तुम्हारी माता के शाप से उनका जो अति भय हुआ है, वह भी

जानता हूं, पर पहिले हो उसका प्रतिकार होगया है, दो तुम भाइयों के निमित्त दुःख मत करो। हे शेष! मैं तुम पर अति प्रसन्न हुआ हूं, तुमको वर दूंगा, जो कुछ चाहते हो, मांगो। हे सर्पश्रेष्ठ! सौभाग्यवश तुम्हारा चित्त धर्म्म पर झुका है, सो तुम्हारी बुद्धि किसी तरह धर्म्म से न छूटे। शेषजी बोले, कि हे देवों के पितामह! प्रभो! आप मुझे यही वर दीजिये, कि धर्म्म, शान्ति और तप में मेरा चित्त बना रहे; यही मेरा अभिप्राय है ब्रह्माजी बोले, कि हे शेष! मैं तुम्हारे इस शान्तिगुणसे प्रसन्न हुआ, तुम मेरी आज्ञा से प्रजाओं के हितके निमित्त यह कार्य्य करो, कि पर्व्वत, नगर, वन, फुलवारी और समुद्र सहित इस धरती को ऐसी दृढ़ता से धरे रहो, कि वह अबके समान किसी प्रकारसे न डोलने पावे। शेष जी बोले, कि देव! आप वरदायी महीपति, भूतपति, प्रजापति और जगपति हैं, अतएव जब आप आज्ञा करते हैं, मैं तब पृथ्वी को ऐसे धरे रहूंगा, कि वह डोलने न पावेगी; हे प्रजापति! आप इस पृथ्वी को मेरे सिर पर रख दीजिये। ब्रह्माजी बोले, कि हे सर्पनाथ! तुम महीमण्डल के नीचे चले जाओ पृथ्वी आपही तुमको बिल दे देगी, हे शेष! तुम्हारे इस धरती-मण्डल को धारण करनेसे मेरा अति प्रिय कार्य्य होगा।

श्रीउग्रश्रवाजी बोले, कि वासुकि के बड़े भाई सर्पनाथ, प्रभु अनन्त, "तथास्तु" कहकर बिल में घुस करके पूरी धरती-देवी को सिर पर धरे रहे। यह देखकर ब्रह्माजी बोले, कि हे धार्म्मिकवर नागश्रेष्ठ शेष! तुमने अकेले अनन्त फणाओं के मण्डल से जिस प्रकार इस धरती को धारण किया है, मेरे और इन्द्रके बिना कोई दूसरा ऐसे स्थिर भाव से इसे ले नहीं सकता है। श्रीउग्रश्रवाजी बोले, कि प्रतापी प्रभु अनन्त ब्रह्माजी की आज्ञा से अकेले धरती को धारण किये पाताल-तल में बसने लगे। तब भगवान् देवश्रेष्ठ, पितामहने विनतानन्दन सुपर्ण को भी अनन्त की सहायता करने की आज्ञा दी।

आदिपर्व्व में छत्तीसवां अध्याय समाप्त।

श्रीसौतिजी बोले, कि नागराज वासुकि भी माता से शाप के वचन सुनकर यह सोचने लगे, कि क्योंकर वह शाप दूर होगा। अनन्तर वह ऐरावतादि सम्पूर्ण धार्म्मिक भाइयों के साथ विचार करने लगे। वासुकि जी बोले, कि हे निष्पाप भाइयो! माताने जो शाप दिया है, वह सभी जानते हैं, अब आओ, सबकोई मिलके विचार करके उस शाप से मुक्त होने का प्रयत्न करें। देखो सब शाप हो व्यर्थ हो सकता है पर माता के शाप से मुक्त होने का कोई उपाय नहीं है, विशेष करके अव्यय, सत्य और अप्रमेय पितामहजी के सामने यह शाप दिया गया है; उसी से मेरा हृदय कांप रहा है; जान पड़ता है, कि हमारा सर्व्वनाश बिना सन्देह आ पहुंचा है, नहीं तो शाप देने के काल में अव्यय देवों के देव पितामह ने क्यों माताको मना नहीं किया? सो आओ, आज सब मिलकर ऐसी युक्ति करें, कि जिससे सर्पों का मङ्गल हो, इस समय काल गवांने का कुछ भी समय नहीं है। इस स्थान में जो सर्प उपस्थित हैं, वे सब बुद्धिमान, और ज्ञानवान् हैं, सो सबों से मिलजुलकर विचार करने से अवश्य ही शाप से मुक्त होने का कोई उपाय निकल सकता है। जिस प्रकार अगले समय में अग्नि के दूर होने पर देवों ने उनको फिर प्राप्त करने के लिये उपाय ठहराया था, उसी प्रकार ऐसा कोई उपाय निश्चय किया जावे, कि जिससे राजा जनमेजय का सर्पयज्ञ न होने पावे वा निष्फल हो जावे। श्रीउग्रश्रवाजी बोले, कि अनन्तर विचार-बुद्धि

में पण्डित कद्रुपुत्रोंने "तथास्तु" कहकर स्वीकार-पूर्व्वक एकट्ठे होकर अभिलाष पूरी करने की प्रतिज्ञा की। आगे विचार के कालमें किसी किसी सर्पने कहा, कि हम उत्तम ब्राह्मण हो करके जनमेजयके निकट यह भिक्षा मांगें, कि वह सर्प-यज्ञ न करें। पण्डिताईके अभिमान रखते हुए किसी किसी सर्पने कहा, कि चलो, हममें से कोई कोई जनमेजय के निकट जाकर उनके प्यारे मन्त्री बने रहैं, ऐसा करनेसे वह हमसे हर विषय का ही कर्त्तव्याकर्त्तव्य पूछेंगे, उस समय हम ऐसी युक्ति देंगे, कि जिससेस र्प-यज्ञ न होने पावे। राजा जनमेजय बड़े बुद्धिमान् हैं, हम भी उनके बड़े प्यारे मन्त्री बने रहेंगे, जब वह पूछेंगे, कि सर्प यज्ञका अनुष्ठान करना चाहिये या नहीं, हम तभी कहेंगे, कि नहीं महाराज! ऐसा कार्य्य न कीजिये, उस यज्ञ से बड़ा भारी दोष होगा, जीवों की हिंसा करनेसे परलोक होने पर नरक में जाना पड़ता है और सर्पगण क्रोधित होकर प्रजाओं को काट खायेंगे; ऐसी भांति भांति की युक्ति दे करके इस लोक और परलोक के अनेक दोष दिखाकर उनको ऐसे रोकेंगे, कि सर्प यज्ञ न होने पावेगा। अथवा सर्पयज्ञ की विधि जाननेवाले और राज कार्य्य में दक्ष जो ब्राह्मण उस सर्पयज्ञ के आचार्य्य होंगे, कोई सर्प जाकर उन्हीं को काटेगा, काटने ही से वह मर जायेंगे; सो यज्ञके प्रधान उपाध्याय के मारने से यज्ञ फिर न होगा। इसके पश्चात् भी कोई दूसरे सर्प-यज्ञ की विधि जाननेवाले पुरोहित होवें, तो उनको भी उसी प्रकारसे काटेंगे; ऐसा करनेही से हमारा कार्य्य पूरा होगा। अनन्तर धार्म्मिक कृपावान् और माननीन कुछ नागों ने कहा, कि यह तुम्हारी कुबुद्धिही है, ब्रह्म-हत्या न करनी चाहिये, विपतके समय निर्द्दोष और धर्म्मयुक्त उपायही कल्याणदायी होताहै; अधर्म्म के कार्य्यसे सम्पूर्ण जगत् नाश होता है। दूसरे कुछ नाग बोले, कि बिजलीदार बादल का स्वरूप लेकर प्रतिक्षण जल वर्षाकर यज्ञ की आग बुझा देंगे और रात्रि के समय ऋत्विकोंके बेसुध होने पर कोई कोई सर्प यज्ञके सम्पूर्ण अङ्ग स्रुकभाण्डको चुरा लावेंगे, ऐसा करनेहीसे यज्ञ में विघ्न पड़ेगा। अथवा उस यज्ञ के आरम्भ होनेके समय सैकड़ों सर्प एकत्र होकर सब लोगों को काटने लगेंगे, ऐसा करनेही से सबोंको भय उपजेगा या सर्पगण मूत्र और विष्ठा छोड़ छोड़कर यज्ञ के पवित्र भोज्य बिगाड़ देंगे, ऐसा करने से सब भोज्य नष्ट हो जायेंगे। दूसरे कुछ नाग बोले, कि चलो, हम जाकर राजाके पुरोहित बनें, आगे यह कहकर, कि "पहिले यज्ञ की दक्षिणा दो" यज्ञ में विघ्न डालेंगे, ऐसा करने ही से वह राजा हमारे वश में आकर हम जो कहेंगे, सोही करेंगे। दूसरे कुछ सर्प बोले, कि राजा जब जलक्रीड़ा करेंगे, उसी समय हम लोग उनको पकड़ लाकर घर में बांध रखेंगे, ऐसा होने से फिर सर्पयज्ञ होनेकी सम्भावना नहीं रहेगी। आगे पण्डिताई के अभिमान रखनेवाले कुछ सर्प बोले, कि उस प्रकारसे भी कुछ नहीं होगा, आओ हम जनमेजयको पकड़ लाकर काटें, ऐसा करनेही से हमारा अभीष्ट पूर्ण होगा, क्योंकि उनकी मृत्यु होने पर एकबारगी सब बुराई की जड़ कट जायगी। हे चक्षुश्रव वासुके! हमारी बुद्धि की सीमा इतनीही है; अब आपकी समझ में जो उचित जान पड़े, वही कीजिये। सर्पगण, सर्पनाथ वासुकि की यह बात कह कर उनके मुह की ओर ताकने लगे, वासुकि भी बहुत सोचकर उन सर्पों से बोले, कि हे सर्पगण! तुमने अपनी अपनी बुद्धिके अनुसार जो निश्चय किया, वह मेरी समझ में अति अनुचित लगता है, वास्तवमें तुम लोगोंने जो कुछ कहा है, उनमें

से कोई भी बात मुझे अच्छी नहीं जंचती; क्योंकि उनमें ऐसा कोई भी कर्त्तव्य विषय नहीं है, जिसके करने से तुम्हारा मङ्गल हो सके। वास्तव में मेरी समझ में महानुभाव कश्यप को प्रसन्न करनाही हमारे लिये मङ्गलदायी है। हे सर्पगण! अपनी और स्वजनों की आत्मा पर विशेष आदर रहने के कारण, तुम्हारी कही और विचारी हुई किसी बात पर मन नहीं चलता है। पर चाहे, जिस प्रकार से हो सके, तुम्हारी भलाई मुझे करनी ही होगी। मैं तुम से बड़ा हूं, सो मेरे ही ऊपर सब दोष गुणों का भार है; इसी से मैं बहुत ही उदास हो रहा हूं।

आदिपर्व्व में सैंतीसवां अध्याय समाप्त।

श्रीउग्रस्रवाजी बोले, कि आगे एलापत्र नामक एक सर्प सम्पूर्ण सर्प और वासुकि को इतनी कथा सुनकर बोला, कि हे महाराज! ऐसा नहीं होगा, कि यह सर्पयज्ञ न हो; और जिन से हमलोगों को बड़ा भय हो गया है, वह पाण्डव-कुमार राजा जनमेजय भी कुछ ऐसे वैसे नहीं हैं। वास्तव में जो पुरुष दैववश विपत्ति में गिरता है, वह दैवही को आश्रय कर लेता है, उसका कोई दूसरा उपाय नहीं है, हे सर्पश्रेष्ठगण! हम को दैवही से यह भय हो गया है, सो दैवही की शरण लेनी उचित है। तुम मेरी बात सुनो जब माताने हमको शाप दिया, तब मैंने भीतचित्त से उनकी गोदमें नैठकर सोच से घबराए देवों की यह बात सुनी, कि वे अति दुःखी होकर पितामहजीके समीप जाकर बोले, कि हे प्रभो देव देव पितामह! आपके सामने ही तीच्ण-रूपा कद्रूने जैसा शाप दिया है, दूसरी कोई स्त्री आपने प्यारे पुत्र को वैसा कठोर शाप नहीं दे सकती, पर जो आपने "तथास्तु" कहकर कद्रुकी बात मान ली और उसे रोका नहीं, इसका क्या कारण है, हम लोग सुनना चाहते हैं। ब्रह्मा जी बोले, कि अनेक सर्प तीच्ण, बड़े विषैले और घोररूप हो गये हैं, सो मैंने प्रजाके हितके निमित्त उससमय कद्रुको रोका नहीं, वास्तव में जो सब सर्प नीचाशय, काटने में बड़े तय्यार, पापात्मा और बड़े विषैले हैं, सर्पयज्ञ में वही नष्ट होंगे, पर जो धार्म्मिक हैं, उनकी हानि नहीं होगी। इस सर्पयज्ञका समय आने पर जिस उपायसे उस भारी भयसे सर्पों की मुक्ति होगी, वह कहता हूं, सुनो।

"जरत्कारु नामके अति बुद्धिमान्, जिते-न्द्रिय, तपमें रत एक महर्षि यायावर वंशमें उत्पन्न होंगे। उनके आस्तीक नामक एक तपस्वी पुत्र जन्म लेंगे, उन्हीसे सर्पयज्ञ बन्द कराया जायगा। इसीसे जो सब सर्प धर्म्मशील हैं, वही बचेंगे।" देवगण बोले, "ब्रह्मन्! वह मुनियों में प्रधान, बड़े तपोवीर्य्यवान् जर-त्कारु, किसके गर्भसे उस बड़े प्रभावी पुत्रको उत्पन्न करेंगे?" ब्रह्माजी बोले, "वीर्य्यवान् द्विजश्रेष्ठ जरत्कारुजी निज नामवाली कन्या से उस वीर्य्यशाली पुत्रको उपजायेंगे।" सर्पनाथ वासुकि की जरत्कारु नाम्नी एक बहिन है। उसी जरत्कारु के गर्भ में जरत्कारुजी के वीर्य्य से वह आस्तीकमुनि जन्म लेकर नागों को माताके शापसे मुक्त करेंगे। एलापत्र बोला, कि देवों ने पितामहसे "एवमस्तु" कहा और भगवान् विरिञ्चि भी देवों की यह कथा सुन-कर स्वर्गधाम को पधारे। हे वासुके! मैं यह उपाय देखता हूं, कि जब वह व्रतशील महर्षि जरत्कारु विवाहके निमित्त कन्या मांगेंगे, तब तुम सर्पों की शापशान्तिके लिये जरत्कारु नाम्नी अपनी बहिन को दान कर देना; मैंने सुना है, कि माताके शाप को दूर करनेका यह एकही उपाय है।

आदिपर्व्व में अड़तीसवां अध्याय समाप्त।

श्रीउग्रश्रवाजी बोले, कि हे द्विजश्रेष्ठ! सम्पूर्ण सर्प एलापत्र नाग की बात सुनकर अति प्रसन्न हुए और सभी उनको "साधु" कहने लगे। वासुकिने आनन्दित होकर जरत्कारु नाम्नी अपनी बहिन की कुमारो रख छोड़ा। अनन्तर कुछ कालान्तर देवता और असुरों ने मिलकर समुद्र-मथन किया; उसमें महाबली वासुकि, मथन रस्सी हुए। आगे उस कार्य्यके पूर्ण होने पर देवोंने वासुकिके साथ पितामहजीके निकट जाकर कहा, "भगवन् यह वासुकि अपनी माता के शाप से भय खाकर अति दुःखी हुए हैं; आप कृपापूर्व्वक इनकी माता के शाप से उपजी हुई उदासी को दूर कीजिये, यह स्वजनों के हितेच्छुक हुए हैं। यह नागनाथ सदा से हमारे प्रियकारी और हितकारी हैं; हे देवेश! आप कृपा प्रगटकर इनके चित्त की पीड़ा को दूर कीजिये।" ब्रह्माजी बोले, "हे अमरो! एलापत्रनागने पहिलेही वासुकि से जो कुछ कही थीं, वह मेरी ही विचारी हुई बात हैं। मैंने जैसा कहा था, काल आजाने पर वासुकि वैसाही करें; जो सब सर्प सदासे पापाचारी हैं, वे ही सर्पयज्ञ में नष्ट होंगे; जो धार्म्मिक हैं, वे नष्ट नहीं होंगे। हाल में उस द्विजराज जरत्कारु ने भूलोक में जन्म लिया है और सदासे कठोर तपस्या में मग्न है, अतएव वासुकि जाकर उचित समय में उनको अपनी जरत्कारु नाम्नी बहन सौंप दें। "हे देवगण! एलापत्र नागने सर्पों के हित के निमित्त जो कुछ कहा है, वह सब ठीक वैसाही होगा, कभी उसका विपरीत न होगा।" श्रीउग्रश्रवाजी बोले, कि शापसे मुग्ध वासुकि पितामहजीकी यह बात सुनकर जरत्कारु ऋषिकी बहिन दान करनेका प्रण ठानकर सम्पूर्ण सर्पों को यह आज्ञा देकरके जरत्कारुके पास नियुक्त कर रखा, कि जब जरत्कारु, पत्नीके निमित्त कन्या मांगेंगे, तब तुम लोग आकर मुझे तुरन्त समाचार देना; ऐसा करनेही से हमारा मङ्गल हो सकेगा।

आदिपर्व्व में उनतालीसवां अध्याय समाप्त।

श्रीशौनकजी बोले, कि हे सूतपुत्र! तुमने जिस जरत्कारु का वृत्तान्त कहा, उस महानुभाव ऋषिका किस लिये "जरत्कारु" यह नाम भूमण्डल में प्रसिद्ध हुआ, वह मैं सुनना चाहता हूं। जरत्कारु शब्द की व्युत्पत्ति कैसी है, वह ठीक ठीक कहो। श्रीउग्रश्रवाजी बोले, कि जरत् शब्दका अर्थ क्षय और कारु शब्दका अर्थ दारुण है; जरत्कारु का शरीर बहुत दारुण अर्थात् विशेष पुष्ट था; पर जरत्कारु ने कठोर तपस्यासे धीरे धीरे उस दारुण शरीर को सुखा लिया था; हे ब्रह्मन्! इसही लिये वह जरत्कारु नाम से प्रसिद्ध हुए थे। वासुकी की बहिन के नाम की व्युत्पत्ति भी वैसीही है। धर्म्मात्मा शौनकजी यह सुनकर हंसने लगे और उग्रश्रवाजीसे बोले, कि हां तुमने जो कहा वही ठीक है। आगे उन्होंने फिर कहा, कि तुमने पहिले जो जो कथा कही हैं, वह सब हमने सुना, आस्तिक मुनिने जिस प्रकारसे जन्म लिया था, अब वही सुनना चाहता हूं। उग्रश्रवाजी यह वचन सुनकर शास्त्रके अनुसार कहने लगे।

ब्रह्माजी की आज्ञा से वासुकि जरत्कारु ऋषि को अपनी बहिन दान करना ठानकर सम्पूर्ण सर्पों को जरत्कारुके पास नियुक्त रखकर सावधान हो रहे! आगे बहुकाल व्यतीत हुआ, पर धीमान् व्रतपरायण वह ऋषि केवल तपही में दत्तचित्त रहे; विवाह करना नहीं चाहा। वह महात्मा केवल जितेन्द्रिय, भयरहित स्वाध्याय में नियुक्त, ऊर्द्धरेता और तपःपरायण होकरके सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डल में घूमने लगे. एकबार मनसे भी विवाह करने

की कल्पना नहीं की। हे ब्रह्मन्! कुछ कालान्तर परीक्षित् नामक राजाने कौरव वंश में जन्म लिया। वह महाराज अपने प्रपितामह पाण्डुराजा के समान युद्ध में अद्वितीय धनुषधारी और आखेटक थे; सो वह मृग, शूकर, चीता भैंसे और दूसरे भांति भांति के वनैले जन्तुओंको मारकर मृगया करते हुए फिरा करते थे। एक समय परीक्षित् विचित्र बाणसे एक मृग को बींधकर पीठ पर धनुष चढ़ाये उसके पीछे दौड़ते हुए घने वन में जा घुसे। जैसे पहिले भगवान् रुद्रजी देवलोक में यज्ञ के मृगको बींधकर उसके पीछे पीछे हाथ में चाप लिये ढूंढ़ने के निमित्त इधर उधर घूमते फिरे थे, वह भी वैसेही बींधे हुए मृग के पीछे पीछे दौड़ते हुए वन में घूमने लगे! परीक्षित् से बींधा हुआ कोई मृग पहिले जीवित रहकर वन में भाग नहीं सका था। इस मृग का बींधे जाकर भागना और उससे उनका बड़ी दूर तक घने वन में लिवाये जाना उनके केवल बहुत शीघ्र स्वर्गप्राप्ति का पूर्व्वलक्षण था। आगे परीक्षित ने थके, मांदे और प्यासे होकर वनमें देखा, कि एक मुनि गोचराने के स्थान में बैठे हैं और बछड़ों के दूध पीने के काल में उनके मुहसे गिरे हुए फेनको पी रहे हैं। राजा परीक्षित्ने भूख और थकावट से कातर होकर वेग से व्रत में रत उस मुनि के निकट जाकर धनुष उठाकर पूछा, "हे ब्रह्मन्! मैं अभिमन्यु का पुत्र, राजा परीक्षित हूं; मुझसे बींधा हुआ एक मृग अदृश्य हो गया है, आपने उसको देखा कि नहीं? मौनव्रत किये हुए उस मुनिने कुछ उत्तर नहीं दिया; आगे राजाने क्रोधवश होकर चाप के अगले भाग से एक सर्पको उठाकर उनके गले में मालाके समान लपेट दिया। मुनिने उस पर ध्यान न देकरके भली बुरी कुछ भी नहीं कही। राजा ऋषि की इस दशामें देखकर क्रोध छोड़के कातर हृदयसे राजधानी में लौट गये ऋषि भी उसी दशा में रहे! वह क्षमाशील महामुनि जानते थे कि राजसिंह परीक्षित स्वधर्म्म में रत रहते हैं, इस हेतु अपमानित होने पर भी शाप नहीं दिया। भरतवंश के अवतंस राजशार्दूल परीक्षित भी उस मुनि को वैसा धर्म्मशील करके नहीं जानते थे, इसी लिये ऐसी धृष्टता प्रगट की।

उस ऋषिका शृङ्गी नाम एक तरुण पुत्र था; वह अति तेजस्वी, तपस्यायुक्त और व्रतनिष्ठ था; उसको क्रोध आने से शान्त करना असाध्य था! वह बीच बीच में भले प्रकार संयत होकर आदरपूर्व्वक सुख से बैठे हुए सर्व्वभूतों के हित में रत, पितामह ब्रह्माजी के निकट गमन किया करता था। जिस दिन परीक्षित ने उसके पिता के गले में मृत सर्प डाल दिया था, उस दिन वह पितामहजी से आज्ञा पाकर घर को आ रहा था, ऐसे समय उसके साथी कृश नामक ऋषिपुत्र खेलता हुआ धर्म्म के विषय में उसकी हंसी कर उसके पिता का हाल सुनाया। अति क्रोधी ऋषि-कुमार शृङ्गी उसे सुनते ही क्रोधसे परिपूर्ण होकर एकवारही विषके समान बना। कृश बोला, "हे शृङ्गि! तुम जैसे तपस्वी वैसे ही तेजस्वी भी हो, फिर कभी अहङ्कार न करना, तुम्हारे पिताने एक मरे सर्पको गले में धारण किया है। हमारे समान ब्रह्मज्ञानी सिद्ध तपस्वी ऋषि-पुत्रों के कुछ कहने पर तुम फिर कभी कुछ मत कहना, तुम्हारा पुरुषाभिमान् कहां रहा? तुम्हारे अहङ्कारके वचन कहां गये? अभी घरमें जाकर देखोगे, कि तुम्हारे पिता गले में एक मुर्देको लिये हुए हैं। हे मुनिजनों में श्रेष्ठ पुरुष! तुम्हारे पिताको कोई दोष करते नहीं देखा बिना दोषही इस प्रकार से अपमानित होते देखकर मैं बड़ा दुःखी हुआ हूं।"

आदिपर्व्व में चालीसवां अध्याय समाप्त।

श्रीउग्रश्रवाजी बोले, कि कृश के इतनी कथा कहने पर वह तेजस्वी शृङ्गी क्रोधयुक्त होकर पिता के मृत सर्प धारण की बात सुनकर मनकी पीड़ा से जलने लगा, आगे कृश की ओर देखकर मीठी बातों से पूछा, आज क्यों-कर मेरे पिताके गले में मृत सर्प आया ?" कृश बोला, "आज राजा परीक्षित् मृगयाको आकर तुम्हारे पिता के गले में मरा सर्प डाल गये हैं।" शृङ्गी बोला, "हे कृश ! सच बोलो, मेरे पिता ने उस मन्दबुद्धि राजा का कौनसा अनिष्ट किया था और देखो, मेरा तपोबल कितना है।" कृश बोला, "अभि-मन्युके पुत्र राजा परीक्षित् मृगयाके निमित्त वन में प्रवेश कर बाण से एक शीघ्रगामी मृगको बींधकर अकेले उसको पछियाने लगे ; आगे जब घोर वन में देर तक घूमने पर भी मृग को नहीं देखा, तब भूख, प्यास और थकावट से विकल होकर जड़ के समान बैठे मौन साधे तुम्हारे पिता को देखतेही उस भागे हुए मृग की बात बार बार पूछने लगे। तुम्हारे पिता मौनव्रत किये हुए थे ; सो कुछ उत्तर नहीं दिया। उसीसे राजाने चाप की कोटि से एक मृत सर्पको उठाकर उनके गले पर रख दिया। हे शृङ्गिन् ! तुम्हारे व्रत-शील पिता भी उसी दशा में हैं, राजा परी-क्षित् अपनी राजधानी हस्तिनापुर को पधारे हैं।"

श्रीउग्रश्रवाजी बोले, कि यह सुनकर, कि पिताके गलेमें मृत सर्प रखा हुआ है, ऋषि-पुत्र क्रोधाग्नि से जल उठे, उनके दोनों नेत्र लाल हो गये। उस क्रोधी और तेजस्वी ऋषि-कुमारने क्रोध से बावले बनकर जल छूकर भूपाल को यह शाप दिया, कि "जिस पापिष्ठ राजाने मौनव्रतयुक्त मेरे वृद्ध पिता के गले में मृत सर्प डाल दिया है, कठोर विषधारी सर्पनाथ तक्षक मेरे वाक्यानुसार अति क्रोधित होकर उस ब्राह्मण के अपमान करनेवाले कुरुकुलके कलङ्क रूपी राजा को सात रातों के बीच में यमराज के पाहुने बनावेंगे।"

श्रीउग्रश्रवाजी बोले, कि शृङ्गी क्रोधवश इस प्रकार शाप देकर पिताके निकट गया। उसके पिता मृतसर्प लेकर गौ चरानेके स्थान में बैठे थे, शृङ्गी उनको उस दशामें देखकर फिर क्रोधयुक्त होकर मन की पीड़ासे आंसू गिराने लगा और बोला, "पिता ! यह सुन-कर, कि दुरात्मा राजा परीक्षित् ने आपका यह अपमान किया है, मैंने क्रोध से उस कुरु-कुल के कलङ्की को उसके कुकार्य्ययोग्य यह कठोर शाप दिया है, कि सातवें दिन सर्पश्रेष्ठ तक्षक उसको यमघर पहुंचावेंगे।" हे ब्रह्मन् ! शमीक ऋषि उस प्रकार क्रोधयुक्त शृङ्गी से बोले, "बेटा ! तुमने जो किया, उससे मैं अप्र-सन्न हुआ, तपस्वियों का ऐसा धर्म्म नहीं है ; हम उस राजाके अधिकार में बसते हैं और वह भी न्यायानुसार हमारी रक्षा कर रहे हैं, इसलिये उनका दोष लेनेयोग्य नहीं है। बेटा ! राजा के दोष करने पर भी उनको क्षमा करना हमारा कर्त्तव्य है, हमारे धर्म्म को बिगाड़ने से धर्म्मभी हमको बिगाड़ता है। यदि राजा हमारी रक्षा न करें, तो हमारा भारी अमङ्गल हो सकता है ; हम फिर सुखसे धर्म्मका अनुष्ठान नहीं कर सकते ; बेटा ! धार्म्मिक राजों से भले प्रकार रक्षित होकर हम बहुत धर्म्मार्ज्जन किया करते हैं, सो राजा धर्म्मतः हमारे धर्म्म के भी भागी होते हैं ; अतएव राजाके दोष करने पर भी उनको क्षमा करना चाहिये। विशेष कर जिसप्रकार से प्रजाओं की पालना राजा का कर्त्तव्य है, परीक्षित् उसी प्रकारसे अपने प्रपितामह पाण्डुराजा के समान आदर-यत्न से हमारी रक्षा कर रहे हैं। जान पड़ता है, कि उस तपस्वी राजाने भूखे और थके रह कर मेरा

जो मौनव्रत है, उसे न जानके ही ऐसा किया है। बेटा! देश में राजा न रहने से सदा लुटेरों के भय आदि नाना दोष आ पड़ते हैं, लोगों के विद्रोही होने से राजाही दण्ड देकर उनका शासन करते हैं; जब सब लोग राजाके दण्ड के भय से भीत होते हैं, तभी शान्ति भले प्रकार संस्थापित होती है। सदा भययुक्त रहने से कोई धर्म्माचरण वा योगादि क्रिया नहीं कर सकता, सो राजाही से धर्म्म और धर्म्म ही से स्वर्ग मिलता है; भूपाल द्वारा सम्पूर्ण यागादि क्रियाओं के अनुष्ठान होने से देवगण प्रसन्न होकर वृष्टि करते हैं, वृष्टि से अन्नआदि उपजते हैं। और अन्नआदि से प्रजाके जीवन बने रहते हैं। राजा राज्य की रक्षा करते हैं, इसी लिये वह मनुष्यों के धाता होते हैं; भगवान् मनुजी कह गये हैं, कि राजा दश श्रोत्रीय ब्राह्मण के समान माननीय हैं! अतएव जान पड़ता है, कि तपस्वी परीक्षित्‌ने भूखे होकर और थककर मेरे इस मौनव्रत को न जानके ही ऐसा किया है; बेटा! तुमने बाल-स्वभाव से क्या ऐसा कुकर्म्म किया? राजाको शाप देना हमारे लिये किसी प्रकार कर्त्तव्य नहीं होता।"

आदिपर्व्व में एकतालीसवां अध्याय समाप्त।

शृङ्गी बोला, "हे पिता! यदि परीक्षित् को शाप देनेसे मेरा साहस प्रकाश वा कुकर्म्म हुआ हो, तो होवे और आपभी उसे प्रिय वा अप्रिय जो कुछ समझना हो, समझें; पर मेरी कही हुई बात व्यर्थ नहीं होगी। हे तात! मैं आपको निश्चय करके कहता हूं, कदापि मेरी वह बात झूठी न होगी, मेरा शाप का व्यर्थ होना तो दूर रहा, मैं हंसी से भी कभी झूठ नहीं बोलता।" शमीक बोले, "बेटा! मैं जानता हूं, कि तुम्हारा प्रभाव बड़ा कठोर है और तुम सत्यवादी हो, कभी झूठ नहीं बोले हो और तुम्हारा दिया हुआ यह शाप भी व्यर्थ नहीं जायगा; पुत्र की वयःप्राप्त होने पर भी सदा उसको ऐसा उपदेश करना पिताका कर्त्तव्य है, कि वह गुणवान् और यशयुक्त होवे। तुम तो बालक हो, सदा तप ही में रत हो, महात्माओं के भी प्रभाव बढ़ने के साथ साथ क्रोध भी बहुत बढ़ता है। हे धार्म्मिकवर! तुम्हारा बालस्वभाव और अनुचित साहस देखकर जान पड़ता है, कि मुझे पुत्र प्रेमवश तुमको बहुतेरे विषयोंकी शिक्षा देनी होगी। हे पुत्र! तुम क्रोध तज शमयुक्त होकर बनके फल मूल खाकर तप किया करो, इस प्रकारसे फिर धर्म्मक्षय न करना, क्योंकि जितेन्द्रिय मुनियों का बड़े दुःख से बटोरा हुआ जो धर्म्म है, वह क्रोधसे लोप हो जाता है और धर्म्मके लोप होनेही से वाञ्छित सद्गति नहीं मिलती। क्षमाशील यतियों की क्षमाही सिद्धि की जड़ है, तुम सदा क्षमाशील और जितेन्द्रिय होकर तप करते रहो, एक क्षमा को आश्रय करके ब्रह्मलोकको प्राप्त करोगे। बेटा! मैं शान्ति को आश्रय करके आज जितना सम्भव हो सके, सब करूंगा; अवश्य ही नरनाथके निकट यह बात कहला भेजूंगा, कि "राजन्! तुम जो हमारे गले पर मृत सर्प डालकर मेरा अपमान कर गये हो, वह देखकर मेरे न सहनेहारे बालक पुत्रने अज्ञानता से तुमको शाप दिया है।"

श्रीउग्रश्रवाजी बोले, कि सुव्रतकारी महातपा शमीक का हृदय दया से गल गया! उन्होंने गौरमुख नामक सुशील और सावधान शिष्य को यह आज्ञा देकर भेज दिया, कि तुम राजाके पास जाकर कुशल-क्षेम पूछकर सम्पूर्ण समाचार कहना। गौरमुख उसीक्षण पधारकर द्वारपाल से पहिले निवेदित होकर कुरुकुलके बढ़ाने वाले राजा परीक्षित् को

मन्दिर में गये। आगे थकावट दूर कर मन्त्रियों के सामने ही राजा के पास शमीक मुनिके कहे हुए कठोर समाचारको आदि से अन्ततक कहने लगे, "हे राजेन्द्र! आपके अधिकार में परम धार्म्मिक, शान्त, दान्त महा-तपोवन्त शमीक नामक एक महर्षि हैं; हे नरसिंह! वह मौनव्रतधारी हैं, आपने चाप को कोटि से एक मृतसर्प को उठाकर उनके गले में लपेट दिया था, शमीक मुनिने आपके उस कार्य्य से क्रोधित न हो करके क्षमा की थी, पर उनके पुत्रने क्षमा न करके आज पिताके न जानने में आपको यह शाप दिया है, कि सात रातों के बीच में तक्षक सर्प महा-राज को काटेगा। शमीक-ऋषि, पुत्र को बार बार बोले थे, कि ऐसा करो, कि जिससे महा-राज बच जायं, पर वह बोला, कि कोई भी उस शाप को व्यर्थ न कर सकेगा। ऋषिवर किसी प्रकारसे क्रोधयुक्त पुत्रके क्रोध को शान्त न कर सके, इस हेतु आपकी हितेच्छा से मुझे भेजा है!"

श्रीउग्रश्रवाजी बोले, कि कुरुवंशावतंस तपस्वी राजा परीक्षित् उस कठोर बात को सुनकर यह जान करके, कि मैंने पापकार्य्य किया है, अति दुःखी हुए; विशेष कर जब सुना, कि उस महामुनिने मौनव्रत के कारण उत्तर नहीं दिया था, तब और भी अधिक-शोक से कातर हुए और यह सोचते हुए कि ऐसे दया-स्वभावी शमीक मुनि का मैंने अपमान किया है, पूर्व्वके किये पाप को स्मरण कर बार बार कातर होने लगे। देव-समान राजा परीक्षित् यह समझकर कि क्षमाशील ब्राह्मण का अपमान किया है, जैसे दुःखी हुए, अपनी मृत्यु के समाचार सुनने परभी वैसे कातर नहीं हुए। अनन्तर यह प्रार्थना जताकर, कि भगवान् शमीकमुनि फिर मुझ पर प्रसन्न होवें, गौरमुख को विदा किया।

गौरमुख के चलेजाने पर राजा सोचयुक्त हो उसीक्षण मन्त्रियों से मन्त्रणा करने लगे। स्वयं मन्त्रतत्त्वज्ञ होकरके भी उन्होंने मन्त्रियों से विचार कर अच्छे प्रकारसे रक्षित एकस्तम्भ-वाला एक गृह बनवाया; आगे बचने के निमित्त चिकित्सक और दवा पास रखी और मन्त्र में सिद्ध ब्राह्मणोंको शरीर की रक्षाके निमित्त नियुक्त किया। परम धार्म्मिक वह परीक्षित् मन्त्रियों से चारों ओर से सुरक्षित होकर उसी स्थान में सब राजकार्य्य करने लगे। उस सुरक्षित गृह में राजा के पास कोई भी जाने नहीं पाता था। अधिक कहना व्यर्थ है, सर्व्वत्र चलनेवाली हवा भी वहां पहुंचने नहीं पाती थी।

आगे सातवां दिन आपहुंचने पर द्विजश्रेष्ठ विद्वान काश्यप राजा को चिकित्सा करने को पधारे। उन्होंने सुनाथा, कि सर्पनाथ तक्षक राजा परीक्षित् को यमराजके घर पहुंचावेगा इससे उन्होंने मनही मन में निश्चय किया था, कि सर्पनाथ के राजा को काटनेहीसे मैं विषसे मुक्तकर आरोग्य करूंगा, ऐसा करने से मुझे धर्म्मार्थ दोनों प्राप्त होंगे। यह सोचते हुए एकचित्त होकर काश्यपजी जारहे थे, कि ऐसे समयमें नागराज तक्षक बूढ़े ब्राह्मण का वेश धरकर उन से जा मिला और बोला, "हे मुनिश्रेष्ठ! आप शीघ्रता से कहां जारहे हैं? आपने कौनसा कार्य्य साधने की इच्छा की है?" काश्यपजी बोले, "आज सर्पनाथ तक्षक कुरुकुल-नन्दन शत्रुनाशी राजा परीक्षित् को विष से जलावेगा, हे सौम्य! अग्निके समान् तेजस्वी पाण्डवकुलतिलक महाबली राजा को तक्षकके काटने ही से मैं उसीक्षण आरोग्य करूंगा, इस अभिप्राय से मैं शीघ्र जारहा हूं।" तक्षक बोला, "ब्रह्मन्! मैं ही तक्षक हूं, परीक्षित् को भस्म करूंगा; मेरे काटने से तुम आरोग्य नहीं कर सकोगे, तुम लौट जाओ।"

काश्यपजी बोले, "यह मुझको निश्चयरूपसे जान पड़ता है, कि तुम्हारे राजाको काटने से मैं जाकर विद्याबल द्वारा विष से बचा सकूंगा।

आदिपर्व्व में बयालीसवां अध्याय समाप्त।

तक्षक बोला, कि हे काश्यप! यदि तुमको ऐसी समझ हो, कि मेरे काटने से तुम आरोग्य कर सकोगे, तो मैं इस बड़को काटता हूं, तुम उसको जिलादो, और अपनी शक्तिके अनुसार मन्त्रबल दिखाने में त्रुटि मत करो; हे द्विजसत्तम! देखो, तुम्हारे सामने ही इस वृक्ष को भस्म कर देता हूं। काश्यपजी बोले, "हे नागनाथ! यदि तुमको ऐसी समझ हुई हो, कि मैं आरोग्य नहीं कर सकूंगा, तो इस वृक्ष को काटो, तुम्हारे काटनेसे मैं उसको फिर जिला दूंगा।" श्रीउग्रश्रवाजी बोले, कि महात्मा काश्यपके यह कहने पर नागेश तक्षकने उस बड़ को काटा, सर्प के बड़े प्रयत्न से काटते ही वह वृक्ष विषम सर्पविष से जलने लगा। तक्षक उस वृक्ष को भस्म करके काश्यपजीसे फिर बोला, "हे द्विजराज! तुम अपनी शक्ति के अनुसार यत्न करके इस वृक्ष को फिर जिलाओ।" सौतिजी बोले, कि काश्यपने तक्षक के तेज से भस्म हुए वृक्षके भस्म को लेकरके कहा, "हे सर्पनाथ! आज इस वृक्ष पर मेरी विद्या का बल देखो, तुम्हारे सामने ही मैं इस को जिलाता हूं।" अनन्तर उन द्विजश्रेष्ठ विद्वान् भगवान् काश्यपने उस भस्म हुए वृक्षको विद्या के बल से जीवन दिया। उसमें पहिले, अङ्कुर, आगे दोपत्ते, उसके पश्चात् महाशाखा, फिर छोटी छोटी शाखा और सम्पूर्ण पत्ते निकल पड़े। महात्मा काश्यप को वृक्षको फिर जिला देते देखकर तक्षक बोला, "हे ब्रह्मन्! यह तुम्हारे लिये बड़े आश्चर्य का विषय नहीं है, कि तुम मेरे सदृश किसी दूसरे सर्प के तेज विषको दूरकर सकते हो, पर हे तपोधन! बोलो, तुम कैसी प्रार्थना सहित राजाको विष से मुक्त करने को जा रहे हो; तुमने राजासे जो वस्तु पाने की अभिलाषा की है, वह दुर्लभ भी हो, तो मैं दे देता हूं। हे विप्र! विप्रशापवश उस राजा की आयु अन्त हुई है, तुम्हारे वहां जाने से अभिप्राय के सिद्ध होने में सन्देह है; अतएव यदि आरोग्य न कर सको, तो तुम्हारा तीनों लोकों में प्रसिद्ध, प्रकाशमान् यशरूपी प्रकाश प्रकाश-वर्ज्जित सूर्य्यकी भांति छिप जायगा।" श्रीकाश्यप जी बोले, "हे सर्पराज! मैं धन की आशा से वहां जाता हूं, तुम वह मुझे दो; मैं सुवर्ण पाने से लौट जाऊंगा।" तक्षक बोला, "हे द्विजोत्तम! तुमने राजासे जितना धन पाने की आशा की है, मैं उससे भी अधिक दे देताहूं, लौट जाओ।"

श्रीउग्रश्रवाजी बोले, बुद्धिमान् द्विजश्रेष्ठ अति तेजस्वी काश्यपमुनि तक्षक की बात सुनकर राजा परीक्षित् के विषय में ध्यान करने लगे। आगे दिव्यज्ञान के प्रभाव से यह देखकर, कि पाण्डवपुत्र राजा परीक्षित् की आयु अन्त हुई है, तक्षक से मनमाना धन पाकर लौट गये। महात्मा काश्यपके उस नियम से लौट जाने पर तक्षक तुरन्त हस्तिनापुर को पधारा और पथ में सुना, कि राजा विषहरनेवाली दवा और मन्त्रोंसे बड़े यत्नसे रक्षित हो, रहे हैं। तब सोचने लगा, कि माया के बल से राजा को ठगना पड़ेगा, अब कौन सा उपाय करूं। अनन्तर उस तक्षक-सर्पने साथी नागोंको तपस्वी का रूप धारणकर तथा फल, दर्भ और उदक लेकर राजा के पास जाने की आज्ञा दी और कहा, कि तुम हड़बड़ी न दिखाकर किसी काम के बहाने से राजा के पास जाकर उनको फल, फूल और जल देना। सर्पों ने तक्षक की

आज्ञानुसार कार्य्य किया और राजा को फल, फूल और जल दिया। वीर्य्यशाली राजा परीक्षित् ने वह सब ले लिये और उनको कार्य्य पूराकर चले जाने की आज्ञा दी। तपस्वीरूपी सर्पों के चले जाने पर राजाने सार्थी और मित्रों से कहा, कि तुम मेरे साथ तपस्वियों से लाये हुए, यह मीठे फल खाओ। आगे उन्होंने मन्त्रियों के सहित फल खाना चाहा और जिस फलके भीतर तक्षक था, ऋषिपुत्रके शापानुसार दैव-प्रेरणासे उसीको स्वयं खाने लगे। हे शौनक! भोजन करने के समय में एक अणु-प्रमाण छोटा, कालेनेत्रवाला, तांबे के रङ्ग का कीट देखा। राजश्रेष्ठ परीक्षित ने उस कीट को लेकर मन्त्रियों से कहा, कि देखो, सूर्य्यदेव अस्ताचलशिखर पर पहुंच रहे हैं, आज अब मुझे विष का भय नहीं रहा; सो यह कीट तक्षक का प्रतिनिधि होकर मुझे काट देवे, तभी उस मुनिकी बात भी सच ठहरेगी और मेरा शाप भी दूर होगा। राजा यह कहकर मुस्काकर और चेतना वर्ज्जित होकर उसीक्षण उस कीटको गलेमें लगाकर हंसने लगे। विधि के नियमानुसार मन्त्रियों ने भी उनके मत को समर्थन किया। राजा हंस रहे थे, कि ऐसे समय में तक्षकने तपस्वियों के दिये हुए उस फल से निकलकर अपने शरीर से अति वेगपूर्व्वक उनको घेर लिया। हे शौनक! सर्पनाथ तक्षकने शरीर से महाराज को घेर लेकर अति गर्ज्जन के साथ उनको काट लिया।

आदिपर्व्व में तैंतालीसवां अध्याय समाप्त।

श्रीउग्रश्रवाजी बोले कि मन्त्रीगण राजा को तक्षक से भोगके द्वारा घिरे हुए देखकर अति दुःखी होकर और मुख को खेदयुक्त बनाकर रोने लगे, आगे तक्षक के गर्ज्जन का शब्द सुनकर सब भागने लगे और शोकवश होकर देखा, कि अद्भुत नीलवर्ण सर्पनाथ तक्षकनाग आकाश मार्ग से जा रहा है और रमणी के काले केश के समान आकाश के बीच में सेंदुरके चिह्न की सुहावनी मांगसी शोभा दे रहा है। इधर तक्षक के विषमविष से उपजी हुई आगसे वह एकस्तम्भवाला गृह सर्व्वप्रकार से घेरे जाकर जल रहा है। तब वे भय-युक्त चित्तसे उस घरको छोड़कर चारों ओर पधारे। राजा भी वज्राघात से घायल हुए पुरुष के समान उसीक्षण गिर पड़े।

राजा परीक्षित् के तक्षक के तेज से जल जाने पर मन्त्री और शुद्धाचारी ब्राह्मणश्रेष्ठ राज-पुरोहितों ने राजाके सम्पूर्ण और्द्ध्वदैहिक कार्य्य सम्पन्न किये। अनन्तर नागरिकों ने मिलकर शत्रुनाशी कुरुवंश में श्रेष्ठ जनमेजय नामक परीक्षित् के बालक पुत्रको गद्दीपर बैठाया। आर्य्यमति नृपश्रेष्ठ जनमेजय बालक होने पर भी उन मन्त्रियों और पुरोहितों के साथ अपने पितामह युधिष्ठिर के समान राज्य शासने लगे। कुछ कालान्तर उनके मन्त्रियों ने उनको शत्रुनाशी देखकर काशीराज सुवर्णवर्म्मा के पास जाकर वपुष्टमा नाम्नी कन्याकी प्रार्थना की। सुवर्णवर्म्मा ने कुरुप्रवीर जनमेजय को धर्म्मानुसार परीक्षाकर वपुष्टमा नाम्नी कन्या को दान किया। जनमेजय वपुष्टमा को लाभकर अति प्रसन्न हुए, उन्होंने किसी दूसरी स्त्री पर कभी मन नहीं चलाया था। जिसप्रकार पूर्व्वकाल में पुरूरवाने उर्व्वशी को लाभकर प्रसन्नचित्त से उनसे विहार किया था, उसी प्रकार राजश्रेष्ठ वीर्य्यशाली जनमेजय प्रसन्नहृदय से वपुष्टमा के साथ कभी सुन्दर ताल में, कभी वनमें विहार करने लगे। प्रसिद्ध रूपवती, अन्तःपुरकी ज्योति, सुन्दरी सती वपुष्टमा भी उस भूपाल

को पति पाकर विहार के समय अति प्रेम दिखा कर प्रसन्न करने लगी।

आदिपर्व्व में चवालीसवां अध्याय समाप्त।

श्रीउग्रश्रवाजी बोले, कि इस समय महातपा जरत्कारु ऋषि यत्रसायंगृह होकर अर्थात् जहां सन्ध्या हो जाती थी, वहीं टिके रहकर सम्पूर्ण पृथ्वी में घूम रहे थे; वह महातेजा मुनि पवित्र तीर्थ में नहाकर दूसरों के करने के अयोग्य कठोर तप करके कभी निराहार से, कभी वाताहार से अपने शरीर को सुखाकरके घूमा करते थे। एक समय घूमते हुए देखा, कि उनके पिता और पितामहलोग एक वीरणस्तम्ब अर्थात् खसखस् के गुच्छे को आश्रय कर गड्ढे के भीतर नीचे-मुह करके लटक रहे हैं; उस वीरणस्तम्ब का एकही तान शेष रहा, गड्ढे में रहता हुआ मूष उसे भी धीरे धीरे काट रहा है। जरत्कारु ने उनको निराहारी, दुबले-पतले, दीन और अपनी रक्षा के अभिलाषी देखकर दुःखी हृदय से निकट जाकर पूछा, आप कौन हैं? किस हेतु इस वीरणस्तम्ब को आश्रय किये हुए लटक रहे हैं? इस गड्ढेके रहनेवाले मूष के प्रायः सब जड़को काटने से यह उशीरस्तम्ब बहुत दुर्ब्बल हो गया है; इसको एकही जड़ जो शेष है, उसे भी यह मूष अपने तेज दातोंसे धीरे धीरे काट रहा है, यह अल्पशेष मूल भी थोड़ेही कालमें टूटेगा, तब निःसन्देह आप नीचे मुह किये हो इस गड्ढे में गिर जायंगे; आप को नीचे मुह किये और विपद में पड़े हुए देखकर मुझे बड़ा दुःख हो रहा है; कहिये, मैं आपका कौनसा उपकार करूं। मेरी तपस्या के चौथे भाग वा तीसरे भाग वा आधे भाग से, अथवा मेरी सम्पूर्ण तपस्या से आपलोग इस विपद से बच जाइये, इसमें आप जैसा चाहें, वैसाही कीजिये। पितृगण बोले, कि हे ब्राह्मण-श्रेष्ठ! आप बूढ़े ब्रह्मचारी होकर हमारी रक्षा करना चाहते हैं, पर हमारी यह विपद तपस्या से दूर होनेवाली नहीं है। हे वाग्मिन्! हमलोगों का भी बहुत तपका फल बटोरा हुआ है; हे ब्रह्मन्! केवल सन्तान न रहने ही के कारण हम इस अपवित्र नरक में गिर रहे हैं, क्योंकि भगवान् पितामहने कहा है, कि सन्तान जन्माना परम धर्म्म है। हम यहां लटकते हुए अचेतनवत् हुए हैं, इस हेतु आपका यश तीनों लोकों में प्रसिद्ध रहने पर भी हम आपको पहिचान नहीं सकते हैं, आप वृद्ध और बड़े भाग्यवान् हैं, इसहेतु हमारे इस बड़े भारी दुःख और शोचनीय दशाको देखकर दया प्रगट कर रहे हैं; हे विप्र! सुनिये हम कौन हैं, हम यायावर नामक व्रतनिष्ठ ऋषि हैं, हमारा वंश लोप होने पर है; इससे सम्पूर्ण कठोर तपस्या निष्फल हुई है और पुण्यलोकसे च्युत हो रहे हैं; ऐसा न समझिये, कि हमारी सन्तान नहीं है, पर हम स्वल्प भाग्यवाले हैं; हमारी एकही दुर्भाग्य सन्तान है, उसका रहना और न रहना समान है, उसका नाम जरत्कारु है। वह सन्तान वेद-वेदाङ्गों में निपुण, व्रतशील, जितेन्द्रिय, महात्मा और बड़ा तपस्वी है; उसने केवल तपही को आश्रय किया है; उस कुसन्तानने तपके लोभ से हमको इस विपद के समुद्र में डुबाया है; उसकी स्त्री, पुत्र, स्वजन, बन्धु, कोई नहीं हैं; इस हेतु हम अनाथकी भांति इस गड्ढे में लटके हैं। आप कृपा प्रगट कर जरत्कारु से भेंट करके कहना, कि "हे तपोधन! तुम्हारे पितरलोग दीनों के समान नीचे मुह कर गड्ढे में लटक रहे हैं, तुम विवाहकर पुत्रोत्पादन करो; क्योंकि तुम बुद्धिमान् और कुल की एकमात्र आशा हो।" हे ब्रह्मन्! आप हमको जिस वीरणस्तम्ब में आश्रित देखते हैं,

यह हमारा कुल बढ़ानेवाला कुलस्तम्ब है; इसकी जो सब जड़ देखते हैं, वे हमारी सन्तान हैं, सभी काल से भक्षित हुई हैं; यह जो आधी खाई हुई एकही जड़ है, जिसे पकड़ हम गड्ढे के ऊपर लटके हैं, यह वही जरत्कारु है, उसने केवल तपस्या को आश्रय किया है। यह जो मूष देखते हैं वह महाबली काल है; यह काल तपमें रत, मन्दमति, चेतनाहीन और तपस्यालोभी उस जरत्कारु को धीरे धीरे निगल रहा है; हे सत्तम! उसकी तपस्या हमको बचा नहीं सकेगी। देखिये इस जड़के टूटते हो हम लोग काल से मारे गये हुए पापियों के समान उखड़कर इस गड्ढेमें गिर जायंगे। हम बन्धुओं के साथ इसमें गिर जायंगे, तो जरत्कारु भी काल से भक्षित होकर इस स्थान में गिरकर नरक में जायगा। तपस्या, यज्ञ वा पाप दूरकरनेवाले जितने महत कार्य्य हैं, वे सब पुत्रोत्पादन के समान नहीं होते; आपने जैसा देखा, वह सब तपोधन जरत्कारु से भेट कर कह देना। हे ब्रह्मन्! आप हमारे नाथ के समान होकर इस प्रकारसे कहना, कि जिस्से जरत्कारु विवाह करके पुत्रोत्पादन करे। हे सत्तम! जान पड़ता है, कि आप जरत्कारुके मित्रों में से कोई होंगे, क्योंकि मित्र वा अपने कुलवालों के समान हमको देखकर शोक प्रगट कर रहे हैं; हम सुनना चाहते हैं, कि आप कौन यहां आये हैं?"

आदिपर्व्वमें पैंतालीसवां अध्याय समाप्त।

श्रीउग्रश्रवाजी बोले, कि जरत्कारु पितरों की यह सब बात सुनकर अति शोकयुक्त होकर मनःपीड़ा से आंखों में आंसू भरकर और गदगद होकर बोले, आप मेरे ही पितृपितामह हैं; आज्ञा कोजिये, कि आपके अभीष्टको पूरा करनेके निमित्त मुझको क्या करना चाहिये, मैंही आपका पुत्र पापात्मा जरत्कारु हूं; मैं अकृतआत्मा हूं मुझसे जो दोष हुआ है, उसका दण्ड दीजिये। पितरलोग बोले, "बेटा! तुम इच्छानुसार घूमते हुए हमारे सौभाग्यसे इस देशमें आ गये हो; कहो तो सही; तुमनें क्यों विवाह नहीं किया?" जरत्कारु बोले, हे पितृगण! मेरे हृदय में सदा यह बात जगती है, कि मैं ऊर्द्धरेता होकर देह को विसर्जन करूंगा, कभी विवाह नहीं करूंगा, मैंने मनहो मन में ऐसाही निश्चय किया था; हे पितामहगण! वर्त्तमान में आपको यहां पक्षियों के समान इस प्रकार लटकते हुए देखकर मैं ब्रह्मचर्य्य से चित्त हटाता हूं, मैं आपका प्रियकार्य्य करूंगा; सन्देह नहीं है, कि विवाह करनेको प्रस्तुत हुआ हूं; पर यदि निज नामकी कन्या पाऊं और वह कन्या मुझको भिक्षा के समान स्वयं आमिले तथा मुझे उसका पालन करना न पड़े, तो उस कन्याको लेकर विवाह करूंगा। हे पितामहगण! मैं सच कहता हूं, इसके विपरीत होने से मैं विवाह नहीं कर सकूंगा। उस विवाहिता स्त्री के गर्भ से जो सन्तान उपजेगी, वही आपका उद्धार करेगी और उसी से आप नित्य अव्यय हो करके स्वर्ग में बसेंगे।"

श्रीउग्रश्रवाजी बोले, कि हे शौनक! वह मुनि पितरों से यह बात कहकर विवाहार्थी होकर सम्पूर्ण भूमण्डल में घूमने लगे, पर वृद्ध जानकर कितीने उनको अपनी कन्या दान नहीं की। आगे पितरों की आज्ञा से जरत्कारु निर्व्वेद पाकर वनमें घुसके दुःखी हृदय से चिल्लाकर रोने लगे। अनन्तर प्रज्ञावान् उस ऋषिने पितरों की हितेच्छा से उस वन में धीरे धीरे तीन बार यह कहा, कि "मैं कन्या की भिक्षा मांगता हूं, इस स्थान में स्थावर जङ्गमात्मक जितने जीव विराजमान हों और जो

भूत अप्रकाशित हों, सब मेरी बात सुनें, मैं कठोर तपस्या में रत हूं; पितरोंने दुःखी होकर सन्तानोत्पादन के निमित्त मुझको आज्ञा दी है, कि तुम विवाह करो। हे जीवगण! भूमण्डल में कन्या की भिक्षा मांग रहा हूं, मैं अति दरिद्र और दुःखी हूं, पितरों ने मुझको विवाह करने को नियोग किया है, मैं सर्व्वत्र घूम रहा हूं; पर मैंने जिनसे यह प्रस्ताव किया, यदि उनमें से किसी की कन्या हो, तो दान करो; पर वह कन्या मेरे नाम की होगी और भिक्षा के समान मुझे मिलेगी, तथा मैं उसका पोषण न करूंगा; यह हो, तो दान करो।" अनन्तर जो नाग जरत्कारु की रक्षा में नियुक्त थे, उन्होंने वासुकि को यह समाचार सुनाया।

नागनाथ वासुकि जरत्कारु की विवाह की इच्छा सुनतेही सजी सजाई बहिन को लेकर वन में उस ऋषि के निकट पधारे और उस महात्मा मुनि को भिक्षा के समान उस कन्या को दान किया। तब जरत्कारुने एकाएक उसको प्रतिग्रह नहीं किया; वह सोचने लगे, कि यह कन्या मेरे नाम की नभी हो सकती है, और कदाचित इसे पालना पोषना भी होगा। सोच के पथिक जरत्कारु इस प्रकारसे दो मन करने लगे। हे भृगुनन्दन! आगे उस ऋषिने वासुकि से कन्या का नाम पूछा और कहा, कि मैं उसको न पालूंगा।

आदिपर्व्व में छियालीसवां अध्याय समाप्त।

श्रीउग्रश्रवा जी बोले, कि वासुकिने जरत्कारु ऋषि से कहा, "हे द्विजोत्तम! तपस्विनी यह कन्या मेरी बहिन और तुम्हारे नाम की है; तुम इसको भार्य्यार्थ ग्रहण करो, हे तपोधन! यथाशक्ति मैं इसको पालूंगा और रखूंगा; हे मुनिवर! मैंने तुम्हारे निमित्त इतने दिनों तक इस कन्या को रखा है।" ऋषि बोले, "अच्छा मेरा यह नियम रहा, कि मैं इसका पोषण न करूंगा और यह कन्या कभी मेरा अप्रिय कार्य्य नहीं करेगी, करने ही से मैं इसको त्याग दूंगा।"

श्रीउग्रश्रवाजी बोले, कि वासुकि के यह स्वीकार करने पर, कि "मैं बहिन का पोषण करूंगा," जरत्कारु वासुकि के घरको गये। मन्त्रप्रयोग में निपुण, तपोवृद्ध, महा व्रतशील, धर्म्मात्मा जरत्कारुने विधिपूर्व्वक मन्त्र पढ़कर जरत्कारु से प्रशंसित होकर पत्नी के साथ सर्पनाथ की इच्छानुसार सुन्दर वासगृह में वहां परम रमणीय चादरा से ढंपी हुई सुन्दर सेज पर सोकर स्त्रीसे एकत्र रहने लगे। साधुश्रेष्ठ ऋषिने उस वासगृह में पत्नी से यह नियम किया, कि तुम कभी मेरा अप्रिय कार्य्य करने वा अप्रिय कहने न पाओगी; ऐसा करने से मैं फिर तुम्हारे घर में न रहूंगा और तुमको त्याग दूंगा; मैंने जो कहा, उसे स्मरण रखना। अनन्तर वासुकि की बहन जरत्कारुने अति सोचयुक्त और दुःखी होकर "एवमस्तु" कहके वह बात मानली। आगे पतिका प्रिय चाहने वाली यशस्विनी नागेश की बहिन श्वानकाकीय उपाय से अर्थात् कुत्ता, हरिण और कौये को सावधानी, भय और इङ्गित समझने के सहज गुण आश्रय करके दुःखी पति की सेवा करने लगी।

कुछ कालान्तर वासुकि की बहिन उस जरत्कारुने ऋतुस्नानकर महामुनि पतिके पास यथाविधि गमन करके अग्नि के समान गर्भ धारण किया शुक्लपक्ष के चन्द्रमा की भांति वह गर्भ दिनोंदिन बढ़ने लगा। एक दिन अति यशस्वी श्रीजरत्कारुजी नागकी बहिन जरत्कारुकी गोद में सिर रखकर थके-मांदे के समान सोते रहे; सूर्य्यदेव अस्ताचल की चोटी पर चढ़ गये, तौभी उनकी नींद न टूटी। तब मनस्विनी वासुकि की बहन धर्म्म लोप

होनेके भय से भीत होकर सोचने लगी, कि पति को नींद से जगाऊं वा नहीं। ऐसा करने से दुःखशील धर्म्मात्मा पति के निकट दोषी बनना पड़ेगा; नींद से न जगाने से इस धार्म्मिक पतिका धर्म्म लोप होने की सम्भावना है, नींद से जगाने से भी यह क्रोधित हो सकते हैं; इसका क्या करना चाहिये। जिससे धर्म्म लोप न होने पावे, वही करूं; इसमें सन्देह नहीं, कि नींद से जगाने से क्रोधित होंगे, पर यदि सन्ध्या लङ्घन होवे, तो निःसन्देह धर्म्म लोप होगा। मीठी बोलनेवाली सर्पबहिन ने मनही मन में ऐसा निश्चय करके नींदयुक्त अग्नि-समान तेजस्वी ऋषि को विनययुक्त बातोंसे कहा "हे महाभाग, व्रतशील भगवन्! सूर्य्यदेव डूब रहे हैं, उठकर जल छू करके सन्ध्योपासन कीजिये; देखिये अग्निहोत्र का समय आया है; यह मुहूर्त्त दारुण और रमणीय है; देखिये, पश्चिम ओर को संध्या उपस्थित हो रही है।"

पत्नी के यह बात कहने पर महातपा भगवान् जरत्कारु क्रोध से होठों को फुलाकर बोले, "अरी सर्पिणि! तूने मेरा इस प्रकारसे अपमान किया? मैं तेरे साथ अब न रहूंगा; जहां मन चाहे, चला जाऊं, री वामोरु! मैं निश्चित जानता हूं, कि मेरे सोये रहने से सूर्य्यदेव कभी उचित समय में अस्त नहीं हो सकते; देख, अपमानित होकर कोई पुरुष बसना नहीं चाहता; विशेष कर यह तो असम्भव ही है, कि मैं वा मेरे सदृश कोई दूसरा अपमानित होकर वास करे।" पति से इस हृदयसुखानेवाली बात को सुनकर वासुकि के घरमें रहती हुई बहिन जरत्कारु बोली, "हे विप्र! मैंने अपमान करनेके निमित्त आपको नींदसे नहीं जगाया; इसी हेतु ऐसा किया है, कि आपका धर्म्म लोप होने न पावे।" सर्प की बहिनके ऐसा कहने पर महातपा जरत्कारु क्रोधवश और पत्नी त्यागने के अभिलाषी होकर सर्पिणी से बोले, "री सर्पिणी! मेरी बात कभी झूठी नहीं होती; मैं अवश्य जाऊंगा; मैंने पहिलेही तेरेसे निराले में यह नियम किया था; भद्रे! मेरे चले जाने पर अपने भाई से कहना, कि मुनि चले गये हैं, फिर मैं यहां जितने दिनोंतक बसा, परम सुखसे रहा; री भीरु! मेरे जाने से तू शोक से विकल मत हो।" जरत्कारु मुनि की यह बात सुनकर सुश्रोणी सुन्दरी जरत्कारु एकबारही शोक से विकल और चिन्तायुक्त हुई, उसका हृदय कांपने लगा, मुखपद्म सूख गया और दोनों आंखों से आंसु की धार बहने लगी। वामोरु जरत्कारु तब कुछ धीरज धरकर दोनों हाथ जोड़कर आंसू से गद्गद होकर बोलने लगी, "हे द्विजोत्तम! इस निर्द्दोषी पत्नी को त्यागना आप को नहीं चाहिये, क्योंकि आप धर्म्मज्ञ हैं; विशेष कर मैं सदा धर्म्मपथ में रहकर आप की सेवा, हितानुष्ठान और प्रिय-साधन कर रही हूं। जिस अभिप्राय से मेरे भाईने आप से मेरा विवाह कर दिया, मन्द भाग्यवती मैं वह भी लाभ नहीं कर सकी; अतएव वह अब मुझसे क्या कहेंगे? हे साधुश्रेष्ठ! मेरे स्वगणोंने माताके शाप से कातर होकर प्रार्थना की है, कि आपके वीर्य्य से मेरे गर्भ में एक सन्तान उत्पन्न होवे, वह भी आजतक नहीं हुआ। आपके वीर्य्य से पुत्र उत्पन्न होनेसे मेरे स्वगणोंका मङ्गल होगा; हे भगवन्! मैं स्वजनों के हित की इच्छा से प्रार्थना करती हूं कि आप प्रसन्न होवें। आपसे मेरा यह सम्बन्ध निष्फल न कीजिये। हे सत्तम! आप महात्मा होकरके भी यह अप्रकाशित गर्भाधान कर क्योंकर निर्द्दोषी पत्नीको तजके चले जानेकी उद्यत हो रहे हैं?" पत्नीकी ऐसी बातें सुनकर तपोधन जरत्कारुने उस कालोचित वचनोंसे कहा, "हे सुभगे! अग्नि के समान

परम धार्म्मिक, वेदवेदाङ्गों में निपुण एक ऋषि तुम्हारे गर्भ में विराज रहे हैं।" धर्म्मात्मा महर्षि जरत्कारु पत्नी से यह बात कहकर फिर कठोर तप करनेका प्रण ठानकर चले गये।

आदिपर्व्व में सैतालीसवां अध्याय समाप्त।

श्रीउग्रश्रवा जी बोले, कि हे तपोधन! पतिके चले जाते ही जरत्कारुने भाईके निकट जाकर सम्पूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया। नागेश वासुकि दीर्नचित्त से दीना बहिन से बोले, "भद्रे! हमारा जो अभिप्राय है और जिस अभिप्राय से तुम्हारा विवाह किया था, वह तो तुम जानती हो; पहिले पितामह जीने देवों से कहा था, सर्पों के हित के निमित्त तुम्हारे गर्भ में उस ऋषिके वीर्य्य से यदि एक पुत्र का जन्म हो, तो वह वीर्य्यवान् पुत्र सर्पों की सर्प यज्ञ से बचावेगा; हे सुभगे! उन मुनिश्रेष्ठ से तुम्हें गर्भ हुआ है वा नहीं? मैं चाहता हूं, कि तुमको जिस अभिप्राय से दान किया है, वह निष्फल न होवे। यद्यपि ऐसा प्रश्न करना मेरे लिये अनुचित है, तौभी इसे अपना गुरुकार्य्य जानके ही ऐसा अनुचित प्रश्न कर रहा हूं। तुम्हारे पति बड़े भारी तपस्वी हैं, किसी प्रकारसे वह लौटाये नहीं लौटेंगे; यदि उनके पीछे जायं, तो वह शाप भी दे सकते हैं। भद्रे! तुम्हारे पतिके सम्पूर्ण कार्य्यों को विशेष रूप से प्रगट करो और बहुत दिनों से गड़े हुए मेरे हृदयके कठोर शैल को उठालो।" जरत्कारु यह बात सुनकर दुःख से कातर सर्पपति वासुकि से ढाड़स देकर बोली, "राजन्! मैंने उस महात्मा महातपा पति से सन्तान की बात पूछी थी, उस पर वह मुझसे यह कहकर, कि "अस्ति" अर्थात् सन्तान तेरे गर्भमें है, वन को पधारे। मुझको स्मरण होता है, कि वह हंसी में भी कभी झूठ नहीं कहते, फिर इस विपदके समयमें क्यों झूठ कहेंगे? भैया! उन्होंने मुझसे कहा है कि अग्नि और सूर्य्यके समान तेजस्वी तुम्हारे एक पुत्र उत्पन्न होगा; मेरे तपोधन पति यह कह करके ही चले गये हैं; अतएव भैया! अपनी यह चित्तपीड़ा दूर करो।"

श्रीउग्रश्रवाजी बोले, कि नागनाथ वासुकिने यह बात सुनकर आनन्द से कूदती हुई आंखोंमें "एवमस्तु" कहकर बहिन की बात मानली। अनन्तर धन देकर, समझा-बुझाकर और उचित पारितोषिक देकर उस सहोदरा बहिनका सम्मान करने लगे। हे द्विजश्रेष्ठ! आकाश में उगे हुए शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा के समान अति प्रकाशमान् बड़ा तेजोवान् वह गर्भ दिनोंदिन बढ़ने लगा; हे ब्रह्मन्! आगे समय आने पर उस सर्पबहिन ने पितृ-मातृ-कुलों के भयनाशी एक पुत्र प्रसव किया। कुमार उस नागनाथ के घरमें पाले जाकर बढ़ने लगा और बालिपनही से सत्त्वगुणी और व्रतनिष्ठ होकर असाधारण बुद्धि के प्रभाव से भगवान् च्यवन के निकट साङ्गवेद पाठ किया। वह "आस्तीक" नाम से प्रसिद्ध हुए; वह जब गर्भ में थे, तब उनके पिता "अस्ति" यह बात कहकर वन को सिधारे थे, इस लिये उनका नाम आस्तीक हुआ। असाधारण बुद्धिमान् आस्तीक बालिपन में नागों के घरमें रहकर वासुकि के अति यत्नसे भली भांति रक्षित होकर घूमते हुए प्रकाशमान् भगवान् देवोंके देव शूलधारीके समान दिनोंदिन बढ़कर सम्पूर्ण सर्पों को आनन्द देने लगे।

आदिपर्व्व में अड़तालीसवां अध्याय समाप्त।

श्रीशौनकजी बोले, कि राजा जनमेजय ने पिताके परलोक के विषय में मन्त्रियों से जो कुछ पूछा था, उसे फिर विस्तार-पूर्व्वक कहो। श्रीउग्रश्रवाजी बोले, कि ब्रह्मन्! राजाने मन्त्रियों से जैसा पुछा था और मन्त्रियों ने

परीचित् की स्वर्ग-प्राप्ति के विषयमें जैसा वर्णन किया था, वह सुनिये। जनमेजय ने पूछा, "हे मन्त्रियो! मेरे पिताका जैसा चरित्र था और वह महायशा नरेश काल- वश जिस प्रकार नाश हुए, वह तुम भले प्रकार जानते हो; मैं तुमसे पिता का सम्पूर्ण चरित्र सुनकर जैसे मङ्गल हो सके, वही करूंगा, कदापि विपरीत न करूंगा।" श्रीउग्रश्रवाजी बोले, कि महात्मा राजा जनमेजयके यह प्रश्न करने पर, धर्म्मज्ञ और प्राज्ञ मन्त्रियोंने कहा, "राजन्! आपने अपने पिता महात्मा जनश्रेष्ठ परीचित् के चरित्र के विषयमें जो कुछ पूछा और जिस प्रकार वह परलोक को सिधारे, वह सुनिये। आपके पिता जैसे धर्म्मात्मा, महात्मा तथा प्रजापालक थे, वह कहता हूं। धर्म्मशील राजा साचात् धर्म्मके अवतार के समान धर्म्म-पथ अवलम्बन करके चारोंवर्णों को निज निज धर्म्म में रखकर प्रजा पालते थे; अतुल विक्रमी श्रीमान् पृथ्वीनाथ, पृथ्वी को भले प्रकार रचा करते थे; उनका द्वेषी कोई नहीं था, वह भी किसीका द्वेष नहीं करते थे; वह प्रजापति के समान सब प्रजाको समान जानते थे, कभी पचपात नहीं करते थे; ब्राह्मण चत्रिय, वैश्य, शूद्र, यह राजा से सुरचित होकर प्रसन्नचित्त से निज निज कार्य्य में लगे रहते थे; वह विधवा, अनाथ, दीन, दुःखियों का पोषण करते थे और द्वितीय चन्द्रमा को भांति प्रजाओं के नेत्रों के आनन्द- दायी थे। उस श्रीमान् सत्यवादी दृढ़विक्रमी महीपाल से सब लोग ही तुष्ट और पुष्ट होते थे; हे जनमेजय! ऐसे गुणवान् आपके पिता धनुर्व्वेद में शारद्वतजी के शिष्य और गोविन्द के प्रियपात्र थे; वह किसीके भी अप्रिय नहीं थे। कुरुकुलके चय होने पर अभिमन्युके पुत्र उस बलवान्, महायशा परीचित्ने उत्तरा के गर्भ से जन्म लिया था, इसहेतु उनका नाम परीचित् हुआ था। राजधर्म्म में निपुण, सर्व्वगुणों से भूषित, जितेन्द्रिय, मेधायुक्त, बुद्धिमान, धर्म्मसेवक, कामक्रोधादि के अवशी- भूत, महाबुद्धियुक्त और नीतिशास्त्र में अच्छे पण्डित आपके पिता प्रजा पालकर साठ वर्ष की अवस्था में सब लोगों को दुःखके समुद्र में डुबाकर परलोक को सिधारे हैं। हे पुरुष- श्रेष्ठ! उसके पश्चात् आपने कुरुकुल से क्रमा- गत अनेक सहस्र वर्ष तक शासित होते हुए इस राज्य को धर्म्मानुसार प्राप्त किया है और बालेपनही में अभिषिक्त होकर सम्पूर्ण प्रजाको पालन कर रहे हैं।" जनमेजय बोले, "लोकों में असाधारण कीर्त्तिमान अगले पुरुषों के चरित्रों को जानकर मुझे-समझ पड़ता है, कि इस वंश में कभी ऐसे कोई भूप नहीं थे, जो प्रजाओं के प्रिय और प्रिय करनेवाले नहीं हुए थे; अतएव यह सुनना चाहता हूं, कि मेरे पिता वैसे गुणशील होने पर भी किसहेतु अकाल में कालवश हुए; तुम आदि से अन्ततक यथावत् प्रकट करो।"

श्रीउग्रश्रवाजी बोले, कि राजाके हितैषी मन्त्रीगण राजासे इस प्रकार पूछे जाकर यथा- विधि आद्योपान्त कहने लगे। मन्त्रिओंने कहा, "राजन्! आपके पिता महाबाहु पाण्डुके समान सर्व्वशास्त्रों में निपुण, अद्वितीय चापधारी और सदा मृगयाशील थे। एक समय वह हमलोगों पर राजकार्य्य का सम्पूर्ण भार सौंपकर मृगया के निमित्त वन में गये। आगे एक मृग उन वाण से बींधे जाकर घने वनमें जाघुसा। वह खड्ग तूणीर आदि युद्धकी साजों से सजधज कर अकेले उस मृगको ढूंढ़ने लगे; पर देख नहीं पाया, कि मृग कहां भागा; वह साठ वर्ष की आयुमें पहुंचे थे और बूढ़े हो गये थे, इस हेतु थक गये और भूख से कातर हुए; आगे उस घोर वन में

मौनव्रत किये हुए एक मुनि को देखकर भागे हुए मृग का समाचार पूछा। मुनि मौनी थे, सो पूछे जाने पर भी कोई उत्तर नहीं दिया। राजा एकतो भूख और थकावट से कातर थे, फिर उस पर शाखावर्ज्जित वृक्ष के समान बैठे हुए उस ऋषि को बात न बोलते देखकर उसीक्षण क्रोधयुक्त हो गये; पर आपके पिता नहीं जानते थे, कि वह मुनि मौनव्रत किये हैं इससे उन्होंने क्रोधयुक्त होने के कारण उनको मानहानि की अर्थात् चाप की कोटि से धरती पर से एक मृत सर्प को उठाकर उस पवित्रात्मा मुनि के गले पर रखा; उस मेधायुक्त मुनिने भलो या बुरी कुछ न कही, क्रोध भी नहीं किया था, उसी प्रकार सर्प को गलेमें लिये रहे।"

आदिपर्व्व में उनचासवां अध्याय समाप्त।

मन्त्रीगण बोले, हे राजेन्द्र! आपके पिता भूख से कातर होकर मुनिके गले पर मृत सर्प डालकर नगर में लौट आये। उस ऋषि के शृङ्गी नामक गौके गर्भसे जन्म लिये हुए महायशा, महातेजा, तीग्मवीर्य्य, अति क्रोधी एक पुत्र थे; वह ब्रह्माजी के निकट जाकर उनकी पूजाकरके उनकी आज्ञा से आश्रम को लौटे आरहे थे; पथ में अपने साथी से सुना, कि घोरतपस्वी, मुनिश्रेष्ठ, जितेन्द्रिय, विशुद्धात्मा, आश्चर्य्य कार्य्य में नियुक्त, तपस्या से प्रकाशमान यतात्मा, सदा शुभाचार में रत, सत्क्रिया में स्थित, लोभवर्ज्जित, सुस्थित, अचुद्राशय, असूयारहित, वृद्ध, सर्व्वभूतों को शरण देने योग्य और मौनव्रत में बैठे हुए उनके पिता का अपमान कर आपके पिता ने एक मृत सर्प उठाकर उनके गले पर डाला है और वह वृद्ध ऋषि भी जड़के समान उस मृत सर्प को गले में लिये हुए हैं; हानिकारी राजाकी बदलेमें कोई हानि नहीं की। महातेजा ऋषिकुमार बालक होने परभी वृद्धके समान थे, सो वह उसी सुनकर अति क्रोधित हुए और अपने तेज से मानों जलकर जल छूकर आपके पिताका नाम लेकर यह शाप दिया, कि जिस पापात्मा ने बिना अपराध मेरे पिता के गले में मृत सर्प डाला है, उसको महातेजा विषधारी तक्षक सर्प मेरे बालपन के प्रभाव से भेजे जाकर सात रात्रियों के बीच में क्रोधपूर्व्वक तेज से जला देगा; हे मित्र! मेरे तपोबल को देखो। शृङ्गीने यह बात कहकर जहां उसके पिता थे, वहां जाकर उनको देखकर शाप देने का वृत्तान्त कह सुनाया। उस मुनिशार्दूल समीक ने गौरमुख नामक गुणवान् सुशील शिष्य को आपके पिताके निकट भेजा। गौरमुख यहां आकर थकावट मिटाकर राजा को सब वृत्तान्त सुनाकर गुरु की यह आज्ञा जताई, कि "हे महोदय! मेरे पुत्रने तुमको शाप दिया है। सावधान होओ, हे महाराज! तक्षक तुमको तेजद्वारा जलावेगा।"

हे जनमेजय! आपके पिता यह कठोर बात सुनकर नागोत्तम तक्षक का भय खाकर सावधान हो रहे। अनन्तर उस सातवें दिनके आने पर महर्षि काश्यप राजाके समीप आ रहे थे, पथ में नागनाथ तक्षकने उनको देखा तक्षक बोला, "हे द्विज! तुम शीघ्रतापूर्व्वक कहां जा रहे हो? क्या करना चाहते हो?" काश्यपने उत्तर दिया, "हे विप्र! आज नागराज तक्षक कुरुकुलप्रदीप राजा परीक्षित् को तेज से जलावेगा, मैं आज हो आरोग्य करने के अभिप्राय से शीघ्रतापूर्व्वक जा रहा हूं; मेरे वहां जाने पर तक्षक उनका प्राण नहीं ले सकेगा।" तक्षक बोला, "हे ब्रह्मन्! मैं ही तक्षक हूं, मेरे काटने पर तुम क्यों उनको बचाना चाहते हो? कभी बचा नहीं सकोगे, वरण मेरा आश्चर्य्य वीर्य्य प्रत्यक्ष करो।" तक्षकने यह बात कहकर एक वृक्ष को काटा; आगे

काटनेहीसे वह वृक्ष उसी क्षण भस्म हो गया। हे राजन्! तब काश्यपने उस वृक्ष को बचाया यह देखकर तक्षक काश्यप को यह कहकर लुभाने लगा, कि बोलो, तुम क्या पाने की इच्छासे राजा के पास जा रहे हो। काश्यपने उत्तर दिया, कि मैं धन पाने की आशासे जाता हूं। अनन्तर तक्षकने उस महात्मा को मीठी बातों से कहा, "हे अनघ! तुमने-राजासे जितना धन पाने की आशा की है, मैं उससे भी अधिक धन देता हूं, लौट जाओ।" तक्षक को यह बात सुनकर मानवश्रेष्ठ काश्यप प्रार्थना से अधिक धन पाकर लौट गये। अनन्तर परम धार्म्मिक नृपश्रेष्ठ आपके पिताके सुरक्षित गृह में बड़े सावधान रहने पर भी तक्षकने वेष बदलकरके आकर विषरूपी आगसे उनको भस्म किया। उसके पश्चात् आप विपक्षियों को जीतने को उनके पदपर आरूढ़ हुए हैं; हे नृपश्रेष्ठ! हमने जो सब अति भयावनी लीला देखी और सुनी है, वह सब आद्योपान्त कह सुनाई। हे नरनाथ! अपने पिता और उतङ्क ऋषि की पराजय का वृत्तान्त तो सुन चुके, अब जो उचित हो, कीजिये।

श्रीउग्रश्रवाजी बोले, कि अनन्तर शत्रुकुल-शाली राजा जनमेजय ने मन्त्रियोंसे कहा, "यह आश्चर्य्य लीला, कि तक्षकने वनस्पति को जलाया और काश्यपने उसको जीवन दिया, तुमने किस्से सुनी है? मुझको जान पड़ता हैं, कि तक्षकने उस समय सोचा था, कि इस ब्राह्मण के मन्त्रद्वारा विष से मुक्त होकर वृक्ष को जीवन मिला है, सो मेरे राजाको काटनेसे यह ब्राह्मण जाकर यदि उनको जिला दे, तो लोग यह कहकर मेरी हंसी करेंगे, कि तक्षक का अब वैसा विष न रहा। सर्पाधम पापात्मा तक्षकने मनही मन में यह सोचकर काश्यपजी को प्रसन्नकर बिदाकर दिया था, इस में कुछ भी सन्देह नहीं है; पर, मैं चाहे जिस उपायसे हो, उस पापात्मा के इस पाप का उचित प्रतिफल दूंगा; परन्तु मैं एक बात पूछता हूं, कि निर्ज्जन बन में काश्यप और तक्षक में बातों का होना किसने सुना है, वा किसने देखा है, अथवा क्योंकर वह तुम्हारे कानों तक पहुंचा? मैं यह सुनकर ऐसी चेष्टा करूंगा, कि सर्पकुलका नाश होवे।" मन्त्रियों ने कहा, कि हे राजन्! काश्यप और तक्षक का मिलन-वृत्तान्त जिसने हमसे जिस प्रकारसे कहा था, वह कहता हूं, सुनिये। हे पृथ्वीपते! एक मनुष्य लकड़ी के निमित्त उस वृक्ष पर चढ़ कर सूखी शाखा बटोर रहा था; उक्त ब्राह्मण और तक्षकने वृक्ष पर चढ़े हुए उस मनुष्य को देखा नहीं था, हे राजन्! वह मनुष्य तक्षक के विषाग्नि से वृक्ष-सहित भस्म हो गया था, आगे काश्यपजीके प्रभाव से वृक्ष के साथ जी उठा, उस पुरुषने हमारे पास आकर तक्षक और ब्राह्मण का सम्पूर्ण वृत्तान्त कहा था; हे राजन्! हमने जो कुछ देखा है और सुना है, वह सब कह चुके। हे राजसिंह! इस क्षण सुनकर जो उचित हो, कीजिये।

श्रीउग्रश्रवाजी बोले, कि राजा जनमेजय मन्त्रियों की बात सुनकर दुःख से अति कातर और खेदयुक्त होकर हाथ से हाथ मलने लगे और बार बार लम्बी सांस लेकर उन कमल नेत्रों से आंसू गिराने लगे। पिताके शोकसे रोने में उनके आंसू रोकने योग्य न रहे; अनन्तर वह यथाविधि जल छूकर खेदयुक्त चित्तसे क्षणभर सोच करके मनही मन में कार्य्य ठहराकर मन्त्रियों से बोले, "मेरे पिताके पर-लोक सिधारने के विषय में तुमने जो कहा, उसे सुनकर मैंने मनही मन में जैसा निश्चय किया है, वह सुनो। मैंने सोचा है, कि जिस दुरात्मा तक्षकने शृङ्गी नामक ऋषि-पुत्रका

मिस मात्र पाकर मेरे पिता को जलाकर नष्ट किया है, उस पापिष्ट का प्रतिफल देना उचित है; देखो, उस दुरात्मा का अत्याचार कितना है; काश्यपजी आ रहे थे, उनको उसने धन देकर लौटा दिया; वह ब्राह्मण आये होते, तो मेरे पिता बिना सन्देह जी उठते। काश्यपजी के प्रसाद और मन्त्रियों के विनय से जी गये होते, तो उसकी कौनसी हानि हुई होती! उस अजेय राजा को जिलाने के निमित्त द्विजोत्तम काश्यप आ रहे थे, उसने मूर्खता से क्यों उनको रोका? यह सोचकर कि ब्राह्मण राजा को जीवन न दें, उनको धन देना उस दुराचारी तक्षकका बड़ा अत्याचार प्रकट करता है, अतएव मैं उतङ्क के, मेरे और तुम्हारे हितानुष्ठान करने के निमित्त पिता की शत्रुता का बदला लूंगा।

आदिपर्व्व में पचासवां अध्याय समाप्त।

श्रीउग्रश्रवाजी बोले, कि ब्रह्मन्! भरतसिंह परीक्षितपुत्र पृथ्वीनाथ श्रीमान् जनमेजय की यह सब बात मन्त्रियों से अनुमोदित होने पर उन्होंने सर्पयज्ञ करने का प्रण ठान लिया। अनन्तर उन वाक्ययुक्त राजा ने पुरोहित और ऋत्विकों को बुलवाकर कार्य्योपयुक्त यह बात कही, कि जिस दुरात्मा तक्षकने मेरे पिता की हिंसा की है, मैंने उसका यथोचित प्रतिफल देने की इच्छा की है; आपलोग कहें, कि ऐसे किसी विधान से विदित हैं वा नहीं, कि जिससे नागराज तक्षक को मित्रों के साथ जलती हुई आग में डाल सकूं? पहिले तक्षकने जिस प्रकार से विषरूपी आगसे मेरे पिता को जलाया था, मैंने भी उस पापिष्ट को उस प्रकार जलती हुई आग में आहुति चढ़ाकर जलाने की इच्छा की है। ऋत्विकगण बोले, कि राजन्! पुराणों में देखते हैं, कि सर्पयज्ञ नामक एक महान् यज्ञ है; देवताओंने आपही के निमित्त उस यज्ञको रचा है। पौराणिकलोग कहते हैं, कि आपके विना कोई दूसरे भूप उस महायज्ञ का अनुष्ठान नहीं कर सकेंगे। हे महाराज! हम लोग भी उसके नियमों से ज्ञात हैं।

श्रीउग्रश्रवाजी बोले, कि हे सत्तम! राजाने ऋत्विकों की यह बात सुनकर तक्षक को अग्निके मुहमें पड़ा हुआ और जला हुआ समझा। आगे मन्त्रज्ञ ब्राह्मणों से बोले, कि मैं सर्पयज्ञ का अनुष्ठान करूंगा; आपलोग आयोजन कीजिये। हे द्विजसत्तम! बुद्धिमान, वेदज्ञ ऋत्विकलोगोंने यज्ञस्थान के निमित्त एक स्थान ठहराकर यथाविधि उसे सजाया; आगे उन्होंने वेदविधिके अनुसार परम ऋद्धियुक्त द्विजोंसे निषेवित अपरिमित धनधान्यवाले ऋत्विकों से सेवित इष्ट यज्ञस्थानको बना करके राजा को सर्पयज्ञ में दीक्षित किया; पर तब उस सर्पयज्ञ में विघ्नडालनेवाला एक भारी निमित्त उपस्थित हुआ। जब यज्ञस्थान बन रहा था, तब वास्तुविद्यामें पण्डित बुद्धिमान् राज (स्थपति) पौराणिक सूतने कहा था, कि जिस देश में और जिस काल में यह नाप आरम्भ हुआ है, उससे जान पड़ता है, कि एक ब्राह्मण के द्वारा यह यज्ञ रोका जायगा। राजा दीक्षित होने के पहिले यह बात सुनकर द्वारवानों से बोले, कि मेरे न जानने में किसी को भी घुसने न देना।

आदिपर्व्व में एकावन अध्याय समाप्त।

श्रीउग्रश्रवाजी बोले, कि अनन्तर यथाविधि सर्पयज्ञ आरम्भ हुआ। याजकलोग यथाविधि अपने अपने कार्य्यों में लगे। वे लोग काले रङ्गके दुपट्टे लेकर धूंएसे धूम्धली आंख बनाकर विधिपूर्व्वक मन्त्र उच्चारते हुए प्रज्वलित अग्निमें आहुति चढ़ाने लगे, इससे सर्पों के चित्त कांपने लगे। अनन्तर याजकलोग जब सर्पों

को उद्देशकर अग्निके मुह में आहुति देने लगे; तब सादे, काले नीले, बूढ़े, बाल, कोस-भर, योजनभर गोकर्णभर सैकड़ों सहस्रों सर्प लम्बी सांस लेते हुए एक दूसरे की पूंछ और सिर से कसके लपेटकर धीमे स्वरसे परस्पर को बुलाने के पीछे भांति भांतिके शब्दोंसे चिल्ला चिल्ला कर घूमते चक्कर खाते जलती हुई आग में गिरने लगे। इस प्रकारसे सैकड़ों सहस्रों, अयुतों, अर्बुदों सर्प अग्नि में गिरते हो विवश शरीर होकर नष्ट हुए। अनन्तर अश्व-समान हाथी को सुंड़के समान परिघ-समान मत्तहस्ती-समान भारी शरीरधारी और महाबली, अगणित रङ्गविरङ्गके भांति भांति के, विष में विषम, घोररूप दन्तशूक सर्प मातृ-वाक्यरूपी दण्ड से पीड़ित होकर अग्निके मुह में गिरने लगे।

आदिपर्व्व में बावन अध्याय समाप्त।

शौनकजीने पूछा, कि बेटा! पाण्डवनन्दन धीमान् राजा जनमेजय ने सर्पोंको बड़ा भय देनेवाले, अति दुःखदायी, बड़े कठोर जिस सर्प-यज्ञ का अनुष्ठान किया था, विस्तार-पूर्व्वक कहो, कि उसमें कौन कौन महर्षि ऋत्विक और सदस्य थे, क्योंकि यह जानना चाहता हूं, कि कौन कौन मुनि सर्पयज्ञके विधानसे विदित थे। श्रीउग्रश्रवाजी बोले, कि जो सब पण्डितलोग सर्प यज्ञ में ऋत्विक और सदस्य थे, उनके नाम कहता हूं सुनिये। च्यवनवंशी वेदज्ञ प्रसिद्ध ब्राह्मण चण्डभार्गव उस महायज्ञ में होता, विद्वान् बूढ़े कौत्स नामक ब्राह्मण उद्गाता, जैमिनि मुनि ब्रह्मा, शार्ङ्गरव और पिङ्गल मुनि अध्वर्य्यु हुए थे। पुत्र और शिष्यों के साथ व्यास, उद्दालक, प्रमतक, श्वेत-केतु, पिङ्गल, असित, देवल, नारद, पर्व्वत, आत्रेय, कुण्डजठर, कालघट, वात्स्य, बृद्ध श्रुत-श्रवा, जप और स्वाध्याय में रत सुशील, कोहल, देवशर्म्मा, मौदगल्य, समसौरभ यह सब और दूसरे वेदज्ञ बहुत ब्राह्मण जनमेजयके इस महा-यज्ञमें सदस्य हुए थे। ऋत्विकोंके उस यज्ञमें आहुति चढ़ाना आरम्भ करने पर घोर भया-नक सर्पगण आकर गिरने लगे, उनकी वसा और मेदकी नदी बहने लगी। सदा जलते हुए सर्पोंकी कठोर दुर्गन्ध चारों ओर फैलने लगी; आगमें गिरे, आकाशमें ठहरे और अग्निसे जलते हुए, सर्पोंके चिल्लानेके शब्द सदा सुनाई देने लगा। नागनाथ तक्षकने राजा जनमेजयके सर्पयज्ञमें दीक्षित होनेकी बात सुनकर, अपनेको दोषी जान, इन्द्रपुरीमें जाय, भययुक्तचित्तसे इन्द्रके पास आद्योपान्त सब बात कहकर उनकी शरण ली। इससे इन्द्रजी प्रसन्न होकर बोले, "हे नागराज तक्षक! सर्पयज्ञसे तुमको कोई भय नहीं है, मैंने पहि-लेही तुम्हारे लिये पितामह जीको प्रसन्न किया है, सो तुम्हे भय नहीं है, चित्त की पीड़ाको दूर करो।"

श्रीउग्रश्रवाजी बोले, कि अनन्तर नागोत्तम तक्षक इन्द्रसे इस प्रकार ढाड़स पाकर प्रसन्न चित्तसे इन्द्रके पास रहने लगा। इधर नागोंके हर घड़ी अग्निमें गिरने पर वासुकी अपने परि-वारोंको अल्पशेष देखकर अति दुःखी चित्तसे खेदयुक्त होने लगे, तब वह अति शोकसे घेर गये और उनका मन डोलने लगा। अनन्तर उक्त नागनाथने अपनी बहिन से कहा, "भद्रे! मेरा शरीर जल रहा है, मैं चारों ओर अंधेरो छायी हुई देखता हूं, मोहसे विवश हो रहा हूं, मेरा चित्त घूम रहा है, देखनेमें भ्रम हो रहा है। आज विवश शरीरसे मुझको भी जलती हुई आगमें गिरना पड़ेगा, सर्पोंके नाशके निमित्त जनमेजयने यज्ञ आरम्भ किया है। मुझको भी यमराज का पाहुना बनना पड़ेगा। अरी बहिन! जिस हेतु जरत्कारु ऋषिसे तुम्हारा विवाह कर दिया था, यह वही काल

आ पहुंचा है, अब हमको मित्रोंके सहित बचाओ; हे नागोत्तमे! पहिले पितामहने स्वयं मुझसे कहा था, कि सर्पयज्ञ आरम्भ होने पर आस्तीक-ऋषि उसे रोंकेंगे; सो बहिन! अब मेरी और मेरे परिवारोंकी रक्षाके निमित्त वृद्ध-सम्मत वेदनिपुण अपने बालकपुत्रसे कहो।

आदिपर्व्वमें तिरपन अध्याय समाप्त।

श्रीउग्रश्रवाजी बोले, कि अनन्तर सर्पकी बहिन जरत्कारुने नागनाथ वासुकिके वाक्यानुसार अपने पुत्र को बुलाकर यह कहा, कि बेटा! भैयाने मुझे तुम्हारे पिताको जिस निमित्त दान दिया था, उसका काल अब आगया है, जो उचित हो, करो। आस्तीकजी बोले, कि सच कहो, किस लिये मामाने तुम्हें मेरे पिता को दान किया था, मैं सुनकर उसके अनुसार कार्य्य करूं। उसके अनन्तर बान्धवोंके हितचाहनेवाली सर्पकी बहिन जरत्कारु ढाड़स पाकर पुत्रसे बोली, कि सम्पूर्ण सर्पों की माता कद्रुने जिस कारणसे क्रोधित होकर अपने पुत्रोंको शाप दिया था, वह कहती हूं, सुनो! उसने विनतासे दासीपन का दाव लगाकर सर्पोंसे कहा था, कि तुमलोग सादे उच्चैःश्रवाको काला बनाओ, सर्पोंके न मानने पर उसने शाप दिया, कि "जनमेजय राजा के सर्पयज्ञमें अग्निदेव तुमको जलावेंगे और तुम मरकर परलोकको सिधारोगे।" कद्रुके शाप देने पर सर्व्वलोकोंके पितामह ब्रह्माने "एवमस्तु" कहके उस बातका समर्थन किया। वासुकिनेभी पितामहजीकी वह बात सुनकर अमृत मथनेके पश्चात् देवोंकी शरण ली। देवगण दुर्लभ अमृतको पाकर सफलमनोरथ होकर मेरे भाईको साथ लेकर पिताकहके समीप जा पहुंचे।

और सब देवता नागनाथ वासुकिसे मिलकर पद्मयोनि ब्रह्माजीको इसलिये प्रसन्न करने लगे, कि सर्पोंका शाप मुक्त होवे। देवगण बोले, कि भगवन्! यह नागनाथ वासुकि स्वजनोंके निमित्त अति दुःखी हैं, अतएव ऐसा कीजिये, कि माताका शाप दूर होवे। ब्रह्माजी बोले, कि जरत्कारु नामक ऋषि जरत्कारु नाम्नी जिस सर्प-बहनसे विवाह करेंगे, उसीके गर्भसे एक श्रीमान ब्राह्मण जन्म लेकर सर्पों को माताके शापसे बचावेगा। बेटा! नागनाथ वासुकिने पितामहकी यह बात सुनकर तुम्हारे पिताके साथ मेरा विवाह कर दिया, अतएव सर्पयज्ञका काल आनेके पहिलेही तुमने मेरे गर्भसे जन्म लिया है; अब वह कठोर काल आ पहुंचा है, तुम हमको भयसे बचाओ, अग्निसे सुखसे मेरे भाईकी रक्षा करो। बेटा! मैं सर्पोंको रक्षाके निमित्त तुम्हारे पिताको दी गई थी, सो ऐसा करो, कि मैं जिस अभिप्रायसे सौंपी गई थी, वह व्यर्थ न हो; अथवा कहो तो सही, इस विषयमें तुम्ही क्या सोच रहे हो। आस्तीकने माताकी बात सुनकरके "तथास्तु" कहकर मान ली; आगे दुःखसे जलते हुए वासुकिको जीवन दे करकेही मानों बोलने लगे, कि हे महाभाग सर्पनाथ वासुके! मैं सच कहता हूं, तुमको उस शापसे बचाऊंगा; राजन्! तुम चित्त स्थिर करो, तुम्हें कुछ भय नहीं है, मैं विशेष यत्न करूंगा, कि जिससे तुम्हारा मङ्गल होगा, मैं हंसीमें भी झूठ नहीं बोलता; फिर कामके समय कहनेकी कौन सी सम्भावना है? मामा! मैं उन दीक्षित छातपात जनमेजयके निकट चलकर मङ्गलयुक्त बातोंसे उसका प्रसन्न करूंगा; हे सत्तम! ऐसा करूंगा, कि वह यज्ञ रुक जाय; हे महाभाग नागनाथ! मैं जो कह रहा हूं, वह असम्भव न जानिये, और तुम्हारे चित्तमें ऐसी समझ न आवे, कि मुझमें यह झूठ ठहर सके। वासुकि बोले, कि हे

आस्तीक! मैं चक्कर खारहा हूं, मेरा हृदय फटा जाता है, ब्रह्मदण्डसे पीसे जाकर चारों ओर अंधेरी देख रहा हूं। आस्तीकजी बोले, कि हे सर्पराज! तुम किसी प्रकार दुःखी मत होओ, मैं तुम्हारा प्रज्वलित अग्निका भय दूर करूंगा, मैं प्रलय-कालिक अग्निकी समान तेजस्वी अति घोर ब्रह्मदण्डको दूर करूंगा, तुम इस प्रकारसे किसी विषयमें भय मत करो।

श्रीउग्रश्रवाजी बोले, कि अनन्तर द्विजश्रेष्ठ आस्तीक मुनि वासुकिकी कठोर चित्तपीडाको दूरकर स्वयं सर्पकुलके उद्धारका भार लेकर शीघ्रता पूर्वक सर्व्व गुणशाली जनमेजयके यज्ञ स्थानको पधारे। आगे वहां पहुंचकर अग्नि और सूर्य्यके समान प्रकाशमान अगणित सदस्योंसे भरे हुए, सुन्दर यज्ञस्थान को देखा। यज्ञभूमिमें घुसनेके कालमें द्वारवानोंसे रोके जानेके कारण घुसनेकी इच्छासे उस सर्पयज्ञकी प्रशंसा करने लगे। अनन्तर हे पुण्यात्माओंमें श्रेष्ठ, द्विजोत्तम! आस्तीकमुनि यज्ञभूमिमें पहुंचकर अनन्त कीर्त्तियुक्त भूपाल ऋत्विक, सदस्य और अग्निका स्तव करने लगे।

आदिपर्व्वमें चौवनवां अध्याय समाप्त।

श्री आस्तीकजी बोले, कि हे भारतश्रेष्ठ परीक्षित्! प्रयागमें सोम, वरुण और प्रजापतिका जैसा यज्ञ हुआ था, आपका यह यज्ञ वैसाही हुआ है। प्रार्थना करता हूं, कि हमारे प्रियजनों का मङ्गल होवे। हे भारतश्रेष्ठ परीक्षित्! देवराजने जो सौ यज्ञ किये थे, आपका यह यज्ञ उस प्रकारके अयुत यज्ञकी समान हुआ है। प्रार्थना करता हूं, कि हमारे प्रियजनोंका मङ्गल होवे। हे भारतश्रेष्ठ परीक्षित्! यम, हरिमेधा और रन्तिदेवने जो यज्ञ किया था, आपका यह यज्ञ वैसाही हुआ है; प्रार्थना करता हूं, कि हमारे प्रियजनोंका मङ्गल होवे। हे भारतश्रेष्ठ परीक्षित्! गय, शशविन्दु और वैश्रवण राजाने जो यज्ञ किया था, आपका यह यज्ञ वैसाही हुआ है, प्रार्थना करता हूं, कि हमारे प्रियजनों का मङ्गल होवे। हे भारतश्रेष्ठ परीक्षित्! नृग, अजमीढ़, और दाशरथि राजा रामचन्द्रजीने जो यज्ञ किया था, आपका यज्ञ वैसाही हुआ है, प्रार्थना करता हूं, कि हमारे प्रियजनों का मङ्गल होवे। हे भारतश्रेष्ठ परीक्षित्! अजमीढ़वंशी देवपुत्र युधिष्ठिरका यज्ञ स्वर्गमें जैसा प्रशंसित हुआ था, आपका यह यज्ञ वैसाही हुआ है, प्रार्थना करता हूं, कि हमारे प्रियजनोंका मङ्गल होवे। हे भारतश्रेष्ठ परीक्षित्! सत्यवती-पुत्र कृष्णद्वैपायनने स्वयं सम्पूर्ण धर्म्मानुष्ठान करके जो यज्ञ किया था, आपका यह यज्ञ वैसाही हुआ है, प्रार्थना करता हूं, कि हमारे प्रियजनोंका मङ्गल होवे। देवराज इन्द्रजीके यज्ञमें जैसे सदस्य थे, उनके ऐसे आपके इस यज्ञमें सूर्य्यके समान प्रकाशमान यह सब सदस्य बैठे हैं, इस कालमें ऐसी कोई वस्तु विद्यमान नहीं है, जो यह लोग न जानें; अतएव इनको दान देनेसे कभी नष्ट नहीं होता; मैंने निश्चय करलिया है, कि भगवान् द्वैपायनकी समान ऋत्विक तीनों भुवनमें नहीं है, क्योंकि इनके शिष्यलोग निज निज कार्य्यमें दक्ष और सब कामोंमें ऋत्विक होकरके भूमण्डलमें घूम रहे हैं। विभावसु चित्रभानु, महात्मा, हिरण्यरेता, हुतभुख और कृष्णवर्त्मा अग्निदेव प्रज्वलित और दक्षिण ओरकी शिखायुक्त होकरके देवोंको तृप्त करनेके लिये आपकी यह हवनकी वस्तु मांग रहे हैं। हे राजन्! इस धरती भरमें आपके सदृश प्रजापालक महाराज और कोई नहीं है, आपके धीरज कोभी देखकरके मैं सदा प्रसन्न रहता हूं; आप वरुण और धर्म्मराज यमकी

समान अनुशासक हैं; साक्षात वज्रधारी देवराजकी भांति मर्त्यलोकमें प्रजाको पाल रहे हैं। हे पुरुषश्रेष्ठ! आप हमारे सम्मानके पात्र हैं, ऐसा यज्ञशील नरेश इस लोकमें कोई नहीं है। आप खट्टाङ्ग, नाभाग और दिलीप नरेशोंके सदृश हैं, आपका प्रभाव ययाति और मान्धाता को भांति है और आप भीष्मजीके सदृश व्रतशील होकरके विराजमान हैं। आपका वीर्य्य वाल्मीकिके वीर्य्यवत गुप्त है, आपका क्रोध वशिष्ठके सदृश वशमें है, आपकी प्रभुताई इन्द्रजी की सी है और आपका प्रकाश नारायणजीके प्रकाशके सदृश प्रगट होता है। आप धर्म्मराजकी नाई धर्म्म ठहरानेवाले हैं, श्रीकृष्णजीके सदृश सर्व्व गुणयुक्त हैं, लक्ष्मीजीके वसनेके अद्वितीय आधार हैं, दधीभ्रवके समान बली हैं, श्रीरामचन्द्रजी ऐसे अस्त्रज्ञ और शास्त्रज्ञ हैं, त्रित और श्रौर्व्वके समान प्रभावी और भगीरथ की भांति भेंट के लिये दुर्लभ हुए हैं।

श्रीउग्रश्रवाजी बोले, कि राजा, सदस्य, ऋत्विक और अग्नि सभी इस प्रकार स्तव किये जाने पर प्रसन्न हुए। राजा जनमेजय उनके हृदय के भावको समझकर कहने लगे।

आदिपर्व्वमें पचपन अध्याय समाप्त।

जनमेजय बोले, कि यह बालक, ऋषि वृद्धकी नाई बातें कह रहे हैं, बातोंसे जान पड़ता है, कि यह बालक नहीं, वृद्ध हैं। मुझे इच्छा हो रही है, कि इनको मनमाना वर दूं। ब्राह्मणो! आप इस विषयका उचित विचार करें। सदस्यलोग बोले, कि ब्राह्मण बालकभी होवें, तो राजाके माननीय होते हैं; वे विशेष पूजा पाते हैं, अतएव आप इनके मनमाने सब वर दे सकते हैं, पर ऐसा करना चाहिये, कि हमारा उद्देश्य किया हुआ तक्षक शीघ्र आवे।

श्रीउग्रश्रवाजी बोले, कि राजा वर देनेको अभिलाषी होकर आस्तीक मुनिसे यह कहनेही पर थे, कि "वर मांगो," कि ऐसे समयमें होताने कुछ असन्तुष्ट चित्त होकर कहा, कि महाराज! कुछ विलम्ब कीजिये, अभीतक तक्षक नहीं आया है। जनमेजय बोले, कि आपलोग शक्तिके अनुसार ऐसी चेष्टा कीजिये, कि मेरा कार्य्य पूरा हो और तक्षक शीघ्र आवे, क्योंकि वह तक्षकही हमारा शत्रु है। ऋत्विक लोग बोले, कि हे राजन्! हमारे शास्त्रोंमें कहा है और अग्निदेवभी प्रकाश कर रहे हैं, कि तक्षक, भय खाकर इन्द्रके गृहमें शरण लिये हुए है। महात्मा पौराणिक सूतजी लोहिताक्षने राजासे पूछे जाकर पहिले जिस प्रकार कहा था, तबभी फिर वैसाही कहा, कि महाराज ब्राह्मणलोग जो कहते हैं, वह सत्य है। मैं पुराणके अनुसार कहता हूं, कि इन्द्रने उस तक्षकको यह वर दिया है, कि "तुम मेरे पास छिप रहो, अग्निदेव तुम को जला नहीं सकेंगे।" यज्ञमें दीक्षित राजाने यह बात सुनकर चित्तमें दुःख मानकरके होता से कहा, कि मन्त्र उच्चारणकर तक्षकको आहुति चढ़ाओ। होता अति यत्नसे मन्त्र उच्चारण करते हुए तक्षकके नामसे आहुति देने लगे।

अनन्तर सम्पूर्ण देवोंसे स्तव पानेवाले महानुभाव देवराज रथमें चढ़कर आकाशमण्डलमें स्वयं उपस्थित हुए। मेघ, विद्याधर और अप्सरा उनके साथ आईं, नागराज तक्षक भयसे उनके दुपट्टेमें लिपट रहा। इधर राजाने क्रोधित होकर फिर मन्त्रज्ञ ऋषियोंसे कहा, कि ब्राह्मणो! यदि तक्षकने इन्द्रके गृहमें शरण ली हो, तो इन्द्रके सहित उसको अग्निमें गिराइये। होताने तक्षकके निमित्त जनमेजयसे ऐसी आज्ञा पाकर इन्द्रके सहित तक्षकके नाम आहुति दी। होताके ऐसी आहुति देनेही पर इन्द्रजी तक्षकके साथ पीड़ित होकर

आकाश-मण्डलमें दिखाई देने लगी। उस यज्ञको देखतेही इन्द्र अति भीत होकर तक्षकको छोड़कर हड़बड़ाते हुए अपने घरको भागे। इन्द्रके इस प्रकार भागनेपर तक्षक भयसे मोहित और विवश होकर यज्ञकी अग्निशिखा-के समीप आ पहुंचा! तब ऋत्विकलोग बोले, कि हे राजेन्द्र! अब आपका कार्य्य विधिपूर्व्वक हुआ, अब इन ब्राह्मणश्रेष्ठको वर दे सकते हैं। जनमेजय बोले, कि हे अप्रमेय बालक! तुम जैसे योग्य पात्र हो, मैं तुमको वैसा ही वर दूंगा। तुम्हारे चित्तमें जैसा हो और जो कुछ चाहते हो मांगो; यदि मेरे देनेके अयोग्यभी हो, तौभी दूंगा। इस बीच ऋत्विकोंने कहा, कि हे महाराज! वह देखिये, तक्षक आपके वशमें होकर शीघ्र आ रहा है और भयसे विकल होकर चिल्लानेके हेतु उसकी घोर आहट सुनाई देती है; निश्चय जान पड़ता है, कि बज्रधारी देवराजने उसको छोड़ दिया है, सो मन्त्रके बलसे खींचे जाकर स्वर्गसे गिर रहा है; देखिये, वह सर्पनाथ तेज श्वांस छोड़ता हुआ आकाशमें चक्कर खा खा-कर और चेतना-वर्ज्जित होकर आ रहा है।

श्रीउग्रश्रवाजी बोले, कि नागनाथ तक्षक अग्निमें गिर रहा था, कि ऐसे समयमें आस्तीक मुनिने इस वरके मांगनेका अवसर लिया, कि हे जनमेजय! यदि वर दें, तो मेरी यह प्रार्थना है, कि आपका यह सर्पयज्ञ बन्द होवे और सर्प इसमें अब न गिरें। ब्रह्मन्! आस्तीकको यह वर पानेकी प्रार्थना सुनकरके परीचित्-पुत्रने अनधिक प्रसन्न चित्तसे कहा, विभो! आप सोना, चांदी, गौ, वा और कुछको प्रार्थना कीजिये, सभी दे सकूंगा; पर मेरा यह यज्ञ बन्द नहीं होगा। आस्तीकने उत्तर दिया, कि राजन्! मैं सोना, चांदी, गौ आदि कुछ नहीं मांगता, आपका यह यज्ञ बन्द हो, उसीसे मेरे मातृकुलका मङ्गल होगा।

श्रीउग्रश्रवाजी बोले, कि, मुनि आस्तीकके ऐसा उत्तर देने पर बोलनेमें तेज राजा जन-मेजय वार वार कहने लगे, कि "हे द्विजश्रेष्ठ! आप दूसरा वर मांगिये, तो आपके लिये मङ्गल होगा; पर आस्तीकने किसी प्रकार दूसरे वरको प्रार्थना नहीं की। अनन्तर वेदज्ञ सम्पूर्ण सदस्योंने मिलकर राजासे कहा, कि ब्राह्मण-कुमारको मनमाना वर दीजिये।

आदिपर्व्वमें छप्पनवां अध्याय समाप्त।

श्रीशौनकजीने पूछा, कि हे सूतपुत्र! उस सर्पयज्ञमें जो सब सर्प आ गिरे थे, उनके नाम सुनने चाहता हूं। श्रीउग्रश्रवाजी बोले, कि हे द्विजोत्तम! सहस्रों, अयुतों, अर्ब्बुदों सर्प अग्निमें हवन हुए थे, बहुत होनेके हेतु उनकी संख्या नहीं हो सकती, पर जितना स्मरण है, कहता हूं। पहिले उनमें वासुकि-वंशी नीले, लाल, सादे, बड़े, घोर विषसे भयावने जितने बड़े बड़े सर्प माताके वाक्यरूपी दण्डसे पोसे जाकर विवश और पीड़ायुक्त हृदयसे अग्निमें हवन हुए थे, उनके नाम सुनिये। कोटिश, मानस, पूर्ण, शल, पाल, हलीमक, पिच्छल, कौणप, चक्र कालवेग, प्रकालन हिर-ण्यवाहु, शरण, कक्षक और कालदन्तक वासुकि -वंशी यह सब और महाबली घोररूपी दूसरे सर्प भी जलती हुई, आग में गिरे थे! तक्षक कुल से उपजे हुए, सर्पों के नाम कहता हूं, सुनिये। पुच्छाण्डक, मण्डलक, पिण्डसेक्ता, रभेणाक उच्छिख, शरभ, भङ्ग, विल्वतेजा, विरो-हण, शिली, शलकर, मूक, सुकुमार, प्रवेपन, मुद्गर, शिशुरोमा, सुरोमा और महाहनु, तक्षकवंशी यह सब सर्प अग्निमें घुसे थे। पारा-वत, परिपात्र, पाण्डव, हरिण, कृश, विहङ्ग, शरभ, मेद, प्रमोद और संहतापन, ऐरावत वंशी यह सब नाग आगमें गिरे थे। हे द्विजो-त्तम! एरक, कुण्डल, वेणी, वेणीस्कन्ध, कुमा-

रक, वाहुक, शृङ्गवेर, धूर्त्तक, प्रातर, आतक, कौरव्यवंशी यह सब नाग आगमें घुसे थे। हे ब्रह्मन् धृतराष्ट्रवंशी विषधारी वायुवत वेगवान नागोंके नाम कहता हूं, सुनिये। शङ्कुकर्ण, पिठरक, कुठार, सुखसेचक, पूर्णाङ्गद, पूर्णमुख, प्रहास, शकुनि, दरि, अमाहठ, कामठक, सुषेण, मानस, व्यय, भैरव, मुण्डवेदाङ्ग, पिशङ्ग, मुद्रपारक, ऋषभ, वेगवान्, नाग, पिण्डारक, महाहनु, रक्ताङ्ग, सर्व्वसारङ्ग, समृद्ध, पटवासक, वराहक, वीरणक, सुचित्र, चित्रवेगिक, पराशर, तरुणक, मणिस्कन्ध और अरुणि। हे ब्रह्मन्! यह सब बड़े बड़े सर्पोंके नाम कह चुका, अधिक होने के हेतु सब सर्पोंके नाम नहीं कह सका; इनके बेटे और इनके पोते जो जलती हुई आग में गिरे थे, उनकी संख्या नहीं लगती। इनके सिवाय तीन शिर्षयुक्त सात शिर्षयुक्त, दश शिर्ष युक्त प्रलय कालिक अग्नि ऐसा विष धरनेवाले भयानक, बड़े भारी भारी अति तेज पहाड़की चोटी ऐसे ऊंचे योजन भर फैले हुए, दो योजन घेरे हुए, कामरूपी कामवलसे जगते हुए, अग्निवत् विषधारी भांति भांतिके सैकड़ों, सहस्रों सर्प ब्रह्मदण्डके समान माताकी वातसे पोसे जाकर उस महायज्ञमें जल गये थे।

आदिपर्व्वमें सतातनवां अध्याय समाप्त।

श्रीउग्रश्रवाजी बोले, कि सुनिये, परीक्षित्पुत्र जनमेजयके उस प्रकार वर देनेके प्रस्तुत होने पर और एक आश्चर्य लीला हुई थी। नागनाथ तक्षक इन्द्रजीके हाथसे फिसलकर आकाशहीमें रहने लगा। तब राजा जनमेजय सोचने लगे, कि भयसे विकल होने पर भी तक्षक विधिपूर्व्वक आहुति दी हुई आगमें क्यों नहीं गिरा। शौनकजीने पूछा, कि हे सूत! क्या उस समय मनीषासम्पन्न ब्राह्मणोंका मन्त्र प्रतिभायुक्त नहीं हुआ था, कि तक्षक आगमें नहीं गिरा? श्रीउग्रश्रवाजी बोले, कि नागराज तक्षक चेतना खोकरके जब इन्द्रजीके हाथसे फिसलकर गिर रहा था, तब मुनि आस्तीकने "रहो, रहो, रहो," यह बात तीनबार कही थी; जैसे कोई पुरुष आकाश और धरतीके बीचमें ही रहे, वैसेही तक्षक दुःखी चित्तसे आकाशहीमें रहने लगा। अनन्तर सदस्योंके अति अनुरोधसे राजाने कहा, कि अच्छा, आस्तीक जो कहते हैं, वही होवे; सर्पयज्ञ बन्द होवे, सर्प शीघ्रसे बचें। अनन्तर चारों ओर आनन्दध्वनि उड़ने लगी; मुनि आस्तीकको वरदेनेसे पाण्डवनन्दन राजा जनमेजयका यज्ञ बन्द हुआ। आगे राजा परीक्षित्पुत्रने प्रसन्न होकर ऋत्विक, सदस्य और दूसरे लोगों को, जो उस यज्ञमें आयेथे, सैकड़ों सहस्रों मुद्रा दान दिये। जिस्ने पहिलेही कहा था, कि एक ब्राह्मणसे यज्ञ बन्द होगा, उस (राज) स्थपतिके बेटे लोहिताक्षको भी बहुत धन दिया। उस अपरिमित पराक्रमी राजाने प्रसन्न होकर उस लोहिताक्षको भोजन वस्त्रादि देकर अन्तमें विधिके अनुसार यज्ञान्त स्नान किया। आगे सन्तुष्ट होकरके उस कृत्य किये हुए और प्रसन्नचित्त पण्डित आस्तीकको यथोचित पूजाकर घरमें जानेकी आज्ञादी और कह दिया, कि आप फिर आना, मैं जब अश्वमेध नामक महायज्ञ करूंगा, तब आपको सदस्य होना पड़ेगा।

श्रीउग्रश्रवाजी बोले, कि आस्तीक इस प्रकार अलौकिक कार्य्य साधकर अति प्रीतिचित्तसे राजाको प्रसन्न करके तथास्तु कहकर चले गये। आगे जब उन्होंने आनन्दित हृदयसे माता और मामाके पास चलकर प्रणामपूर्व्वक सब वृत्तान्त कह सुनाये, तब वहां जो सर्प उपस्थित थे, वे भयरहित हुए और मुनि आस्तीक पर प्रसन्न होकर कहा, कि तुम मनमाना वर मांगो, हमको बचानेके हेतु हम सब तुम पर बड़े सन्तुष्ट हुए हैं, अब तुम्हारा कौनसा प्रिय

कार्य्य करें ? सर्पगण बार बार कहने लगे, कि बेटा ! तुम्हारा कौनसा वाञ्छित कार्य्य पूरा कर दें ? आस्तीकजी बोले, कि इस भूमण्डलमें जो सब ब्राह्मण वा दूसरे मनुष्य प्रसन्न चित्त होकर प्रातःकाल वा सन्ध्याके समय मेरा यह धर्म्मआख्यान पढ़ेंगे, उनको तुमसे कोई भय नहीं रहेगा। सर्पोंने प्रसन्न मनसे कहा, कि हे भाञ्जे ! तुम जो वर मांगते हो, वह हम सिर नायकर और आनन्दचित्त होकर देयेंगे। "जो दिन को वा रात्रिमें असित, आर्त्तिमान और सुनीथ को स्मरण करेंगे, उनको सर्पोंसे भय नहीं रहेगा, जिस यशयुक्त आस्तीकने जरत्कारुके वीर्य्य और जरत्कारुके गर्भसे जन्म लिया था, जिन्होंने सर्प-यज्ञोंमें तुम्हारी रक्षा की थी, हे महाभाग सर्पों ! हम उनको स्मरण करते हैं, अब हमारी तुम हिंसा नहीं कर सकते हो, हे अति विषयुक्त सर्प। भागो तुम्हारा मङ्गल होवे, हे सर्प ! चले जाओ, राजा जनमेजयका यज्ञ अन्त होने पर मुनि आस्तीकने जो बात कही थी, वह स्मरण करो; जो सर्प आस्तीक का वाक्य सुनकर चला नहीं जाता है, शिंशवृक्षके फलके सदृश उसका सिर सैकड़ों टुकड़ोंमें फट जाता है।

बड़े बड़े सर्पों के मिलकर यह वर देने पर महात्मा द्विजवर आस्तीकने परलोक सिधारनेकी कल्पना की। धर्म्मात्मा द्विजोत्तम आस्तीक इस प्रकार सर्पोंको सर्पयज्ञसे रक्षा कर पुत्र पौत्रादि छोड़कर उचित समयमें परलोकको सिधारे। यह आस्तीकोपाख्यान आपके समीप यथावत् कीर्त्तन किया ; इसको कीर्त्तन करनेसे सर्पका भय जाता रहता है। ब्रह्मन् ! आपके पूर्व्व-पुरुष भार्गवोत्तम प्रमतिने निजपुत्र रुरुसे पूछे जाकर जिस प्रकार कहा था और मैंनेभी जैसा सुनाथा, कविवर आस्तीकके सुन्दर चरित्रको वैसाही कह सुनाया। ब्रह्मन् ! डुण्डुभका वाक्य सुनकर आप जो बहुधर्म्मयुक्त और पुण्य बढ़ानेवाला यह आस्तीकोपाख्यान सुनकर इसक्षण आपका महत् कौतूहल दूर होवे।

आदिपर्व्वमें अठावनवां अध्याय और आस्तीकोपाख्यान समाप्त।

श्रीशौनकजी बोले, कि बेटा ! तुमने मेरे पास भृगुवंशी आदि जो सब महत् आख्यान कीर्त्तन किये हैं, उनसे मैं बड़ा प्रसन्न हूं। हे सूतनन्दन ! तुमसे फिर कहता हूं, कि व्यासजीके विषयमें जो सब कथा हैं, उनको यथावत् कीर्त्तन करो। उस बड़े भारी यज्ञमें महात्मा सदस्योंके अवसर के समय जिन जिन विषयों में जो आश्चर्य्य कथायें हुई थीं, वह सब तुम्हारे मुहसे सुनना चाहता हूं। हे सौति ! तुम वह सब हमसे कहो, उग्रश्रवाजी बोले, कि सर्प-यज्ञके अवसरके समय ब्राह्मणोंने वेदाश्रययुक्त अनेक कथा कही थीं, उनमें व्यासजीने महाभारत नामक विचित्र आख्यानको कीर्त्तन किया था। शौनकजी बोले, कि कृष्णद्वैपायन जनमेजयसे पूछे जाकर अवसरके अनुसार पाण्डवोंका यश बढ़ानेवाले महाभारत नामक जिस आख्यानको विधिपूर्व्वक सुनाया था, वह पवित्र कथा विधिके अनुसार सुनना चाहता हूं ; हे साधुओंमें श्रेष्ठ सूतपुत्र ! महानुभाव महर्षिके हृदयसमुद्रसे निकले हुए, उस कथारूपी अमृतका कीर्त्तन करो, अभीतक मेरी सुननेकी इच्छा निवृत्त न होनेके कारण तृप्त नहीं हुआ हूं। श्रीउग्रश्रवाजी बोले, कि आपके निकट कृष्णद्वैपायनके कहे हुए महाभारत नामक अति श्रेष्ठ महाख्यानको आदि से अन्ततक कहूंगा। हे द्विज ! मैं नाना रूपसे सब कहता हूं। सुनिये, इसको कहनेमें मुझे बड़ा हर्ष आ रहा।

आदिपर्व्वमें उनसठवां अध्याय समाप्त।

श्रीउग्रश्रवाजी बोले, कि पण्डित ऋषि कृष्णद्वैपायनजी जनमेजयके सर्पयज्ञमें दीक्षित होना सुनकर वहां पहुंचे। जिन पाण्डव पितामहने शक्तिपुत्र पराशरके वीर्य्य से सत्यवतीकी कन्या-दशाहीमें उसके गर्भमें यमुनाद्वीप पर जन्म लिया था; जिन अतियशयुक्त महर्षिने जन्म लितेही उसीक्षण निज इच्छासे देहको बढ़ाकर वेद, वेदाङ्ग इतिहास आदि सम्पूर्ण शास्त्र पढ़े थे; तप, वेदपाठ, व्रत उपवास, सन्तानोत्पादन वा यज्ञसे कोई भी जिनसे बढ़ चढ़कर नहीं हो सका है; जिन परात्पर परमेश्वरके तत्व जाननेवाले, सत्यव्रतधारी, अतीतदर्शी, गुह्य-चारी, वेदज्ञ, ब्रह्मर्षिने एक वेदको चार भागोंमें बांटा था; जिन पुण्यकीर्त्तियुक्त अति यशवान महर्षिने शान्तनुवंशकी रक्षाके निमित्त पाण्डु, धृतराष्ट्र और विदुरको जन्म दियाथा; उन्ही महात्माने वेद वेदाङ्ग में पण्डित शिष्योंके साथ राजर्षि जनमेजयकी यज्ञ-सभामें प्रवेश किया! वहां देखा, कि जिस प्रकार देवोंसे घेरे जाकर इन्द्रजी बैठते हैं,वैसाही राजा जनमेजय अगणित सदस्यों, मूर्द्धाभिषिक्त बहु देशाधिपों और ब्रह्मवत कर्म्मदक्ष ऋत्विकोंसे घेरे जाकर यज्ञ-सभामें बैठे हैं। भरतवंशके आभूषणरूपी राजर्षि जनमेजय उन ऋषिका स्वागत देखकर प्रसन्नचित्तसे साथियोंके साथ उठ खड़े हुए। देवराज जिसप्रकार बृहस्पतिजीको आसन देते हैं, वैसेही प्रभु जनमेजयने सदस्योंसे सहमत होकर स्वागत महर्षिको सुवर्ण आसन दिया और वह उसपर बैठे और देवर्षियोंसे पूजे जाते हुए उन पितामह कृष्णद्वैपायनको शास्त्रोचित कर्म्मसे पूजा कर उनको योग्य पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय और गौ विधिपूर्व्वक निवेदन किया। भगवान् व्यासजीने प्रीतिचित्तसे पाण्डव जनमेजयसे वह सब पूजा लेकर विना कारण जीवकी हिंसा करना उचित नहीं है, कहके गोवध नहीं करने दिया।

जनमेजयने प्रेम दिखाकर उस प्रकार प्रपितामहको पूजकर निकट बैठकर प्रसन्न-चित्तसे कुशल पूछा। भगवान् व्यासजीने भी उनसे अपना कुशल कहा; आगे सदस्यलोगोंके उनको स्वागत करने पर उन्होंने भी उनकी यथोचित् अभ्यर्थना की। अनन्तर जनमेजयने सदस्योंसे हाथ जोड़कर द्विजश्रेष्ठ प्रपितामहसे पूछा, कि हे द्विज! आपने कुरुपाण्डवोंके अनन्त चरितको प्रगट किया है; अतएव कृपा-कर उसे कहिये मुझे सुननेकी इच्छा हुई है। मेरे प्रपितामह लोग सभी क्रोधद्वेषसे वर्ज्जित थे, तिस परभी क्यों वे दैववश तैसी बड़ी शत्रुतामें गिरे? फिर किस हेतु तैसी अगणित जीव-नाशी लड़ाई हुई? हे द्विजोत्तम! यह सब आदिसे अन्ततक भली भांति सुनाइये।

श्रीउग्रश्रवाजी बोले, कि तब कृष्णद्वैपायन-जीने उनकी यह बात सुनकर निकट बैठे हुए शिष्य वैशम्पायनसे कहा, कि पहिले जिस प्रकार कुरु पाण्डवोंमें बहु झगड़ा हुआ था, वह तुमने मुझसे जैसा सुना है, इस नरेशके समीप ठीक वैसाही कह सुनाओ। विप्रर्षि वैशम्पायनजो गुरुकी आज्ञा पाकर महाराज जनमेजय, सदस्यों और सब राजाओंके सामने कुरु-पाण्डवोंके झगड़े और सर्व्वनाश आदि विषय सम्बन्धी पौराणिक कथाओंको सुनाने लगे।

आदिपर्व्वमें साठवां अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि पहिले गुरुके पदोंपर भक्तिसहित एकचित्तसे साष्टाङ्ग प्रणाम कर, विद्वान् जनों और सम्पूर्ण ब्राह्मणोंको पूजकरके सर्व्वलोकोंसे प्रशंसित धीमान् महर्षि महात्मा व्यासजीका सम्पूर्ण मत कहता हूं। महाराज! आप इस भारतीय उपाख्यानको सुननेके योग्य पुरुष हैं; गुरुजीकी आज्ञा मेरे चित्तको उत्साहित कर रही है; हे भरतकुल-

बात् निज पुत्रको लेकर दुष्मन्तके जाने हुए उस वससे आने लगी। आगे वे सब उस नये सूर्यसदृश तेजस्वी बालकके साथ राजाके द्वार पर पहुंचकर द्वारपालसे राजाको खबर देकर राजमन्दिरमें प्रविष्ट हुए। अनन्तर ऋषि कण्व के शिष्यलोग सम्पूर्ण हाल राजाके सम्मुख कह-कर आश्रमको ओर लौटे।

शकुन्तला राजाका यथानियम सत्कार कर बोली, कि आपके इस पुत्रने मेरे गर्भसे जन्म लिया है; देवता समान यह पुत्र आपहीके वीर्यसे उत्पन्न हुआ है, सो इसको युवराजके पद पर बैठाइये; हे पुरुषश्रेष्ठ! आप जिस प्रकार स्वीकृत हुए थे, वैसाही कार्य्य कीजिये। हे महाभाग! पहिले आपने मुनि कण्वके आश्रममें मुझसे सङ्गमके समय जो प्रतिज्ञाकी थी, उसको स्मरण कीजिये। अनन्तर शकु-न्तलाके यह वचन सुनतेही नरनाथ दुष्मन्तको अपना किया हुआ पूर्व्व कार्य्य स्मरण हुआ; तिस पर भी वह कहने लगे, कि मुझे कुछभी स्मरण नहीं है। अरी दुष्ट तपस्विनि! तू किसकी स्त्री है? तुझसे मेरा धर्म्म, अर्थ और काम किसी विषयके सम्बन्धका रहना मुझको स्मरण नहीं होता, सो तू अब जो चाहती है कर चाहे चली जा, चाहे रह।

दुष्मन्तके ऐसे निष्ठुर वाणी कहनेपर तप-स्विनी सुन्दर शकुन्तला लज्जासे मलिन और अचेतन बनकर दुःखसे जड़के समान खड़ी रही। अभिमान और दुःखमें उसकी आंखें लाल हो गयीं और दोनों होठ हिलने लगी। तब वह तिर्छी दृष्टिसे राजाकी ओर देखकर कटाक्षसे मानों उनको भस्म करने लगी, उसने क्रोधयुक्त होने परभी बाहर कुछ न प्रगटकर तपसे बटोरे हुए तेजको रोक लिया। अनन्तर कुछकाल सोचकर दुःख और खेदयुक्त होके क्रोधसे पतिकी ओर देखकरके बोली, कि महा राज! आप सब जान करकेभी क्यों नीचजनके समान बिन सोचे विचारे "नहीं जानता" यह बात कह रहे हैं? चाहे यह विषय सच वा झूठ हो, पर आपका हृदय सभी जानता है, सो आत्माको गवाहीसे जो मङ्गलयुक्त होवे कह दीजिये, आत्माकी मानहानि न कीजिये? जो जन हृदयमें कुछ रखता है और बाहर कुछ प्रगट करता है, उस आत्मचोर चोट्टेसे ऐसा कौन पाप है, जो नहीं होता! क्या आपने यह समझ लिया है, कि मैंने अकेले यह कार्य्य किया है, साथ कोई नहीं था, कौन जानेगा? क्या आप नहीं जानते, कि पुराण मुनि परमे-श्वर सबके हृदय-मन्दिरमें सदा सजग है? उसके पास कोई पाप छिपा नहीं रहता; आप उसके सामनेही यह पाप कर रहे हैं? लोग पापकर समझते हैं, कि किसीने नहीं जाना, पर देवों और हृदयके परम पुरुषको कुछ अज्ञात नहीं रहते। आदित्य, चन्द्रमा, वायु, अग्नि, आकाश, धरती जल, हृदय, यम, दिवा रात्रि, दोनों सन्ध्या और धर्म्म यह लोग सम्पूर्ण चरित्रोंसे ज्ञात रहते हैं; सब कामोंके साक्षी हृदय मध्यके क्षेत्रज्ञ पुरुष जिनपर प्रसन्न रहते हैं, वैवस्वत काल उनकी सम्पूर्ण दुष्क्रिया नष्ट-कर देते हैं और जिस दुरात्माकी आत्मा सन्तुष्ट नहीं होती, काल उसको पापके कीचड़में गाड़कर पीड़ा पहुंचाते हैं। जो जन आप आत्माका अपमान कर कुछका और कुछ विश्वास दिलाता और आत्माकी गवाही नहीं मानता है, देवगण उसका हित नहीं करते। मैं पतिव्रता स्वयं आ पहुंची हूं कहके मेरा अपमान न कीजिये। मैं आदरयोग्या स्त्री स्वयं आयी हूं, इस समय आदरपूर्व्वक मुझे लेना आपका कर्त्तव्य है, पर आप नहीं लेते हैं। आप क्यों नीचजनकी भांति इस सभामें मुझको तुच्छ समझ रहे हैं? क्या मैं शून्यमें विलाप रही हूं? हे दुष्मन्त मैं बार बार प्रार्थना करती हूं, पर यदि मेरी बात

न मानगी, तो आज आपका सिर सैकड़ों भागोंमें बंट जायगा। प्राचीन कविलोग कहा करते हैं, कि पति स्वयं गर्भके स्वरूपमें पत्नीमें प्रविष्ठ होकर फिर पुत्रके स्वरूपमें जन्म लेता है। पतिके उस जन्म लेनेके लियेही पत्नी जाया कही जाती है, ज्ञानी पुरुषके पुत्र होनेसे वह पुत्र सन्तानोंसे परलोकवासी पितरोंका उद्धार करता है। भगवान् स्वयम्भूने स्वयं कहा है, कि पुत्र पुन्नाम नामक नरकसे त्राण करता है, इस लिये वह पुत्र कहा जाता है। पुत्रसे स्वर्ग मिलता है और प्रपौत्रसे प्रपितामह लोग आनन्दित होते हैं। जो गृहकार्य्योंमें दक्ष है, वह भार्य्या है, जिन्होंने पुत्र प्रसव किया है, वही भार्य्या है, जो पतिप्राणा हैं, वही भार्य्या हैं, जो प्रतिव्रता हैं, वही भार्य्या हैं। मनुष्योंका स्त्री ही आधा अङ्ग है, भार्य्या सबोंसे बढ़कर साथी है, भार्य्याही धर्म्मार्थ काम इन तीनों वर्गोंकी जड़ है और भार्य्याही संसारसे पार करनेका निदान है। जिनके भार्य्या है, वही क्रियादि किया करते हैं; जिनके भार्य्या है, वही गृहवासी है। जिनके भार्य्या है, वही आमोद-प्रमोदसे काल काटते हैं; जिनके भार्य्या है, वही श्रीमान् हैं। प्रियम्वदा भार्य्या निरालेमें अच्छे परामर्श देनेवाले मित्रके समान है, धर्म्मकर्म्ममें हितैषी पिताके समान है, पीड़ाकी दशामें स्नेहवती मातावत् है, और रूखे मार्गमें पथिक पतिका विश्रामका स्थल है; फिरभी जिसके भार्य्या रहती है, उसीका सब लोग विश्वास करते हैं; सो भार्य्याही मनुष्योंकी परम गति है। किसीके सांसारिक लीला अन्तकरने पर नरकमें पैठनेसे उसके उद्धारके निमित्त केवल पतिव्रता भार्य्याही साथी होती है; पत्नीके पहिले परलोक सिधारनेसे वह पतिके निमित्त पथ ताकती रहती है, और पतिके पहिले देह छोड़नेसे सती भार्य्या उसके पीछे जाती है। हे राजन्! क्योंकि भर्त्ता इस लोक और परलोक दोनों लोकोंमें भार्य्याको प्राप्त करता है, इसलिये विवाहकर्म्म विधिबद्ध हुआ है। पण्डितलोग कहा करते हैं, कि आपहीसे आप पुत्रके स्वरूपमें जन्म लेता है, सो पुत्रवती भार्य्याको अपनी माताकी नाई जानना। पुण्यवान् स्वर्ग पानेसे जैसे आनन्दित होते हैं, आईनेमें देखे जाते हुए मुखकी नाई भार्य्याके गर्भसे जन्म लिये हुए पुत्रको देखकर जन्मदाता तैसेही आनन्दित होते हैं। पसीनेसे न्हाया हुआ जन जिस प्रकार ठण्ढे जलसे सन्तुष्ट होता है, मनुष्यगण मनःपीड़ासे जलने और रोगोंसे जकड़े जानेपरभी भार्य्यासे वैसेही आनन्दित होते हैं; अति क्रोधित होनेपर भी पतिको पत्नीका अप्रिय कार्य्य न करना चाहिये; क्योंकि रति, प्रीति और धर्म्म सबही भार्य्याके हाथमें हैं। स्त्रियां आत्माको सनातन पवित्र धर्म्मक्षेत्र हैं; ऋषियोंको भी ऐसी शक्ति नहीं है, कि स्त्रीके बिना प्रजा रचें। यदि पुत्र धरतीकी धूलमें शरीरको रङ्गकर निकट आकरके पिताके गलेसे लगे, तो उससे फिर क्या अधिक सुख मिलना है? हे राजन्! आपका यह पुत्र स्वयं आकर उत्साहयुक्त नेत्रोंसे आपको देख रहा है, तिस परभी आप किस लिये उसका अपमान कर रहे हैं? देखिये चींटियां छोटी प्राणी होने परभी प्रसव किये हुए अण्डोंकी रक्षा करती हैं, बिगाड़ती नहीं; आप धर्म्मज्ञ होनेपरभी क्यों अपने पुत्रको नहीं पालेंगे? छोटी सन्तानके गलेसे लगनेसे उसका अनुभव पिताको जैसा सुखदायी जान पड़ता है, कोमल वस्त्र, जल और नारीका अनुभवभी वैसा सुखदायी नहीं होता। जिस प्रकार दो पाये जन्तुओंमें ब्राह्मण प्रधान है, चार पायोंमें गौ श्रेष्ठ है और माननीय जनोंमें गुरु, सुखानुभवोंमें पुत्रानुभवही श्रेष्ठ है। यह सुन्दरमूर्त्ति पुत्र आपको गलेसे लग कर अनुभव करे, क्योंकि पुत्रानुभवसे दूसरा सुखदायी

अनुभव पृथ्वीमें नहीं है। हे अरिन्दम राजेन्द्र! तीनवर्ष पूरे होनेपर मैंने आपके इस शोकनाशी पुत्रको प्रसव किया है; हे पौरव! पहिले सौरिमें आकाशवाणी हुई थी, कि यह पुत्र सौ अश्वमेध यज्ञ करेगा। मनुष्यलोग दूसरे गांवमें जाकर जब घरको लौटते हैं, तब पुत्रको गोदमें लेकर सिर चूम कर परमानन्द प्राप्त करते हैं। पुत्रके जातकर्ममें ब्राह्मणलोग जो यह वैदिकमन्त्र पाठ करते हैं, कि "तुम मेरे अङ्गसे निकले हो, तुम मेरे हृदयजात पुत्ररूपी आत्मा हो, तुम्हारी शत वर्षकी आयु होवे; बेटा! मेरा जीवन और वंशका अक्षय होना तुम्हारेही अधीन है, सो तुम शत वर्षकी आयु पाकर परम सुखसे काल काटो" उसमें आपभी ज्ञात हैं। हे राजन्! आपके अङ्गसे यह दूसरा पुरुष उत्पन्न हुआ है, निर्म्मल सरवरमें दीख पड़ती हुई, निज परछांहीसी अपनी दूसरी आत्मा इस पुत्रमें आप देख लीजिये। जिस प्रकार एक गार्हपत्य अग्निसे आहवनीय अग्निकी उत्पत्ति होतीहै, वैसेही आप एक होने परभी आपसे जन्मे हुए इस पुत्रके स्वरूपमें स्वयं दोभाग हुए हैं। महाराज! मैं जब पिताके आश्रममें कुमारी थी, तब आपने मृगयामें जाकर मृगको पछियाते हुए वहां पहुंच करके मुझसे विवाह कर लिया था। उर्व्वशी, पूर्व्वचित्ति, सहजन्या, मेनका, विश्वाची और घृताची यह छः अप्सरा औरोंसे श्रेष्ठा हैं; उनमें ब्रह्माजीसे जन्मी हुई अप्सरा मेनकाने देवलोकसे भूतलमें उतरकर गर्भ-धारण किया था। आगे वह मन्दस्वभावा मेनका हिमाचलके चट्टान पर मुझको प्रसव कर परायी सन्तानकी नाईं छोड़के चली गयी; हा! मैंने पूर्व्वजन्ममें कैसा पाप किया होगा, कि बचपनमें पिता माताने मुझे त्याग दिया और अब आपभी मुझको छोड़ रहे हैं। आपके मुझे छोड़नेसे मैं स्वेच्छासे निज आश्रमको चली जाऊंगी, पर यह बालक आपकी सन्तान है, आपको इसे छोड़ना नहीं चाहिये।

दुष्मन्त बोले, कि शकुन्तले! मैं नहीं जानता, कि तुम्हारा गर्भोत्पन्न यह बालक मेरा पुत्र है वा नहीं; तुम्हारी बात पर किसको प्रतीत होगी? स्त्रियां प्रायः झूठी बात कहा करती हैं; विशेष तुम्हारी जननी व्यभि-चारिणी दयाहीना मेनका निर्म्माल्य त्यागनेकी भांति तुमको हिमाचलकी पीठ पर छोड़ गयी थी और क्षत्रियवंशी, ब्राह्मणत्वलोभी निर्द्दय-स्वभावी विश्वामित्रभी कामवश होकर तुम्हारे जनक हुए थे। यदि यह कहो, कि मेनका अप्सराओंमें प्रधाना और विश्वामित्र ऋषियोंमें श्रेष्ठ हैं, तो फिर तुम उनकी सन्तान होकरभी क्योंकर वेश्यासी बात कह रही हो? क्या यह श्रद्धाके अयोग्य बातके कहनेमें तुमको लज्जा नहीं होती? विशेष तुम मेरे सामने यह बात कह रही हो; रीदुष्ट तपस्विनी! तू यहांसे चली जा। वह सर्व्वश्रेष्ठ महर्षि कहां? और नीच वा अप्सराओंमें श्रेष्ठ मेनका कहां? और नीच तपस्विनीका वेष बनायी हुई तू कहां? तेरा यह पुत्र बालक होनेपर भी मोटा ताजा और बलिष्ठ दीख पड़ता है, थोड़े कालहीमें यह क्योंकर शालवृक्षसा बढ़ उठा? तेरा जन्म बड़ा नीच है, उसमें तू वेश्यासी बात कहती है। मेनकाने कामके वशमें होकर जैसे चाहा है, वैसेही तुझको पैदा किया है। री तापसि! तू जोकुछ कहती है, वह सब मेरा अनजाना, अनसुना और अनसोचा है; मैं तुझको नहीं जानता, जहां तेरी इच्छा हो तहां चली जा।

अनन्तर शकुन्तला बोली, कि राजन! पराया दोष सरसोंके समान होनेसेभी देख लेतेहैं, पर अपना दोष बेलफलके समान होनेपरभी नहीं देखते। हे दुष्मन्त! मेनका देवोंकीही प्रेमी और देवगण मेनकाहीके प्रेमी हैं, सो आपके

जन्मसे मेरा जन्म श्रेष्ठ है। हे राजेन्द्र! देखिये, पहाड़ और सर्षोंके समान हम दोनोंमें प्रभेद है, आप धरतीपर चलते हैं, और मैं आकाशको उड़ती हूं। हे नृप! देखिये, हमारा प्रभाव कितना है; मैं महेन्द्र, कुवेर, यम और वरुण इनके मन्दिरोंमें जा सकती हूं। हे अनघ! एक सच कहावत यह है, मैं उदाहरणके लिये आपसे कहती हूं द्वेषसे नहीं कहती, सो आप इसे सुनकर मेरी बात क्षमा कीजियेगा; कुरूप जन जबतक दर्पणमें अपना मुख नहीं देखता, तबतक अपनेको औरोंसे सुन्दर समझता है, पर जब दर्पणमें अपना मुख बुरा देखता है, तब जान सकता है, कि औरोंसे अपना कितना प्रभेद है। अच्छे रूपवान् जन किसीका अनादर नहीं करते; बहुत कड़ी बात कहनेसे लोग निन्दक या औरोंके पीड़ा-देने-वाले गिने जाते हैं सूअर जैसे और सब वस्तुओंमेंसे केवल विष्ठाको चुन लेता है, वैसेही मूर्ख जन कहनेवालेके हित और अहित वाक्योंमेंसे केवल अहित वाक्यहीको ध्यानमें लाते हैं; फिर हंस जैसे जल और दूधकी मिलावटसे जलके भागको छोड़कर दूधले लेता है, वैसेही ज्ञानी पुरुष कहनेवालेकी हिताहित बातोंको सुनकर केवल गुणयुक्त बातकोही ध्यानमें लाते हैं। औरोंकी निन्दा करनेसे जिस प्रकार साधु दुःख मानते हैं, वैसेही परायी निन्दा कर असाधु जन प्रसन्न होते हैं। साधुजन बड़ोंका सम्मान कर जैसे सन्तुष्ट होते हैं, वैसेही निन्दित जन सज्जनोंकी निन्दाकर आनन्दित होते हैं। मूर्खलोग नहीं जानते, कि दोष क्या है, पर पराये दोषोंके देखनेवाले बनकर सुख-चैनसे काल काटते हैं; वे जिन दोषोंके कारण पण्डितोंसे निन्दनीय होते हैं, पण्डितोंको उन्ही दोषोंसे निन्दित कहा करते हैं। पर लोकोंमें इससे अधिक हंसीकी बात और क्या हो सकती है, कि स्वयं कुजन होकर सुजनको कुजन कहके लाञ्छन करे? जिस प्रकार क्रोधित सर्पसे भय होता है, वैसेही सच्चे धर्म्मसे गिरे हुए जनसे नास्तिकभी भय खाता है, फिर आस्तीकके भयभीत होनेमें कौनसा अचरज है? जो पुरुष स्वयं आत्मरूपी सन्तान उत्पन्न कर स्वीकार नहीं करता है, देवगण उसकी श्री बिगाड़ देते हैं और उसका स्वर्गभोग नहीं होता। पितृगण पुत्रको वंश और स्वजनोंकी प्रतिष्ठारूपी और सर्व्व धर्म्मसे श्रेष्ठ कहा करते हैं, सो ऐसे पुत्रको त्याग देना उचित नहीं है। भगवान् मनुने औरस, क्षेत्रज, कानीन, गूढ़ज और सहोढ़ इन पांच प्रकारके पुत्रोंको निज पत्नीके गर्भजात और अपविद्ध, क्रीत, विवर्द्धित आदि सात प्रकारके पुत्रोंको अन्यसे उत्पन्न, सब मिलाकर बारह प्रकारके पुत्र ठहराये हैं। हे राजसिंह धर्म्म, कीर्त्ति, और चित्तकी प्रीति बढ़ानेवाले पुत्रगण जन्म लेकरके धर्म्मरूपी नाव बनकर पितरोंको नरकसे उद्धार करते हैं; सो पुत्रको त्यागना नहीं चाहिये। हे पृथ्वीनाथ! सत्य, धर्म्म और आत्माकी रक्षा कीजिये। हे नरेन्द्र-सिंह! इस विषयमें आपको कपट करना कर्तव्य नहीं है; देखिये, सैकड़ों कूपोंकी प्रतिष्ठासे एक तालकी प्रतिष्ठा श्रेष्ठ है, सैकड़ों तालोंकी प्रतिष्ठासे एक यज्ञका करना श्रेष्ठ है, सैकड़ों यज्ञोंसे एक पुत्र श्रेष्ठ है और सैकड़ों पुत्रोंसे एक सत्यनिष्ठा श्रेष्ठ है। यदि एक तौलपर एक ओर सहस्र अश्वमेध और दूसरी ओर सत्यनिष्ठाको रखकर तौला जाय, तो सहस्र अश्वमेधोंसे एक सत्यनिष्ठा भारी होगी। हे राजन्! इसमें सन्देह है, कि सर्व्व वेदोंका पठन और सब तीर्थोंमें स्नान एक सत्य वाक्यके तुल्य होता है वा नहीं। सत्यके समान धर्म्म नहीं है, असत्यसे बढ़कर पाप और कोई भी नहीं है। हे राजन्! सत्यही परब्रह्म और सत्यही परम-नियम है। हे नृपते! आपने मुझसे जो नियम किया था, उसका

लङ्घन न कोजिये; अपना प्रण पूरा कीजिये। पर यदि मिथ्याही पर आपकी प्रेमही और उससे आप मेरी इस सत्य बातकी परतीत न करें, तो मैं स्वयं चली जाती हूं; आपसे मेरे मिलनेका प्रयोजन नहीं है। हे दुष्मन्त! आपके न लेनेसेभी मेरा यह पुत्र शैलराजसे अलंकृता इस पृथ्वीका चारों समुद्रों तक शासन करेगा।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि शकुन्तला यह सब कहकर चली गयी। अनन्तर ऋत्विक, पुरोहित, आचार्य्य और मन्त्रियोंसे घिरे हुए राजाको आकाशवाणी हुई, कि "हे दुष्मन्त! माता चमड़ेके कोषके समान है, उसमेंसे पिता स्वयं ही पुत्रके स्वरूपमें जन्म लेते है, सो पुत्रको पालो पोषो। शकुन्तलाका अनादर मत करो हे नरदेव! निज वीर्य्यसे उत्पन्न हुई सन्तान यमराजके घरसे उद्धार करती है; ऐसा सन्देह न करना, कि यह पुत्र तुम्हारा है वा नहीं, तुम्हींने यह गर्भाधान किया है। शकुन्तलाने जो कुछ कहा है, सब सत्य है। हे दुष्मन्त! अपना अङ्ग दो भागोंमें बंटकर पुत्रके स्वरूपमें भार्य्याके गर्भसे जन्म लेता है; अतएव शकुन्तलाके गर्भजात निजपुत्रका पालन करो। हे पौरव! जीते हुए पुत्रको तजकर जीवन धरना अति दुर्भाग्यकी बात है; शकुन्तलाके गर्भजात इस महात्मा दुष्मन्त-नन्दनका पालन करो; हमारी बातके अनुसार तुमको इस पुत्रका भरण करना होगा, इस हेतु इसको नाम भरत होगा।"

पुरुकुलोत्पन्न राजा दुष्मन्तने ऐसी देववाणी सुनकर प्रसन्नचित्तसे पुरोहित और मन्त्रियोंसे कहा, कि आप इन देवदूतको बात पर ध्यान दीजिये और मैंभी वैसाही जानता हूं, कि इस पुत्रने मुझसेही जन्म लिया है; यदि मैंने शकुन्तलाके वाक्यानुसार अपने पुत्रको ले लिया होता, तो प्रजा यह शङ्का करती, कि यह पुत्र शुद्ध न भी हो सकता है।

श्रीवैशम्पायनजी बोले,कि हे भारत! तब राजाने देवदूतसे पुत्रको विशुद्ध कराकर प्रसन्न और प्रमुदित चित्तसे बुलवाकर लेलिया। अनन्तर प्रीतियुक्त और प्रमुदित होकर कुमारको पितृयोग्य कर्म्म सम्पन्न करके सिर चूमकर स्नेह प्रकट करते हुए, गलेसे लगाया। तब ब्राह्मण लोग असीस देने लगे और भाट स्तुति पढ़ने लगे; राजा पुत्रान्तभव लाभकर परम आनन्दित हुए, आगे धर्म्मानुसार पतिव्रता पत्नीका सम्मान कर समझाते हुए कहने लगे, कि देवि लोकोंमें कोई नहीं जानता, कि मैंने तुमसे विवाह किया है, इसहेतु तुम्हारी शुद्धिके निमित्त मैंने ऐसा व्यवहार किया और लोग ऐसा समझ सकते हैं, कि केवल सुखकी अभिलाषासे इनका सङ्गम हुआ, विवाह नहीं हुआ, यह बिना विधिसे उत्पन्न हुआ पुत्र राज्यका अधिकारी बना, बस लोकापवादको दूर करनेके लिये ऐसा चरित्र प्रकट किया। प्यारी विशालाक्षी! तुमने क्रोधिता होकर मुझको जो अप्रिय बातें कही हैं, हे शुभे! तुम मेरी प्यारी हो, इस लिये उन सबों की क्षमा करता हूं। हे भारत! राजर्षि दुष्मन्तने प्यारी महिषी शकुन्तलासे उस प्रकार कहकर अन्न, पान और वस्त्रादियोंसे उसका सम्मान किया। आगे शकुन्तलाके गर्भजात पुत्रका "भरत" यह नाम देकर युवराजके पदमें अभिषिक्त किया। तबसे उन महात्मा भरत के प्रज्वलित, जीतनेके अयोग्य, दिव्य और लोकोंमें प्रख्यात महत् चक्र प्रवर्त्तित हुआ। वह महीपालोंको जीतकर वशमें लाये और साधुओंसे आचरण किये जाते हुए धर्म्मका अनुष्ठान करने लगे, उनका सुन्दर यश भूमण्डलमें फैल गया, वह महा प्रतापी और सार्व्वभौम चक्रवर्ती हुए; और देवराज इन्द्रको भांति बहुयज्ञानुष्ठान करने लगे। महर्षि कण्वने उनसे प्रचुर दक्षिणायुक्त यज्ञ कराया था। उन श्रीमान्

भरतने गोवितत नामक अश्वमेध-यज्ञ करके उसमें भगवान् ऋषि कण्वको सहस्र पद्म धन दान दिया था।

यह भारतीय कीर्त्ति उन भरतहीसे हुई है और उन्हींसे यह भरत-वंश फैला है। भरतके वंशमें जिन सब देवव्रत महात्मा ब्रह्मकल्प, अनेक राजर्षियोंने जन्म लिया था, वे भारत नामसे प्रख्यात हुए; उन सबोंके नाम अगणित हैं। हे भारत! उनमें जो प्रधान, महाभाग्यवान् देवकल्प और सत्यशील हैं, उन्हींके नाम कहूंगा।

आदिपर्व्वके चौहत्तरवां अध्यायमें
शकुन्तलोपाख्यान समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे अनघ! प्रजापति दक्ष, वैवस्वत मनु, भरत कुरु, पुरु, आजमीढ़, यादव और सम्पूर्ण कौरवोंकी पवित्र महत् स्वस्त्ययनयुक्त, धन और यश तथा आयु देनेवाली सम्पूर्ण वंशकी कथा तुमसे कहता हूं। प्रचेताके दश पुत्र थे; वे सब तेजसे प्रज्वलित महर्षि-समान तेजस्वी, साधु और पुण्यशील थे; उनके मुखसे निकली हुई आगसे पहिले वृक्ष-औषधि सब जल भुन गयी थीं। उन दशोंसे प्राचेतस प्रजापति दक्ष उत्पन्न हुए थे। दक्षसे यह सब प्रजा रची गयी है। हे पुरुषव्याघ्र! वह दक्षही लोकोंके पितामह हैं। प्राचेतस मुनि दक्षने वीरिणी नाम्नी पत्नीके मिलनसे अपने सदृश संशितव्रत सहस्र पुत्र उत्पन्न किये! ऋषि नारदने दक्षसे जन्म लिये हुए उन सहस्र पुत्रोंको मोक्षसाधन और अत्युत्तम सांख्यज्ञान की शिक्षा करायी। हे जनमेजय! आगे उन प्रजापति दक्षने वहु प्रजा रचनकी इच्छासे पचास कन्याओंको पुत्रिका बनाया। उन पचास कन्याओंमेंसे दश धर्म्मको, तेरह कश्यपको, और समय-दशानेवाली सत्ताइस कन्याओंको चन्द्रको दिया। कश्यपजीकी तेरह पत्नियोंमेंसे दाक्षायणी अदिति बड़ी थी; उस अदितिने मरीचिके पुत्र कश्यपजीके मिलनसे वीर्य्यवान् इन्द्रादि देवता और विवस्वान् सूर्य्यको प्रसव किया। विवस्वान सूर्य्यके मनु नामक एक धीमान् पुत्र उत्पन्न हुए; वह सर्व्वशास्त्रोंके विधान करनेवाले थे। उन विवस्वानहीसे मनुके छोटे भाई प्रभु वैवस्वत यमने जन्म लिया। मनु बड़े बुद्धिमान और धर्म्मात्मा थे, उन्हींसे यह मानव-वंश प्रसिद्ध तथा प्रतिष्ठित हुआ है। ब्राह्मण क्षत्रियादियोंने उन्ही मनुसे जन्म लिया है, इस हेतु वे मानव करके प्रसिद्ध हुए। हे महाराज! अनन्तर ब्राह्मण लोग क्षत्रियोंसे सङ्गत हुए। सम्पूर्ण गुणोंमें मनुज ब्राह्मणगणने साङ्गवेद धारण किया। मनुके वेन, धृष्णु, नारिष्यन्, नाभाग, इक्ष्वाकु, कारूष, शर्य्याति, पृषध्र, और नाभारिष्ट यह नौ क्षत्रिय धर्म्मशील पुत्र और इला नाम्नी एक कन्या हुई थी। इनके अतिरिक्त इस पृथ्वीमें उन मनुके और पचास पुत्र हुए थे, सुन चुका हूं, कि वे आपसमें लड़कर नष्ट हुए हैं। अनन्तर विद्वान पुरुरवाने इलासे जन्म लिया था; हमने सुना है, कि इलाही पुरुरवाकी माता और पिता थी। महायशोभावान् पुरुरवाने मनुष्य होने परभी आमनुष्य साथियोंसे घेरे जाकर महासागरके तेरह द्वीपों को अधिकारमें कर लिया था। उन्होंने वीर्य्यके बलसे बावलेसे बनकर ब्राह्मणोंसे झगड़ा मचाया, तिसपर विप्रोंके चिल्लाचिल्लाकर रोने परभी उनका सम्पूर्ण रत्न हर लियाथा। हे राजन्! अनन्तर ब्रह्मलोकसे सनत्कुमारने आकर उनको श्रुतिके अनुसार उपदेश किया; उसपरभी उन्होंने ध्यान नहीं दिया; इनसे महर्षियोंने एकत्र होकर उनको शाप दिया; बलसे अहंकृत लोभी भूप शापग्रस्त होतेही चेतना खोकर उसीक्षण नष्ट हुए। वह विराजमान् पुरुरवा उर्व्वशीके साथ गन्धर्व्वलोकसे अग्नियोंके लिय

विधिपूर्व्वक दाक्षिणाग्नि, गार्हपत्य और आहवनीय इन तीन प्रकारके अग्निको लाये थे। इलापुत्र पुरुरवाके वीर्य्य और उर्व्वशीके गर्भसे ६ पुत्रोंने जन्म लिया था; उनके नाम आयु, धीमान्, आमावसु, दृढ़ायु थे। आयुके वीर्य्य और स्वर्भानुपुत्रीके गर्भसे नहुष, वृद्धशर्म्मा, राजी, गय और अनेना यह पांच पुत्र भये; आयुके पुत्र नहुष धीमान् तथा सच्चे पराक्रमी थे। हे पृथ्वीनाथ! उन्होंने उत्तम रीतिसे धर्म्मानुसार राज्य का शासन किया! नहुषने पितृगण, देवगण, विप्रगण, और गन्धर्व्व सर्प, राक्षस, ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्योंका पालन किया था। उन्होंने निज भुजबलसे लुटेरोंको नष्ट करके ऋषियोंको करदाता बनाया, और एक समय उन ऋषियोंको पशुकी भांति वाहन बनाया था। वह तेज यश, बल और विक्रमसे देवोंको हराकर इन्द्रके पदपर आरूढ़ हुए थे। उनके याति, ययाति, संयाति, आयाति अयति और ध्रुव यह ६ प्रिय बोली बोलनेवाले पुत्र जन्मे थे। यति योगाश्रय करके ब्रह्मज्ञ मुनि बने थे।

सत्य पराक्रमी नहुषपुत्र ययाति सम्राट हुए; उन्होंने पृथ्वीका पालनकर अनेक यज्ञ किये थे और यतात्मा होकर अति भक्तिसे देवगण और पितृगणकी उपासना करते थे। अजेय ययाति सम्पूर्ण प्रजाओं पर दया प्रगट करते थे, हे महाराज! देवयानी और शर्म्मिष्ठाके गर्भसे उनके सर्व्वगुणयुक्त चापधारी पुत्रने जन्म लिया था। उनमें देवजानीके गर्भसे यदु और तुर्व्वसुका जन्म हुआ; द्रुह्यु, अनु और पुरु, इन्होंने शर्म्मिष्ठाके गर्भसे जन्म लिया। हे राजन्! ययाति बहु वर्षों तक धर्म्मानुसार प्रजा पालनकर अन्तमें रूपनाशी अति कठोर जरासे जकड़ गये। हे महाराज! तब राजा जरासे जकड़े जाकर यदु पुरु, तुर्व्वसु, द्रुह्यु और अनु इन पांच पुत्रोंको बुलाकर बोले, कि मैं युवा बनकर युवतियोंसे मनमाना भोगकर विहार करना चाहता हूं, हे पुत्र! तुम उस विषयमें सहारा दो। अनन्तर देवजानीके गर्भजात बड़े पुत्रने कहा, कि कहिये, हमारे यौवनसे आपका कौनसा कार्य्य करना है। ययाति उनसे बोले, कि तुम मेरे बुढ़ापेको लो, मैं तुम्हारे यौवनसे ऐश्वर्य्य भोगूं। हे पुत्र! मैं दीर्घयज्ञमें दीक्षित था, उस कालमें मुनि शुक्राचार्य्यके शापसे जराग्रस्त हुआ हूं इस कारण मैं अत्यन्त सन्तापित हो रहा हूं, सो तुममेंसे कोई मेरे इस जराग्रस्त शरीरको लेकर राज्य शासन करो, मैं फिर युवा बनकर नये शरीरसे मनमाना भोग करूं।

यदु आदि भाइयोंमेंसे किसीने उनके बुढ़ापेको नहीं लिया। अनन्तर छोटे पुत्र सत्य-विक्रमी पुरुने उनसे कहा, कि महाराज! आप मेरे यौवनको प्राप्तकर नये शरीरमें विराजिये, मैं आपकी आज्ञासे जरा लेकर राज्य-शासन करता हूं! पुरुके यह बात कहने पर राजर्षि ययातिने तप और वीर्य्यके बलसे उस महात्मा पुत्रमें बुढ़ापा प्रविष्ट कराया। राजा अपने पुत्र पुरुका यौवन पाकर युवा बने, पुरु ययाति को वृद्धावस्था लेकरके राज्य-शासन करने लगे। न हारनेहारे राजसिंह ययाति सहस्रवर्ष बीतने परभी सिंह समान विक्रमी बने रहे और दो पत्नियोंमें दीर्घकालतक विहारकर फिर विश्वाचीके साथ कुबेरजीकी फुलवाड़ीमें खेलने लगे। महायशा ययाति ऐसा करकेभी भोगसे तृप्त नहीं हुए; यह समझकर उन महात्माने यह कविता पढ़ी, कि जिस प्रकार आगमें घृत छोड़नेसे आग न बुझकर बढ़तीही जाती है, उस प्रकार कामकी वस्तुओंके भोगसे काम निवृत्त न होकर बढ़ जायाही करता है। रत्नोंसे भरीपूरी पृथ्वी, सुवर्ण, पशु और स्त्री यह सब वस्तु एक मनु-

थके भोगमें आनेसेभी उसमें पूरी तृप्ति नहीं हो सकती, यह समझकर शान्तिका आश्रय लेनाही उचित है। जब कोई जन कामना भरनेके लिये कर्म्म मन और वा वचसे प्राणीपर कदापि पापाचरण नहीं करते हैं। जब कोई जन किसी प्रकारसे भय नहीं खाते और उनसे कोई भय प्राप्त नहीं करता तथा वह किसी कामको वस्तु पर अभिलाषा और किसीका द्वेष नहीं करते, तभी वह ब्रह्मको प्राप्त करते हैं। हे नृप! महाप्राज्ञ ययातिने इस प्रकार कामकी तुच्छताका विचारकर बुद्धिसे मनको ठोककर पुत्रसे फिर अपना बुढ़ापा लेलिया। वह मनमाने भोगसे तृप्त न हो करकेही पुत्र पुरुको यौवन देकर उसे राज्यमें बैठाकर बोले, कि तुम्हीसे मैं पुत्रवान् हुआ हूं; तुम्ही मेरे वंशतिलक पुत्र हो, यह वंश तुम्हारे नामहीसे प्रख्यात अर्थात् लोकोंमें पौरव-वंश करके प्रसिद्ध होगा।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर नृपसिंह ययातिने पुरुको राज्यमें अभिषिक्त करके भृगु-तुङ्ग पर्व्वतपर भली प्रकार तपका अनुष्ठान करके महा तपस्वी होकर अनेक काल काटा; अन्तमें वह पत्नीसहित अनसन व्रतसे कालधर्म्म-को प्राप्तकर स्वर्गको पधारे।

सम्भवपर्व्वमें पचहत्तरवां अध्याय समाप्त।

जनमेजय बोले, कि हे तपोधन! मैं विस्तृत रूपसे सुना चाहता हूं, कि प्रजापतिसे दशवीं संख्यामें गिने जाते हुए हमारे पूर्व्वपुरुष ययातिने परम दुर्लभा शुक्रपुत्रीको क्योंकर प्राप्त किया था; और भी आप दूसरे वंशको बनानेवाले राजाओंकी कथा आद्योपान्त रीति-पूर्व्वक कह चलिये।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे जनमेजय! पूर्व्वकालमें देवराजके समान तेजस्वी नृपति ययातिको शुक्र और वृषपर्व्वाने जिस प्रकार दमादके पद पर वरण किया था और नहुष-पुत्र ययातिसे जिसप्रकार देवयानिका मिलन हुआ था, वह आपसे कहता हूं, सुनिये।

इस चराचरसहित त्रिलोकके ऐश्वर्य्य पाने के विषयमें देवासुरोंमें आपसकी अहङ्कार-युक्त गहरी लड़ाई मची; देवोंने द्वेषवश याजनकार्य्यके निमित्त अङ्गिकाके पुत्र मुनि वृहस्पतिको पुरोहितोंमें वरित किया, असुरोंनेभी शुक्रको नियुक्त किया; वे दोनों पुरोहित ब्राह्मण नित्य आपसमें अहङ्कार किया करते थे। देवतालोग युद्धस्थलमें उप-स्थित हुए जिन दानवोंको वध करते थे, शुक्र विद्याके बलसे फिर उनको जिला देते थे; पर असुरलोग युद्धमें जिन देवोंको गिराते थे, सरल बुद्धियुक्त वृहस्पतिजी उनको जिला नहीं सकते थे; क्योंकि वीर्य्यवान् शुक्रजो जो सञ्जीवनी विद्यासे ज्ञात थे, वृहस्पतिजी उसे नहीं जानते थे; इससे देवगण बड़े दुःखी हुए। अनन्तर देवोंने कविपुत्र उशनाको देखकर अति भयसे कातर होकर वृहस्पतिके बड़े बेटे कचके निकट आकर कहा, कि हमने तुम्हारी शरण ली, बचाओ, तुम हमारी सहायता करो। अति तेजस्वी ब्राह्मण शुक्रमें जो सञ्जीवनी विद्या है, उसे शीघ्र सीख लो; हम तुमको यज्ञांशके भागी बनावेंगे; तुमहो वृषपर्व्वाके निकट उन ब्राह्मणको भेंट कर सकोगे, वह दानवोंको रक्षा करते हैं, देवोंको नहीं बचाते। तुम्हारी अवस्था कम है, सो तुम शुक्रको आराधना कर सकोगे और तुम्ही उन महात्माकी दयिता कन्या देवयानीकी उपासना कर सकोगे; इस विषयमें तुम्हारे बिना कोई दूसरा समर्थ नहीं है। देवयानी तुम्हारी शीलता, दाक्षिण्य, मधुरता, आचार और दमसे सन्तुष्ट होवे, तो तुम उस सञ्जीवनी विद्याको अवश्य प्राप्त करोगे अनन्तर वृहस्पतिके यह बात कहकर देवोंसे पूजे जानेके पश्चात् वृषपर्व्वाके निकट पधारे।

हे राजन्! देवोंसे भेजे हुए वह कच शीघ्र चलकर असुरराजके मन्दिरमें शुक्रको देखकरके बोले, कि मैं ऋषि अङ्गिराके पौत्र और बृहस्पतिका औरस-पुत्र हूं। मेरा नाम कच है; आप मुझको शिष्य बनावें। हे ब्रह्मन्! मैं आपको गुरु मानकर सहस्र वर्षोंतक परम ब्रह्मचर्य्य अवलम्बन करूंगा, आप आज्ञा कीजिये। शुक्रजी बोले, कि हे कच! तुम्हारा कल्याण होवे, तुम्हारी बात मान ली, तुम मेरे आदरके पात्र हो, तुम्हारे समादर करनेसे बृहस्पतिभी पूजे जायंगे। श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर कचने कविपुत्र शुक्रको आज्ञासे ब्रह्मचर्य्य-व्रतको अवलम्बन किया। हे भारत! कच उस व्रतकालको प्राप्त कर उपाध्याय शुक्र और देवयानीकी आराधना करने लगे। युवा कच शुक्रको सन्तुष्ट कर गीत, नाच और बाजेसे तथा फूल, फल और भांति भांतिकी वस्तु देकर और टहलुएके समान आज्ञा मानते हुए युवती देवयानीको सन्तोष देने लगे। देवयानीभी उस निर्ज्जन-पुरमें गीत और लालित्यसे नियम-व्रतशील उन ब्राह्मण कुमारकी सेवा करने लगी। इस प्रकार व्रतानुष्ठान करते हुए, कचको पांच सौ वर्ष बीत गये।

अनन्तर एकदिन वह निर्ज्जन वनमें अकेले गौकी रखवारी कर रहे थे, कि ऐसे समयमें दैत्योंने उनको देखकर यह जान करके, कि यह बृहस्पतिके पुत्र कच है, सञ्जीवनी विद्याकी रक्षाके लिये और बृहस्पतिजी पर द्वेष कर क्रोधपूर्व्वक उनको मार डाला; आगे उनको टुकड़े टुकड़े कर सियार कुत्तों को दे दिया। हे भारत! इसके अनन्तर गौओंके रखवारेके बिना अपने घर, लौटनेपर देवयानीने देखा, कि गौ बनसे लौट आईं, पर कच नहीं आये, तब वह कुछकाल ठहरकर पितासे बोली, कि हे प्रभो पिता! सूर्य्यदेव अस्ताचल को पधारे, आपका अग्निहोत्र आहुत हुआ और गौ रखवारेसे रहित होकर लौट आईं, पर कचको नहीं देखा। हे पिता! मुझको निश्चय जान पड़ता है, कि कच मरे या मारे गये; मैं सच कहती हूं, कि बिना कचके जी नहीं सकूंगी। शुक्रजी बोले, कि "हे कच! चले आओ, तुम मरे हो, मैं तुमको जिलाता हूं," यह कहकर मृत-सञ्जीवनी विद्या पढ़कर कचको बुलाया। कच बुलाये जाते ही सियार कुत्तोंके शरीरोंको फाड़करके निकलकर आ पहुंचे और सञ्जीवनी विद्याका प्रभाव देखकर प्रसन्न हुए। देवयानीने उनसे पूछा, कि तुमने क्यों इतनी देर की? कचने उत्तर दिया, कि हे भाविनी! मैंने समिध लकड़ीके बोझ और कुशादिको लेकर आनेके कालमें बहुत थककर एक बड़को आश्रय किया था और गौ भी उस वृक्षकी छांहमें थीं। असुरोंने उस स्थानमें मुझको देखकर पूछा, कि तुम कौन हो? मैंने कहा, कि मैं बृहस्पतिका पुत्र कच हूं; यह बात कहतेही दानवोंने मुझको नष्ट कर टुकड़े टुकड़े करके सियार कुत्तोंको देकर आनन्दित होके निज स्थानमें पधारे। हे भद्रे! महात्मा भार्गवके सञ्जीवनी विद्या पढ़कर मुझको बुलाने पर मैं किसी प्रकार जी करके यहां तुम्हारे सामने आया हूं, और शुक्रकन्यासे पूछे जाकर कचने यह भी कहा, कि हा! मैं मारा गया था।"

अनन्तर ब्राह्मण कच फिर देवयानीकी आज्ञासे फूल बटोरनेके लिये मनमाने वनमें चले गये। दानवोंने फिर भी उनको देखकर पीस करके समुद्रके जलमें घोल दिया। अनन्तर देवयानीने उनको देरतक न आते देखकर पिताको वह समाचार सुनाया, इससे बृहस्पति-पुत्रने फिर शुक्रकी विद्याके बलसे बुलाये जाकर आ करके वह सब हाल कह सुनाया। अनन्तर असुरोंने तीसरी बार उनको

वैसेही देखकर, जलाकर और चूर चूर कर मदिरासे मिलाकरके उन शुक्रहीको पिला दिया। आगे देवयानीने फिर पितासे कहा, कि पिता! मैंने कचको फूल बटोरनेके लिये भेजा था, अबभी आते नहीं देखती हूं, मुझको निश्चय जान पड़ता है, कि वह मरे या मारे गये; मैं निश्चय कहती हूं, कि उस कचके विना मैं न जीऊंगी। शुक्र बोले, बेटी! बृहस्पति-का पुत्र कच मर गया है; मैं क्या करूं? विद्याके बलसे मैं वार वार उसको जिलाता हूं, तिसपरभी असुरलोग उसको मार डालते हैं, देवयानि! तुम शोक न करना, मत रोओ, तुम्हारे समान प्रभाववती नारि किसी नश्वर जनके लिये कभी शोक प्रकट नहीं करती; देखो, तुम्हारे प्रभावसे ब्रह्मा, ब्राह्मण, इन्द्रादि, देवता, वसुलोग अश्विनीकुमार और असुरगण सम्पूर्ण जगत् तुम्हारी उपासनाकी आशासे सिर नवाये रहते हैं, सो तुमको शोकसे क्या प्रयो-जन है? उस ब्राह्मणको जीवित रखना मेरा असाध्य हो गया है, क्योंकि उनको वार वार जिलाने परभी असुरलोग वार वार वधकर डालते हैं। देवयानी बोली, कि बूढ़ोंसे बूढ़े अङ्गिरा जिनके पितामह, और तपोनिधि बृह-स्पति जिनके पिता हैं, ऐसे ऋषि-पौत्र और ऋषिपुत्र उन कचके लिये क्यों नहीं शोक करूंगी? अथवा क्यों नहीं रोऊंगी? अहा! वह ब्रह्मचारी तपोधन थे, वह कर्म्ममें सदा उत्साही और दक्ष थे; पिता! मैं फिर भोजन न करकेही उस कचकी बाट लूंगी; क्योंकि उनका स्वरूप मुझे बड़ा प्रिय लगता है।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि कविपुत्र महर्षि शुक्राचार्य्यने देवयानीसे इस प्रकार उत्साहित होकर क्रोधसे दैत्योंपर आक्रोश किया और बोले, कि असुरलोग निश्चित मेरा द्वेष किया करते हैं, नहीं तो मेरे शिष्योंके आनेपर वे क्यों उनको मार डालते हैं? कुटिलात्मा असुरलोग मुझकोही ब्रह्महत्याके पापसे पापी बनाते हैं और सदा मेरा विरुद्धाचरण करते हैं; ब्रह्महत्या किसको नहीं जला देती है? इन्द्रकोभी भस्मकर सकती है; क्या यह पाप कभी नष्ट होता है? अनन्तर उनके सञ्जी-वनी शिक्षासे कचको बुलाने पर कचने गुरुके पेटमें रहकर गुरुहत्याके भयसे भीत होकर धीरे धीरे उत्तर दिया। उस पर शुक्र बोले, कि हे विप्र! यह कहो, कि तुम कौन पथसे मेरे पेटमें जा घुसे हो। कच बोले, कि हे गुरो! आपकी कृपासे मुझे स्मरणशक्ति लुप्त नहीं हुई, जो जिस प्रकारसे हुआ, वह सब स्मरण है; इस लिये, कि कहीं हमको गुरुके पेटको फाड़नेके लिये पापके कीचड़में डूबना न पड़े और तप घट जाय, पेटमें बसनेका अपार कष्ट सह रहा हूं। हे काव्य! असुरोंने मुझ-को मार, जलाय और चूर चूर करके मदिरामें घोलकर आपको दे दिया था, पर हे विप्र! आपके रहते आसुरिक माया क्योंकर ब्राह्म-णिक मायासे बढ़ सकेगी? तब शुक्रने देव-यानीसे कहा, कि बेटी देवयानि! इस समय क्योंकर तुम्हारा प्रियानुष्ठान करूं? मेरे नाश होनेसे कच जी सकता है, क्योंकि कच मेरे पेटके भीतर है; मेरा पेट बिना फाड़े नहीं निकल सकेगा। देवयानी बोली, कि कचका नाश और आपकी मृत्यु, यह अग्निवत् दोनों शोकही मुझको जलाने लगेंगे; कुछ ऐसा नहीं, कि कचके नाश होनेमें कुशलसे रहूंगी, आपको कोई हानि पहुंचने सेभी मैं जी नहीं सकूंगी। तब शुक्रने कचसे कहा, कि हे बृहस्पतिपुत्र कच! तुम बृहस्पतिके पुत्र करके प्रख्यात और देवयानीके प्रेमी हो और देवयानीभी तुमको भज रही है, ऐसी दशामें यदि तुम कचके स्वरूपमें इन्द्र न हो, तो आज-ही सञ्जीवनी विद्या तुमको देता हूं, तुम उसे

लो; केवल ब्राह्मणके बिना दूसरा जन मेरे पेटमें घुसके फिर जीवन पाकर नहीं निकल सकता. सो तुम यह विद्या लो, मैं तुमको जीवन देता हूं; बेटा! मेरी देहसे निकल कर और पुत्ररूपी होकर मुझको जिलाओ, गुरुसे विद्या लाभ करके विद्यावान् होकर धर्म्मपथ पर दृष्टि रखना, अकृतज्ञ न होना!

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि ब्राह्मण कच गुरुसे सञ्जीवनी विद्या लाभकर जिस प्रकार पौर्णमासीके दिन सूर्य्यके अस्त होने पर पूर्णचन्द्रमा प्रकट होता है, वैसेही शुक्रकी कोखको फाड़कर उसीक्षण साक्षात निकल आये। अनन्तर ब्रह्मापुत्र शुक्रको मरे और गिरे हुए देखकर सञ्जीवनी विद्यासे उनको जिलाया और उठा करके उस सिद्ध सञ्जीवनी विद्याको प्रणाम कर बोले, कि जब विद्याहीन था, तब जिन्होंने मेरे कानोंमें विद्यारूपी अमृत डाल दिया है, मैं उनको पिता और माता समझता हूं। जो जन कृतज्ञ होता है, वह कभी गुरुका विपरीताचरण नहीं करता; जोलोग विद्यालाभ कर श्रेष्ठतम सभ्यके उपदेश करनेवाले और निधिकी निधि तथा पूजनीय गुरुका समादर नहीं करते हैं, वे इस लोकमें अप्रतिष्ठा लाभ कर अन्तमें-नरकको सिधारते हैं। श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि विद्वान शुक्रने मदिरा पीकर उन्मत्त होय और ठगे जाकर कचको उसके साथ पी लिया था, यह देखकर मदिरा पानका चेतनानाश-रूपी गहरा दोष समझ करके क्रोधित हुए। तब स्वयं मदिरापान पर क्रोधित उन महानुभाव उशनाने ब्राह्मणों की हितेच्छासे उठकरके कहा, कि आजसे जो ब्राह्मण मोहवश मदिरा पान करेगा, वह मन्दबुद्धि ब्राह्मण धर्म्मसे च्युत और ब्रह्महत्याके पापमें-लिप्त तथा इस लोक और परलोकमें निन्दनीय होगा। मैंने ब्राह्मणोंके धर्म्मके विषयमें यह सीमा और मर्य्यादा जगतमें स्थापित की, इसको साधु लोग, ब्राह्मण लोग, देवलोग, और गुरुसेवी लोग सबकोई सुनो; अप्रमेय, तपो निधियों की निधि और महानुभाव शुक्र मदिरा पर यह शापको वाणी कहकर दैवसे मूढ़बुद्धि दानवोंको बुलवाकर बोले, कि दानवो! सुनो, तुमसे कहता हूं कि तुमने अति मूर्ख-समान कार्य्य किया है। यह महात्मा ब्राह्मण कच इसक्षण सञ्जीवनी विद्या पाकर सिद्ध हुए हैं, मेरे पास रहेंगे। यह इस क्षणसे ब्रह्मज्ञ और मेरे तुल्य प्रभावी हुए। भार्गवके इतनाही कहकर चुप होने पर दानवलोग अचरज मानकर निज निज घरको सिधारे। अनन्तर कचने गुरुके यहां सहस्रवर्ष वासकर पीछे गुरुकी आज्ञासे स्वर्गधाममें जाना चाहा।

सम्भव पर्व्वमें छिहत्तरवां अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि कचका गुरु-कुलमें वसनेका ब्रह्मचर्य्य व्रत समाप्त होने पर वह गुरुसे विदा लेकर स्वर्गधाममें जारहेथे, कि ऐसे समयमें देवयानी उनसे बोली, कि हे ऋषि अङ्गिराके पौत्र! यह समझकर कि शीलता, कौलिन्य, विद्या, दम और तपसे प्रज्वलित और महायशा महर्षि अङ्गिरा जिस प्रकार मेरे पिताके माननीय है, वैसेही वृहस्पतिजीभी मेरे माननीय और पूजनीय हैं, जो कुछ कहती हूं, है. तपोधन! तुम सुनो तुम जब व्रताचारी और नियमान्वित थे, तब मैंने तुमसे जैसा व्यवहार किया है, वह जानते हो, इस समय तुम ब्रह्मचर्य्यसे निवृत्त हुए हो. इससे अपनी अनुगत इस नारिको भजना उचित है. अतएव विधिपूर्व्वक मन्त्र पढ़कर मुझसे विवाह कर लो। कच बोले, कि हे अनिन्दिताङ्गी! तुम्हारे पिता भगवान् शुक्र जिस प्रकार मेरे पूजनीय और माननीय

हैं, वैसेही तुमभी मेरी पूजनीया हुई हो। हे भद्रे तुम मेरे गुरु महात्मा भार्गवके प्राणसेभी प्यारी कन्या हो, सो तुम मेरी गुरुकी पुत्री होनेसे धर्म्मानुसार सदा पूज्यतमा हुई हो। हे देवजानि! तुम्हारे पिता शुक्र मेरे गुरु हैं, वह जिस प्रकार सदा मेरे माननीय हैं, तुमभी वैसेही मेरी माननीया हो; इस दशामें मुझसे ऐसा कहना तुमको नहीं चाहिये। देवयानी बोली, कि हे द्विजोत्तम! तुम मेरे गुरुपुत्रके पुत्र हो, मेरे पिताके पुत्र नहीं हो, सो तुमभी मेरे पूजनीय और माननीय भये हो। हे कच! जब असुरोंने वार वार तुम्हारा प्राण नष्ट किया था, तबसे तुमपर मेरी जितनी प्रीति है और मित्रता तथा प्रेम प्रकाश होनेसे तुमपर मेरी जितनी भक्ति है, वह अवश्यही जानते होगे, आज एकवार सब स्मरण कर देखो। हे धर्म्मज्ञ! मैं भक्तिमती और निर्दोषी हूं मुझको त्यागना तुमको नहीं चाहिये। कच बोले, कि हे शुभव्रते! अनुचित कार्य्यमें मुझको नियुक्त कर रही हो; यह उचित नहीं है। हे अच्छे भौंवाली! हे शुभे! मुझपर प्रसन्न होओ, तुम गुरुसे मेरी गुरुतरा भयी हो; हे भद्रे! प्रशस्तनेत्रा! चन्द्रमुखि, भाविनी, सुन्दरी! यहभी विचारो कि तुमने काव्य के जिस कोखमें वास किया था, मैंभी उसी कोखमें वस चुका हूं, इससे धर्म्मानुसार तुम मेरी बहिन हुई हो, सो फिर ऐसा न कहना। हे भद्रे! तुम्हारे यहां परम सुखसे था, कभी दुःख नहीं देखा, अब जाऊंगा, तुमसे विदा मागता हूं, यह अशीस दो, कि मार्गमें मेरा मङ्गल होवे। धर्म्मकी विरोध-वर्ज्जित कथाके अवसरमें मेरा स्मरण करना और सावधान तथा उत्साहशीला होकर मेरे गुरुकी नित्य पूजा करना। देवयानी बोली, कि कच! मैं धर्म्मकामार्थ वार वार तुम्हारी प्रार्थना करती हूं, यदि इसे न मानो, तो तुम्हारी यह सञ्जीवनी विद्या सिद्ध नहीं होगी। कच बोले, कि मैं तुमको गुरुपुत्री जान करकेही नहीं जानता, कोई अन्य दोष समझ करकेहो ऐसा नहीं करता हूं, विशेष इस विषयमें गुरुने मुझे आज्ञा नहीं दी है, सो तुम जो चाहतो हो, सो शाप दो। हे देवयानि! ऋषियोंका जैसा धर्म्म है, उसके अनुसार मेरे व्यवहार करनेसे धर्म्मानुसार मैं शापके योग्य नहीं हूं, पर तुमने कामके वश मुझको शाप दिया, सो तुम्हारी कामना पूरी नहीं होगी—कोई ऋषिपुत्र तुमसे विवाह नहीं करेगा। और तुमने जो शाप दिया, कि मेरी वह विद्या सफल नहीं होगी, वह सत्यही होगा, पर मैं जिसको वह विद्या पढ़ाऊंगा, उसको वह विद्या अवश्य सफल होगी।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि द्विजश्रेष्ठ कच देवयानीसे ऐसा कहकर वेगसे स्वर्गपतिके घरको गये। इन्द्रादि देवता उनको आते देखकर वृहस्पतिको ओर प्रीतिसे देखके कचसे बोले, कि तुमने हमारा अति आश्चर्य्य हित कार्य्य किया है, इससे तुम्हारा यश सदा स्थायी होगा और तुम यज्ञके अंशभागी होगे।

सम्भव पर्व्वमें सतहत्तरवां अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे भरतर्षभ! देवगण विद्यावान कचको प्राप्तकर परम सन्तुष्ट चित्तसे उनसे वह विद्या पढ़कर कृतार्थ हुए। अनन्तर सब देवता देवराजके निकट आकर बोले, कि हे पुरन्दर! आपके विक्रम प्रगट करनेका यही समय है, इस क्षण शत्रुकुलको नष्ट कीजिये। सम्पूर्ण देवोंके मिलकर ऐसा कहनेपर इन्द्र "तथास्तु" कहके मान कर उसके प्रबन्धके निमित्त चले। आगे यह देखकर, कि चैत्ररथके समान एक वनमें कुछ कन्या जलमें खेल रही हैं, उन्होंने वायुका स्वरूप

लेकर उन सबोंके वस्त्रोंको एक दूसरेसे मिला दिया। अनन्तर सब कन्यायोंने एकही समय निकलकर जिसके निकट और वस्त्र मिला, वही पहिन लिया। राजा वृषपर्व्वाकी कन्या शर्म्मिष्ठाने वस्त्रोंको मिलावट न जानकर देवयानीका वस्त्र ले लिया, हे राजेन्द्र! तब उस हेतु शर्म्मिष्ठा और देवयानीमें आपसका झगड़ा खड़ा होजानेपर देवयानी बोली, कि असुर-पुत्री! तुम शिष्या होकर क्यों मेरा वस्त्र ले रही हो? तुममें शिष्टाचार नहीं है, कभी तुमको मङ्गल नहीं होगा। शर्म्मिष्ठा बोली, कि मेरे पिता जब बैठे वा सोये रहते हैं, तुम्हारे पिता तब नीचे रहकर नम्रभावसे भाटकी भांति सदा उनकी स्तुति करते रहते हैं; तुम्हारे पिता भीखमङ्गे हैं, मेरे पिता दाता हैं; तुम्हारे पिता स्तुति पढ़नेवाले, मेरे पिता स्तव किये जानेवाले हैं; तुम्हारे पिता दान लेकर जीविका निर्व्वाह करते हैं, मेरे पिता दान नहीं लेते; री भिखमङ्गिन्! तुम अस्त्रहीना हो, मैं अस्त्रवती हूं; री भीखसे जीनेवाली! तुम चाहे क्रोध करो वा दुःख मानो, अथवा विद्रोह मचाओ, वा क्रोधिता होओ, उससे केवल तुम्हारा दरिद्रताके हेतु क्षोभही प्रगट होता है; तुमने समझ लिया है, कि मैं तुम्हारे समानकी विरोधी हूंगी, पर मैं तुमको गिनतीहीमें नहीं लाती हूं।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि शर्म्मिष्ठाने वस्त्रके लिये देवयानीकी बड़ी आसक्ति और बढ़ी देखकर उसको कूपमें डाल दिया; पापचित्ता शर्म्मिष्ठा यह समझकर, कि देवयानी मर गयी है, न देखकरकेही क्रोधके वश चली गयी। अनन्तर नहुषपुत्र ययाति मृगयाके लिये उस वनमें आये थे, उनके वाहन और घोड़ोंके बहुत थकनेपर उन्होंने जल ढूंढ़ते हुए एक सूखा कूंआ पाया और उसमें देखा, कि अग्निकी शिखा समान एक कन्या रो रही है; नृपोत्तम ययातिने उस दिव्यदेहा कन्याको देखकरकेही मन-हरने-वाली धीमी बोलीसे समझाकर पूछा, कि तांबेके रङ्ग नखवाली, भली हुई मणिके कुण्डलवाली युवती नारि! तुम कौन हो? क्यों ऐसी चिन्ता कर रही हो? क्यों कातर होकर शोक प्रकाश कर रही हो? और क्योंकर इस घासपातसे ढंपे हुए कूपमें गिर गयी हो? तुम किसकी बेटी हो? हे सुन्दरी! यह सब सच बोलो।

देवयानी बोली, कि देवोंसे दैत्यों के मारे जानेपर उन मरे दैत्योंको जो विद्याके बलसे जिलाते हैं, मैं उन शुक्रकी कन्या हूं, वह मेरी यह दशा जान नहीं सके हैं; हे राजन्! अपने यह तामेके रंगवाले नख उंगली युक्त दहिने हाथको ऊपर उठाती हूं। इसे पकड़कर मुझे निकालिये, क्योंकि आप सुवंशी है और निश्चय जानती हूं, कि आप बड़े धीर, वीर्य्य-और यशवाले हैं, इससे आपको मुझे इस कूपसे निकालना चाहिये। श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि नहुषपुत्र राजा ययातिने उसको ब्राह्मणकी कन्या जानकर दहिना हाथ पकड़कर उस कूपसे निकाला। वह सुन्दरी देवयानीको ऊपर निकालकर उचित सम्भाषण कर उसी-क्षण अपने नगरको पधारे।

नहुषपुत्रके चले जाने पर अनिन्दिता देवयानी शोकसे खेदवती होकर असुरपुरसे आई हुई घूर्णिका नाम्नी दासीसे बोली, कि घूर्णिके! तुम शीघ्र चलकर मेरे पितासे कहो, कि मैं इसदिनों राजा वृषपर्व्वा के नगर में न जाऊंगी वैशम्पायन बोले, कि वह घूर्णिका द्रुत वेगसे असुर-मन्दिरमें जाकर शुक्रको देखकरके सम्मानके साथ बोली, कि हे महाभाग! श्रेष्ठ ब्रह्मन्! वृषपर्व्वाकी कन्या शर्म्मिष्ठा वनमें देवयानीको घायलकर आई है। यह सुनतेही शुक्र वनमें कन्याको ढूंढ़नेके लिये विषादित चित्तसे वेग-पूर्व्वक सिधारे। अनन्तर वनमें कन्या देवया·

नीको देखकर स्नेहवश दुःखित हृदयसे हाथोंसे उठाय गलेमें लगाकर बोले, कि सभी जन निज दोष और गुणके अनुसार दुःख और सुख भोगते हैं ; मैं समझता हूं, कि तुमने कोई बुरा कार्य्य किया होगा, उसीसे निष्कृतिरूपी यह दशा भयी है ! देवयानी बोली, कि मेरा बचाव होवे वा न होवे, वृषपर्व्वाकी कन्या शर्म्मिष्ठाने मुझसे जैसा कहा है, उसको ध्यान देकर सुनिये। शर्म्मिष्ठाने कहा है, कि आप दैत्योंके भाट हैं, क्या यह सच है ? और क्रोधसे आंखे लालकर अति कटीली और कड़वी बातोंसे मुझसे यहभी कहा, कि "तुम्हारे पिता स्तुतिपाठ करनेवाले, सदासे भिखमंगे और दान लेनेवाले हैं, और मेरे पिता स्तुति किये जाते हुए दाता और दान देनेवाले हैं।" अहङ्कारसे भरी हुई वृषपर्व्वाकी कन्याने क्रोधसे रक्तनेत्र बनकर बार बार मुझसे ऐसा कहा ; पिता ! मैंने यह बात कही हैं, कि यदि मैं स्तुतिपाठ करनेवाले और दान लेनेहारे की बेटी हूं, तो शर्म्मिष्ठाको प्रसन्न करूंगी। शुक्र बोले, कि देवयानि ! तुम स्तुति पढ़नेवाले, भिखमंगे वा दान लेनेहारे की बेटी नहीं हो, स्तुति न पढ़नेवाले और स्तुति कियेजानेवाले जन की कन्या हो ; वृषपर्व्वा, इन्द्र और नहुषपुत्र यह सबलोग जानते हैं, मेरा विरोध-वर्जित, सोचके बाहर ऐश्वरिक ब्रह्मबल है ; स्वर्ग और भूतलमें जो सब वस्तु हैं, मैं उनका नियन्ता हूं, भगवान् स्वयम्भू ने सन्तोष-पूर्व्वक ऐसा कहा है। तुमसे सच कहता हूं, कि मैंही प्रजाओंके हितके निमित्त जल वर्षाता हूं, मुझसेही सम्पूर्ण ओषधि पुष्ट होती हैं। श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि दुःखवशा और खेदग्रसिता पुत्रीको ऐसी मनोहर मीठी बातोंसे उनके पिता शुक्रने समझाया।

सम्भवपर्व्वमें अठहत्तरवां अध्याय समाप्त।

शुक्र बोले, कि जो अन्यजनसे निन्दित होकर निन्दा की बातको सहलेते हैं, देवयानि ! तुम जानना, कि उससेही इस सम्पूर्ण जगत्का जय करना होता है। जो उछले हुए क्रोधको शासित घोड़ेकी नाईं शासित करते हैं, वही साधुओंसे सारथि करके उक्त होते हैं। वास्तवमें, ऐसा नहीं, कि वह घोड़े की रासहीको पकड़नेसे सारथि कहे जाते हैं। जो क्षमासे चढ़े हुए क्रोधको रोक लेते हैं, देवयानि ! तुम जानना, कि उससे ही इस सम्पूर्ण जगत्का जय करना होता है। जो सर्पके कैंचुल छोड़ने की भांति चढ़े हुए क्रोधको क्षमासे रोक लेते हैं, वेही पुरुष करके कथित होते हैं। जो क्रोधको रोकते हैं और किसीकी निन्दा करनेसे उसको सह लेते हैं, तथा आप दुःखित होने परभी औरों को दुःख नहीं देते हैं, वही पुरुषार्थके भागी हैं। जो बिना थकावट महीने महीने यागकी क्रिया करते हैं और सर्व्व प्राणियोंके अक्रोधी होते हैं, इन दोनोंमें अक्रोधी पुरुषही श्रेष्ठ हैं। अज्ञान बालक बालिका आपसमें जो अनिष्टाचरण किया करती हैं, प्राज्ञलोग उसका अनुकरण नहीं करते, क्योंकि वे बालक बालिका बलाबलसे ज्ञात नहीं हैं। देवयानि बोली, कि पिता ! मैं बालिका होने पर भी धर्म्म का मर्म्म जानती हूं और अक्रोध और क्रोधके विषयमें बलाबलसेभी ज्ञात हूं, पर जो शिष्य होकर शिष्यके समान व्यवहार नहीं करता, मङ्गलेच्छुक जनको उसकी क्षमा न करना चाहिये, और जिनके व्यवहार ऐसे निकृष्ट हैं, उनके देशमें बसनेकी मुझे इच्छा नहीं होती। जो सब पुरुष कौलिन्य और चरित्रके विषयमें निन्दा करते हैं, उनके साथ मङ्गलार्थी जनको बसना उचित नहीं हैं। जो सब साधु कुल, शीलसे ज्ञात हैं उनके साथही बसना उचित है, और वह बासही श्रेष्ठ करके गिना जाता है। जिस प्रकार अग्निकामी जन

वनकी लकड़ीको मथन करते हैं, उसप्रकार वृषपर्व्वाकी कन्याकी अति कठोर कटीली बात मेरे हृदयको मथ रही है। मैं जानती हूं, कि तीनोंलोकोंमें इससे अधिक असाध्य कार्य्य कोई दूसरा नहीं है, जो धनहीन जन शत्रुओंको प्रज्वलित श्री देखकर उपासना करते हैं, विद्वान् लोग ऐसा जानते हैं, कि ऐसे जनकी मृत्युही मङ्गल है।

सम्भवपर्व्वमें उनहत्तरवां अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर भृगुश्रेष्ठ काव्य क्रोधसे चलके, बैठे हुए वृषपर्व्वाके पास पहुंच करके, निर्भय चित्तसे यह कहने लगे, कि राजन्! अधर्म्माचरण करनेसे उसी दिन उसका फल दीख तो नहीं पड़ता है, पर जिस प्रकार धरतीका जोतने बोनेसे उचित समयमें फलदेती है, उस प्रकार अधर्म्मभी धीरे धीरे आचरित होकर योग्यकालमें अधर्म्मकारीकी जड़ काट देता है। जिसप्रकार अधिक भोजन करनेसे उसीक्षण हानि न होनेसेभी अन्तमें अवश्यही हानि होती है, तैसे ही पापकार्य्यका फल यदि अपनेमें न दीख पड़ता हो, तो पुत्र वा पौत्रमें वह अवश्यही दीख पड़ेगा। हे वृषपर्व्व! मेरे घरमें रहते हुए धर्म्मज्ञ, गुरु-सेवक और निष्पापी ब्राह्मण बृहस्पतिपुत्र कचको तुमने वध किया था, वधके अयोग्य उस कचके वधके कारण और मेरी पुत्रीको तुम्हारी बेटी शर्म्मिष्ठाने प्रायः मारही डाला था, उसहेतु तुम निश्चय जानना, कि तुमको और तुम्हारे बान्धवोंको मैं त्याग दूंगा। अहो दैत्यराज! जो कि तुम मुझको झूठमूठका प्रलाप बकने वाला समझते हो, पर यह तुम्हारा अपना दोष है, उसे तुम न सुधारकर उड़ा देते हो, सो तुम्हारे राज्य और साथमें मेरा न रहनाही उचित है। वृषपर्व्वा बोले, कि हे भार्गव! मैं आपको झूठे वा अधार्म्मिक नहीं समझता हूं; सो आप मुझपर प्रसन्न होवें। हे भार्गव! यदि आप हमको छोड़कर यहांसे चले जायं, तो मैं समुद्रमें जा डूबूंगा, क्योंकि आपके बिना हमारी कोई और गति नहीं है। शुक्रजी बोले, कि असुरगण! तुम चाहे समुद्रमें डूबो वा किसी ओर पधारो, पर मैं बेटीका अनिष्टाचरण सह नहीं सकूंगा, क्योंकि वह बेटी मेरी बड़ी स्नेहपात्री है। बृहस्पतिजी जैसे इन्द्रके यागके निर्व्वाह करनेहारे हैं, मैंभी तुम्हारे वैसा हूं, पर मेराजीवन देवयानीके अधीन है, अतएव देवजानीको प्रसन्न करो। वृषपर्व्वा बोले, कि हे भार्गव! इस भूमण्डलमें असुरोंके हाथी गौ, घोड़े और जितना धन सम्पद है, आप उन सबोंके और मेरेभी अधिकारी हैं। शुक्र बोले कि हे महासुर! असुर-राजोंका जितना ऐश्वर्य्य है, यदि मैं सबका अधीश भी बनूं, तौभी देवयानीको प्रसन्न करो।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि भार्गवकी ऐसी बात सुनकर महाविज्ञ वृषपर्व्वाने उसे मान लिया और उसके साथ भार्गवने देवयानीके पास चलकर वह सब वृत्तान्त कह सुनाया। अनन्तर देवयानी बोली, कि हे पिता! मैं भली भांति नहीं जानती हूं, कि आप दैत्यराजकी सम्पूर्ण सम्पद के अधीश हैं, सो राजा स्वयं ऐसा कहें। वृषपर्व्वा बोले, कि हे सुन्दरि देवयानि! तुम्हारी जो कामना हो, सो कहो यदि वह दुर्लभ भी हो तो उसे पूरी करूंगा। देवयानि बोली, कि मैं कामना करती हूं, कि सहस्र कन्याओंके साथ शर्म्मिष्ठा मेरी दासी बने, मेरे पिता मुझको जहां दान करेंगे, शर्म्मिष्ठा वहां मेरे साथ जायगी। वृषपर्व्वा निकटकी दासीसे बोले, कि दासी! उठो, शीघ्र जाकर शर्म्मिष्ठाको लाओ, देवयानी जो कामना कर रही है, शर्म्मिष्ठासे उसे पूरी करनेको कहो।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर दासीने

शर्म्मिष्ठाके पास जाकर कहा, कि भद्रे! शर्म्मिष्ठे! उठो; बन्धुओंके मङ्गल करनेकी यत्नवती होओ; ब्राह्मण शुक्र देवयानीसे आदिष्ट होकर शिष्य दैत्योंको त्याग रहे हैं। हे अनघे! आज उन शुक्र-कन्याने यह कामना की है, कि तुमको सहस्र दासियोंके साथ उनकी दासी बनना पड़ेगा; तभी वह मानेंगी। शर्म्मिष्ठा बोली, कि यदि देवयानिके लिये शुक्र मुझको बुलावें, तो आज देवयानी जो कामना करेंगी उसको मैं पूरी करनेको सम्मत हूं, मेरे दोषसे शुक्र और देवयानी न जायं।

श्रीवैशम्पायजी बोले, कि अनन्तर शर्म्मिष्ठा पिताके प्रबन्धके अनन्तर पाल्कीपर चढ़कर सहस्र कन्याओंसे घेरी जाकरके श्रेष्ठपुरसे शीघ्र निकली; आगे देवयानिके पास आकर बोली, कि मैं सहस्र दासियोंके साथ तुम्हारी सेविका दासी बनी, तुम्हारे पिता जहां तुमको दान करेंगे, मैं वहां तुम्हारे साथ जाऊंगी। देवयानी बोली, कि मैं तुम्हारी स्तुति पढ़नेवाले, भिखमंगे और दान लेनेवालेकी कन्या हूं; तुम स्तुति किये जानेवालेकी पुत्री हो, फिर क्यों तुम दासी बनोगी? शर्म्मिष्ठाने उत्तर दिया, कि चाहे जिस किसी उपायसे बन्धुवर्ग सुखी होवें, वही मुझको करना होगा, सो तुम्हारे पिता जहां तुमको दान करेंगे, मैं वहां तुम्हारी साथी बनी रहूंगी। श्रीवैशम्पायन जी बोले, कि हे नृपश्रेष्ठ! वृषपर्व्वाकी बेटीके दासीपन स्वीकार करने पर देवयानी पिताके पास जाकर बोली, कि हे पिता! मैं सन्तुष्ट हुई, अब नगरको जाऊंगी, मैं जान चुकी, कि आपका विज्ञान और विद्याका बल अव्यर्थ है। वैशम्पायन बोले, कि महायशा, द्विजश्रेष्ठ शुक्र पुत्रीकी यह बात सुनकर सब दैत्योंसे पूजे जाकर प्रसन्नचित्तसे असुरपुरको पधारे।

सम्भवपर्व्वमें अस्सी अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे नृपोत्तम! अनन्तर बहुकाल पश्चात् सुन्दरी देवयानी खेलनेके निमित्त पूर्व्व कथित उस वनमें गयी, आगे वह सहस्र दासी और शर्म्मिष्ठाके साथ वहां पहुंचकर मनमाना घूमने लगी। वह वहां सम्पूर्ण सहेलियोंके साथ परम आनन्द भोगने लगी; वे सब मधु-वृक्षका मधु पीकर कभी खेल रही थीं; कभी भांति भांतिके फल और भांति भांतिकी भोजनीय सामग्री खा रही थीं, कि ऐसे समयमें नहुषपुत्र ययाति फिर मृगयाके निमित्त आन कर थकावटसे जलपानार्थी होकर स्वेच्छापूर्व्वक वहां आ पहुंचे। उन्होंने वहां देवयानी, शर्म्मिष्ठा और अनुपम रूपवती दिव्य आभूषणोंसे सजी धजी मधुपानसे उन्मत्ता खेलती हुई कामिनियों को देखा; मधुर हासिनी अनुपम रूपवती, नारियोंमें प्रधाना देवयानी उन बालाओंमें बैठी थी, शर्म्मिष्ठा उसके पांवआदि दाब दाबकर सेवा कर रही थी। यह देखकर राजा ययाति निकट जाकर बोले, कि शुभे! तुम दो कन्या दो सहस्र कन्याओंसे घिरी हो, तुम दोनोंके नाम, गोत्र जानना चाहता हूं, देवयानि बोली, कि हे नराधिप! यह कहती हूं, सुनिये। जो असुरोंके गुरु, शुक्र नामसे प्रख्यात हैं, मैं उनकी कन्या हूं; यह वृषपर्व्वा नामक दैत्यराज की दुहिता हैं, इनका नाम शर्म्मिष्ठा है, यह मेरी सहेली और दासी हैं, मैं जहां जाती हूं, यह मेरे साथ जाती हैं। ययाति बोले, कि यह जाननेके लिये मेरा कौतूहल बढ़ रहा है, कि यह सुन्दर भौंहवाली, दैत्यराज दुहिता क्योंकर तुम्हारी दासी हुई। देवयानि बोली, कि हे नरश्रेष्ठ! सब कुछ दैवहीका वशीभूत है, दैवाधीन विषयमें अचरज न मानना, आपका रूप और वेश राजाको भांति देखती हूं, आप वैदिक बाक्य कह रहे हैं; मुझसे कहिये, कि आप कौन, किनके पुत्र और कहांसे आते हैं।

ययाति बोले, कि मैंने ब्रह्मचर्य्य लेकर सम्पूर्ण वेद पाठ किये हैं; मैं राजा और राजपुत्र हूं, मेरा नाम ययाति है। देवयानि बोली, कि कहिये, आप जलकी मछली आदि मारने, वा मृगयाकी इच्छासे अथवा अन्य किस कारणसे यहां आये हैं? ययाति बोले, कि हे भद्रे! मृगयाके लिये निकल कर जल पीनेकी यहां आपहुंचा हूं, इस समय नाना प्रकारसे थका हूं आज्ञा हो, तो चला जाऊं। देवयानी बोली, कि इन दो सहस्र कन्या और दासी शर्म्मिष्ठाके साथ मैं आपकी अधीना बनती हूं, आपका मङ्गल होगा, आप मेरे सखा और भर्त्ता होवें। ययाति बोले, कि हे शुक्रनन्दिनी, भामिनी, देवयानि! तुम्हारा मङ्गल होवे, मैं तुम्हारे योग्य पात्र नहीं हूं, तुम्हारे पिता जैसे हैं, उससे राजालोग तुम्हारे विवाहके योग्य नहीं हो सकते! देवयानी बोली, कि ब्राह्मणके साथ क्षत्रिय और क्षत्रियके साथ ब्राह्मण मिले हुए हैं। हे नहुषपुत्र! आपभी उसके अनुसार ऋषि और ऋषिपुत्र हुए हैं, सो मुझसे विवाह कीजिये! ययाति बोले, कि हे वराङ्गने। चारों वर्ण एक ब्रह्माकी देहसे उत्पन्न तो हुए है, पर उनमेंसे हरेकके धर्म्म और शौचादि अलग अलग निर्दिष्ट हैं; उनमें ब्राह्मण सभोंसे श्रेष्ठ हैं। देवयानी बोली, कि हे नहुष-पुत्र! किसी और पुरुषने पहिले मेरा हाथ नहीं थामा; आपने पहिले मेरा पाणिग्रहण किया है, इससे आपकोही पतिलमें वरण करती हूं। आपने ऋषि और ऋषिपुत्र होकरके स्वयं मेरा पाणिग्रहण किया है और मैंभी मनस्विनी हूं, सो दूसरा पुरुष क्योंकर मेरे पाणिको स्पर्श करेगा? ययाति बोले, कि ज्ञानी पुरुष जानते हैं, कि क्रोधपूरित विषयुक्त सर्प और तेज शस्त्रसे भी ब्राह्मण कठोर होते हैं, देवयानीने पूछा, कि हे पुरुषर्षभ! क्योंकर यह कहा, कि क्रोधपूरित तेज विषयुक्त सर्प और तेज शस्त्रसे भी ब्राह्मण कठोर होते हैं? ययाति बोले, कि सर्पके काटनेसे एक मनुष्य मरता है और शस्त्रसे भी एक मनुष्य मारा जाता है, पर ब्राह्मण क्रोधित होकर राज्य, नगर सम्पूर्ण के साथ एकही कालमें नष्ट कर डालते हैं, हे भद्रे! मैं इन कारणोंको बड़ा कठोर समझता हूं, सो तुम्हारे पिताके बिना दान किये मैं तुमसे विवाह नहीं कर सकता हूं। देवयानी बोली, कि महाराज! मैंने आपको वरण किया है, अब पिताके दान करने पर मुझसे विवाह करलीजिये; आपने प्रार्थना नहीं की, पिताके दान करने पर ग्रहण करनेमें, आपको भयकी बात क्या है?

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर देवयानीने वेगपूर्व्वक पितासे सम्पूर्ण वृत्तान्त कहनेकी आज्ञा करी। दासीने शुक्रके पास जाकर आद्योपान्त सब कह सुनाया। वह सब वृत्तान्त सुनकर वनमें आये भार्गवके उस वनमें जा पहुंचने पर पृथ्वीनाथ ययाति ब्राह्मण शुक्रको समागत देखकर सिर नाय करके प्रणाम कर दोनों हाथोंको जोड़के खड़े रहे; देवयानी बोली पिता! इन राजा नहुषपुत्रने विपत्कालमें मेरा पाणिग्रहण किया था, सो मैं सिरनाय प्रार्थना करती हूं, कि आप इस पात्रको मुझे सम्प्रदान कीजिये, किसी औरको वरण करना मेरी इच्छा नहीं है। शुक्र बोले, कि हे वीर नहुषपुत्र! मेरी इस प्यारी कन्याने तुमको पतिलमें वरण किया है, इसकारण मैं सम्प्रदान करता हूं, तुम इसको महिषी कर लो। ययाति बोले, कि हे ब्राह्मण भार्गव! मैं आपसे यह वर मांगता हूं, कि इस विषयमें वर्णसङ्कर हेतु महान् अधर्म्म मुझको स्पर्श न करे। शुक्र बोले, कि मैं तुमको अधर्म्मसे बचाता हूं तुम मनमाना वर मांगो, इस विवाहसे तुम दुःखी मत होओ, तुम्हारा सम्पूर्ण पाप दूर किये देता हूं। तुम इस सुन्दरी देवयानीसे धर्म्मानुसार विवाह कर लो, इसके

साथ अपार प्रीति पाओगी, और इस कुमारी वृषपर्व्वाकी दुहिताकी सदा पूजा करना, हे राजन्! इसको बिस्तर पर न बुलाना।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि शुक्रकी यह बात सुनकर राजा ययातिने उनकी प्रदक्षिणा करके शास्त्रोक्त विधिके अनुसार देवयानीसे शुभ विवाह किया। उक्त नृपश्रेष्ठ, शुक्रसे दो सहस्र कन्या और शर्म्मिष्ठा सहित उत्तमाङ्गना देवयानीको और प्रचुर धन लाभ कर, महात्मा शुक्र और दैत्योंसे सत्कार किये जाकर और आज्ञा पाकर प्रसन्न चित्तसे निज राजधानीको पधारे।

सम्भवपर्व्वमें एकासी अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर ययातिने महेन्द्रकी पुरीसे निज पुरीमें पहुंचकर अन्तःपुरमें प्रवेश-पूर्व्वक देवयानीको योग्य वासस्थान दिया। आगे देवयानीकी आज्ञासे अशोक वनके निकट घर बनाकर उसमें वृषपर्व्वाकी एलीको वासस्थान बनवा दिया और दो सहस्र दासीके साथ उस शर्म्मिष्ठाको वस्त्र, अलङ्कार, अन्न पानादिसे यथोचित विभागके अनुसार आदर सत्कारपूर्व्वक रख दिया। अनन्तर वह नहुषपुत्र राजा देवयानीसे परम सुखपूर्व्वक विहार करते हुए, बहुवर्ष बिताने लगे। यथासमयमें देवयानीका ऋतुकाल आने पर सुन्दरी देवयानीने गर्भ धारण किया; इससे उसके एक सुकुमार पुत्रका जन्म हुआ। सहस्र वर्ष व्यतीत होनेपर यौवन-प्राप्ता शर्म्मिष्ठाका ऋतुकाल आ पहुंचा। तब वह सोचने लगी, कि मेरा ऋतुकाल उपस्थित हुआ, पर विवाह किया हुआ पति नहीं है, क्या होगा! क्या करूं! अथवा योंकर कार्य्य पूरा होवे। देवयानीने पुत्र प्रसव किया है, मेरी यौवनदशा व्यर्थ हुई, सो देवयानीने जिस प्रकार राजाको पतित्वमें वरण किया है, मैंभी वैसाही करूं, मुझको निश्चय जान पड़ता है, कि राजासे पुत्ररूपी फल प्राप्त करूंगी, अब उन धर्म्मात्माको निरालेमें पाऊं तब ठीक हो।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर उस कालमें राजा मनमाने अशोकवनके निकट पंहुचकर शर्म्मिष्ठाको देखकर बैठ गये। मधुरहासिनी शर्म्मिष्ठा निरालेमें उनको अकेले पाकरके दोनों हाथ जोड़कर निकट आकर बोली कि हे नहुषपुत्र! चन्द्र, इन्द्र, विष्णु, यम वा वरुणके और आपके अन्तःपुरमें रहनेवाली को कोई देख नहीं सकता। हे राजन्! आप मेरे रूप, कुल और शीलकी बात सदासे जानते हैं, सो मैं आपको प्रसन्न कर प्रार्थना करती हूं, आप मेरे ऋतुकी रक्षा कीजिये। ययाति बोले, कि मैं जानता हूं, कि तुम सुशीला, अनिन्दनीया, दानवकन्या हो, तुम्हारा रूप सूईके अगले भागके समान भी निन्दायोग्य नहीं है; पर मैंने जब देवयानीसे विवाह किया था, तब भगवान उशनाने कहाथा, कि तुम इस वृषपर्व्वाकी कन्याको बिस्तर पर मत बुलाना। शर्म्मिष्ठा बोली, कि हे राजन्! हंसीमें न मिलूंगा कहके मिलने योग्य स्त्रीसे मिलनेमें और विवाहके समय और प्राण जाने की सम्भावनामें, और सब चोरी जानेसे—इन पांचस्थानमें झूठी बात कहनेसे दोष नहीं होता, हे नरेन्द्र! लोगोंका ऐसा कहना, कि पूछे जाकर झूठी कहनेसे मनुष्य पतित होता है, झूठ है; क्योंकि गौ, ब्राह्मण, स्त्री, दीन, अनाथ आदिके लिये विशेष विशेष स्थानोंमें झूठी साक्षी देनेसे पुण्यभी होता है। जिस स्थलमें दोनोंका एकार्थ समाधान करना होगा, वहां झूठी बात दोषकी होती है। ययाति बोले, कि राजा प्रजाओंके प्रमाण हैं, वह झूठ बोलनेसे नष्ट होते हैं, अतएव यदि धनका कष्ट भोगना भी पड़े, तौभी मिथ्या कहनेको मुझे

साहस नहीं होता। शर्म्मिष्ठा बोली, कि हे राजन्! सहेलीका पति और अपना पति दोनों समान हैं। दो सहेलियोंमें एकका विवाह होनेसे दोनोंका विवाह सिद्ध होता है; पहिले मेरी सहेलीने आपको वरण किया है, उससेही आपको मेरा पतिलमें वरण करना होगया है, ययाति बोले, कि मेरा यह एक व्रत है, कि मांगनेवाला जन जो मांगेगा मैं वही दे दूंगा, तुम मुझसे मांग रही हो, सो कहो, तुम्हारी कौनसी अभिलाषा पूरी करनी होगी। शर्म्मिष्ठा बोली, कि महाराज! आप मुझे अधर्म्मसे बचावें, धर्म्म रक्षा करें, आपसे पुत्रवती होकर मैं भली भांति धर्म्मानुष्ठान करूंगी। राजन्! भार्य्या, दास और पुत्र यह तीन धनपति नहीं होते, पर यह जो धन उपार्ज्जन करते हैं, वह धन उनका होता है, जिनके वे अधीन हैं। हे राजन्! मैं देवयानीकी दासी और आपको वशीभूता हुई हूं, सो देवयानी और मैं दोनों आपके भजनेके योग्य हैं, सो आप मुझे भजें।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि राजाने शर्म्मिष्ठाकी बात सुनकर उसे ठीक जान करके शर्म्मिष्ठाका मनोरथ सफल कर धर्म्मरक्षा की। इच्छानुरूप सङ्गमसे शर्म्मिष्ठाका मनोरथ पूरा होनेपर वे दोनों उचित सम्मान से सभाषणाकार योग्य स्थानोंमें पधारे। हे राजन्! प्रसन्न नेत्रा, भली भौंवाली, मधुरहासिनी शर्म्मिष्ठाने उस पहिले सङ्गमहीमें उन नृपोत्तमसे गर्भवती होकर उचित समयमें देवकुमार समान प्रसन्न नेत्र एक पुत्र प्रसव किया।

सम्भवपर्व्वमें बिरासी अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे भारत! शर्म्मिष्ठाके पुत्र जन्मा है, यह सुनकर सुन्दरी देवयानी दुःखीचित्त हुई, और शर्म्मिष्ठाके समीप जाकर यह बोली, कि री भली भौंवाली! तुमने कामको वशीभूता होकर यह कैसा पापकर्म्म कर डाला है? शर्म्मिष्ठा बोली, कि हे सुन्दरी! मेरे पास धर्म्मात्मा वेदपारग एक ऋषि आये थे, उनके वर देनेको उद्यत होनेपर मैंने धर्म्मानुसार उनसे ऋतु रक्षाकी प्रार्थना की थी। हे सुन्दरी! मैं अन्यायपूर्व्वक काम-चारिणी नहीं हुई हूं, सो मैं सच कहती हूं, कि मेरे गर्भोत्पन्न इस पुत्रने उन ऋषिके औरससे जन्म लिया है। देवयानी बोली, कि री भीरु! यदि यह सच होय, तो अच्छा है, पर क्या तुम उन ब्राह्मणको जानती हो? मैं उसका नाम गोत्र और कुल जानना चाहती हूं। शर्म्मिष्ठा बोली, कि हे सुन्दरी! वह ब्राह्मण तप और तेजसे दिननाथके समान जलते थे, उनको देखकर मेरी ऐसी शक्ति नहीं थी, कि कोई बात पूछूं। देवयानी बोली कि हे शर्म्मिष्ठे! यदि ऐसा हो और यदि तुमने अति श्रेष्ठ ब्राह्मणसे पुत्रलाभ किया हो, तो मेरे क्रोधका कोई कारण नहीं है।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि वे दोनों निरालेमें ऐसा कहकर हंसी उड़ाने लगीं। आगे देवयानी यह बात ठीक जानकर निज पुरीमें पधारी।

अनन्तर राजर्षि ययातिके वीर्य्य तथा देवयानीके गर्भसे इन्द्र और उपेन्द्रके समान दो पुत्रोंने जन्म लिया; उनके नाम यदु और तुर्व्वसु हैं। फिरभी उस राजर्षिसे वृषपर्व्वाकी पुत्री शर्म्मिष्ठाने द्रुह्यु, अनु और पुरु यह तीन कुमार प्रसव किये। हे राजन्! अनन्तर कुछ काल बीतने पर सुन्दरी देवयानी ययातिके साथ उस निर्ज्जन बनको गयी; वहां यह देखकर, कि देववत रूपवान् तीन कुमार सुखसे खेल रहे हैं, देवयानीने अचरज मानकर राजासे पूछा, राजन्! कहो, देवकुमार समान यह कुमार किसकी सन्तान हैं, मुझको जान पड़ता है, कि रूप और तेजमें यह तुम्हारेही समान हैं।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि देवयानीने राजासे यह बात कहकर कुमारोंसे पूछा, कि बालको! तुम्हारे नाम क्या हैं? तुमने किस वंशसे जन्म लिया है? सच सच कहो, मैं सुनना चाहती हूं। बालकोंने उङ्गलियोंसे उन राजाहीको दिखाया और कहा, कि शर्म्मिष्ठा हमारी माता है।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि लड़के यह बात कह करके सब मिलकर राजाके पास गये, राजाने तब देवयानीके सामने आनन्द प्रकट वा उनका आदर नहीं किया। आगे लड़के रोते हुए शर्म्मिष्ठाके पास जा पहुंचे। राजा यह देखकर दुःखित हुए। देवी देवयानी राजापर लड़कोंकी प्रीति देखकर सत्य तत्व जानकर शर्म्मिष्ठासे बोली, कि तुमने मेरी अधीना होकर क्यों मेरा ऐसा अप्रिय कार्य्य किया है! तुमने वही असुर-धर्म्म आश्रय किया, मुझसे नहीं डरी? शर्म्मिष्ठा बोली, कि हे मधुरहासिनी! मैंने जो अपने प्रेमीको ऋषि करके प्रगट किया था, वह बात झूठी नहीं है; मैंने न्याय और धर्म्मके अनुसारही व्यवहार किया है, क्यों तुमसे डरूंगी? हे शोभने! तुमने जब इन राजाको भर्ता करके वरण किया है, मैंने तभी इनको वरण किया है, क्योंकि सहेलीके भर्त्ता धर्म्मानुसार भर्त्ता होते हैं, तुम ब्राह्मणी और बड़ी हो, सो मेरी पूजनीया और माननीया होती हो, पर यह तुम जानती हो, कि यह राजर्षि तुमसे भी मेरे अधिक पूजनीय हुए हैं।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि देवयानी शर्म्मिष्ठाकी यह बात सुनकर राजासे बोली, कि राजन्! अब फिर मैं यहां नहीं रहूंगी। तुमने मेरा अप्रिय कार्य्य किया है। यह देखकर, कि श्यामा देवयानी इतना ही कहकर आंसूभरी आंखोंसे एकायक उठ खड़ी हो उसीक्षण शुक्रके पास जा रही थी; राजा भारी हृदयसे सम्मानसहित समझाते हुए उसके पीछे चलने लगे, पर देवयानी क्रोधसे आंखें लाल कर चली, किसी प्रकार न लौटी। आगे राजाको कोई उत्तर न देकरकेही आंसूभरे नेत्रोंमें उसीक्षण शुक्रके पास जा पहुंची और पिताको देखकर प्रणाम कर सामने खड़ी रही अनन्तर ययातिने भी भार्गवकी पूजा की। देवयानी बोली, कि हे पिता! अधर्म्मसे धर्म्म हार गया है, नीचकी वृद्धि हुई है, वृषपर्व्वाकी पुत्री शर्म्मिष्ठा मुझको लांघ गयी है, हे पिता! इस ययातिके वीर्य्य और शर्म्मिष्ठाके गर्भसे तीन पुत्रोंने जन्म लिया है, मैं दुर्भागी हूं, मेरे दो पुत्रसे अधिक नहीं हुए, आपको समाचार देती हूं। हे भार्गव काव्य! यह राजा धर्म्मज्ञ करके प्रख्यात हैं, पर यहभी आपसे कह देती हूं, कि इन्होंने मर्य्यादाको अतिक्रम किया है।

शुक्रजी बोले, कि महाराज! इस कारण, कि तुमने धर्म्मज्ञ होकर अधर्म्मको प्रिय जाना, बिना विलम्ब, कठोर बुढ़ापा तुमको घेर लेगा। ययाति बोले, कि भगवान्! दानवेन्द्रकी पुत्रीने ऋतुरक्षाकी प्रार्थना कीथी, उसपर मैंने धर्म्म कार्य्य जान करकेही ऐसा किया है, कामके वशीभूत होकर नहीं किया। ब्रह्मन्! किसी कामिनीके ऋतुरक्षाकी प्रार्थना करने पर जो पुरुष ऋतुकी रक्षा नहीं करता, ब्रह्मवादी ब्राह्मणगण उसको भ्रूणहत्याके पापी कहते हैं! मिलन-याच्या कामिनीके कामवती होकर निरालेमें मिलनकी प्रार्थना करनेपर जो पुरुष उससे नहीं मिलता पण्डितलोग धर्म्मशास्त्रोंमें उसको भ्रूणहत्याकारी कहते हैं। हे भार्गव! मैं अधर्म्मके भयसे भीत होकर इन सब विषयोंकी भली भांति आलोचना करके शर्म्मिष्ठासे मिला हूं। शुक्र बोले, कि पृथ्विनाथ नाहुष! तुम मेरे अधीन हो, सो तुमको मेरे आज्ञाकी अपेक्षा करनी थी, तुमने वह नहीं किया है,

धर्म्मविषयमें ऐसा मिथ्या वार करनेसे चोरीके दोषका दोषी बनना पड़ता है।

श्रीवैशम्पायजी बोले, कि शुक्रके क्रोधयुक्त होकर शाप देने पर नहुषपुत्र ययाति उसीक्षण पूर्व्व अवस्थाको छोड़के बुढ़ापेको प्राप्त हुए; तब उन्होंने कहा, कि हे भार्गव! मैं यौवन दशामें देवयानीसे तृप्त नहीं हुआ हूं, हे ब्राह्मन्! आप प्रसन्न होवें, कि यह बुढ़ापा मुझमें प्रविष्ट न होसके। शुक्र बोले, कि पृथ्वीपाल! मेरी बात झूठी नहीं ठहरती है, तुम बुढ़ापेसे ग्रसित हुए हो, पर चाहो तो इस बुढ़ापेको दूसरे जनमें चला सकोगे। ययाति बोले, कि हे ब्रह्मन्! आप यह आज्ञा कीजिये, मेरा जो पुत्र मुझको अपना यौवन देगा, वही पुत्र राज्यभागी पु भागी और कीर्त्ति-भागी होगा। शुक्र बोले, कि नहुष-पुत्र! तुम एक चित्तसे मेरा ध्यान कर इच्छानुसार बुढ़ापेको चला सकोगे, उससे तुम पापके भागी नहीं होगे, जो पुत्र तुमको अपनी अवस्था देगा वह आयुमान्, कीर्त्तिमान्, राज्याधिकारी और अनेक सन्तानयुक्त होगा।

सम्भवपर्व्वमें, तिरासी अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर, राजा ययाति बुढ़ापेसे ग्रसित होकर निज पुरमें जाकर बड़े और श्रेष्ठ पुत्र यदुसे बोले, कि बेटा! शुक्रके शापसे बुढ़ापेने मास बोला कर दिया, केश पक गये और दुर्व्वलता छा गयी है, पर मैं यौवनके भोगसे भली भांति तृप्त नहीं हुआ हूं, अतएव तुम मेरे इस बुढ़ापेके साथ पाप को ले लो, तुम्हारे यौवनसे मैं कामके विषय भोगू; आगे सहस्र वर्ष पूरे हो जाने पर मैं तुम्हारा यौवन तुमको लौटा देकर अपनी जराके साथ पाप भोगूगा। यदु बोले, कि महाराज! बुढ़ापेमें पान भोजादि विषयमें अनेक दोष दोख पड़ते हैं, इस लिये मैं समझ ताहूं, कि बुढ़ापेको न लूंगा। जिस बुढ़ापेसे लोग श्मश्रु दाढ़ीयुक्त आनन्दवर्ज्जित, ढीलेपन-ग्रसित, लटकते हुए मांसयुक्त, सिकुड़े हुए शरीरधारी, कदाकारी, दुर्व्वल, दुबले पतले किसी कार्य्यके करनेमें असमर्थ और तरुणों तथा साथियोंसे अनादृत होते हैं, उस जाराको मैं भोगना नहीं चाहता हूं हे धर्म्मज्ञ भूपते! मुझसे अधिक प्यारे आपके बहुत पुत्र हैं, उनमेंसे किसीको जरा लेनेको आज्ञा कोजिये। ययाति बोले, ऐ पुत्र! तुमने मेरे हृदयसे जन्म ले करकेभी अपनी अवस्था नहीं दी, सो तुम्हारे वंशमें कोई राज्याधिकारी नहीं होगा।

आगे तुर्व्वसुसे बोले, कि बेटा तुर्व्वसो! तुम मेरी इस जराके साथ पापको लेलो, मैं तुम्हारे यौवनसे विषय भोगू, आगे सहस्र वर्ष पूरे होनेपर तुम्हारा यौवन तुमको देकर अपनी जराके साथ पाप ले लूंगा। तुर्व्वसुने उत्तर दिया, कि पिता! जिससे मनमाने भोगसे हाथ धोना पड़ता है, जिससे बल और रूप बिगड़ जाता है, जिससे बुद्धि जाती रहती है, और जिससे प्राण नष्ट हो सकता है, उस बुढ़ापेको मैं नहीं चाहता हूं। ययाति बोले कि रे तुर्व्वसो! तुमने मेरे हृदयसे जन्म लेकरकेभी अपनी अवस्था नहीं दी, सो तुम्हारी प्रजा सम्पूर्णरूपसे उखड़ जायगी और जिनके आचार और धर्म्म बहुत तङ्ग हैं, जोलोग अति लोभाचारी मांसखानेवाले हैं नीचसे जन्मे हुए और गुरुकी पत्नीसे आसक्त हैं, जिनके आचार पक्षियोंको भांति हैं और जो पापिष्ठ पशुधर्म्मी तथा म्लेच्छ हैं, रे मूर्ख! तुम उनके राजा होगे।

श्री वैशम्पायनजी बोले, कि ययाति निज पुत्र तुर्व्वसुको इस प्रकार शाप देकर शर्म्मिष्ठाके पुत्र द्रुह्युसे बोले, कि हे द्रुह्यो! सहस्र वर्षके लिये मेरे रङ्ग तथा रूपनाशी इस जराको लेकर अपना यौवन मुझे दो; जब सहस्र वर्ष

पूर्ण होंगे तब तुम्हारा यौवन तुमको देकर फिर निज पापके साथ जराको ले लूंगा। द्रुह्यु बोला, कि जराग्रस्त जन जीर्ण शरीर-धारी होनेके कारण घोड़े, रथ, हाथी, स्त्री आदिको भोग नहीं सकता और उसकी बातभी बिगड़ जाती है, सो मैं बुढ़ापेको नहीं मांगता। ययाति बोले, कि द्रुह्यो! तुमने मेरे हृदयसे जन्म ले करके भी अपनी अवस्था नहीं दी,सो तुम्हारी अति प्रिय इच्छाभी कभी पूरी नहीं होगी। जहां घोड़े,रथ,हाथी राजाके योग्य यान, गौ, गदहे, बकरे, पालकी आदिसे जाना आना नहीं हो सकता, जहां सदा बेड़ेपर और कूदकर जाना पड़ता है, जहां राजा शब्द कहा नहीं जाता है, तुम वंशसहित उस देशमें रहोगे।

अनन्तर अनु नामक पुत्रसे बोले, कि हे अनो! तुम मेरे पापके सहित यह बुढ़ापा लो, मैं तुम्हारे यौवनसे एक सहस्र वर्ष विषय भोगूं। अनुने उत्तर दिया, कि जराग्रस्त जन टूटे फूटे अङ्ग लेकर अकालमें बच्चेके समान अशुचि शरीरसे अन्न ग्रहण करते हैं, उचित समयमें अग्निमें आहुति नहीं दे सकते, इससे जराको नहीं ले, सकूंगा। ययाति बोले, कि तुमने मेरे हृदयसे जन्म ले करकेभी अपनी अवस्था नहीं दी, इसहेतु तुमने जिस जराका दोष कहा, उसीको प्राप्त करोगे। रे अनो! तुम्हारी प्रजा यौवनमें पहुंचतेही मर जायगी और तुमभी श्रुति और स्मृतिके अनुसार अग्नि-कार्य्यसे वर्ज्जित होगे।

अनन्तर पुरुसे बोले, कि हे पुरो! तुम मेरे प्यारे पुत्र हो, तुम्हीं सबोंसे श्रेष्ठ होगे, बेटा! बुढ़ापेने बली और पलितसे मुझ पर चढ़ाई की है, मैं शुक्रके शापसे जराग्रस्त होनेके कारण यौवनसे भलीभांति तृप्त नहीं हो सका हूं। हे पुरो! तुम मेरे पापके साथ इस जराको लो, मैं तुम्हारे यौवनसे कुछ दिनों तक विषय भोगूं, आगे सहस्र वर्ष पूरे होने पर तुम्हारा यौवन तुमको देकर निज पापके साथ जराको लूंगा।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि पिताकी यह बात सुनतेही पुरुने उत्तर दिया, कि महाराज! आपने जो आज्ञा दी, मैं वही करूंगा। मैं आपके पापके साथ जराको लूंगा। हे राजन्! आप मेरा यौवन लेकर मनमाना विषय भोगिये! मैं आपकी अवस्था और रूप धरकर जराग्रस्त होकर आपको यौवन देकर आपके नियोगके अनुसार कार्य्य करूंगा। ययाति बोले, कि बेटा पुरो! मैं तुम पर प्रसन्न हुआ, प्रीति-चित्तसे यह वर देता हूं, कि तुम्हारे राज्यमें प्रजा सर्व्वकामनाओंकी पूर्त्तिसे प्रसन्न रहेगी। महातपा ययातिने यह कह कर शुक्रको स्मरण करके पुरु नामक महात्मा पुत्रमें जराको संक्रामित किया।

सम्भवपर्व्वमें चौरासी अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि नहुषपुत्र राज-श्रेष्ठ ययाति प्रीतियुक्त होकर पुरुके यौवनसे मनमाना विषय भोगने लगे। हे राजेन्द्र! उनकी जैसी कामना और जैसा उत्साह था, वह उसके अनुसार उचित समयमें यथायोग्य धर्म्मसे बिना विरोध किये सुख भोगने लगे। वह यज्ञोंसे देवोंको, श्राद्धसे पितरोंको, मन-मानी कृपासे दीनोंको, प्रार्थना पूरी कर ब्राह्मणोंको, अन्नपानसे अतिथियोंको, भले प्रकार पालनसे वैश्योंको और अनिर्दयतासे शूद्रोंको भली भांति तृप्त कर और सम्पूर्ण रूपसे सता कर लुटेरोंको तथा धर्म्मसे सम्पूर्ण प्रजाओंको अनुरक्त कर दूसरे देवराजके समान प्रजाको पालने लगे। सिंहवत् विक्रमी वह राजा विषयमें आसक्त होकर धर्म्मसे बिना विरोध किये भले प्रकार भोग करने लगे; वह अच्छी कामनाकी सामग्री पाकर सन्तुष्ट हुए, पर यह स्मरण कर कि, मेरी यौवनावस्था सहस्र वर्षमें

पूरी होजायगी अति खेदयुक्तभी हुए। वीर्य्यवान कालज्ञ राजर्षि सहस्र वर्षतक यौवन पाकर कलाकाष्ठा आदि कालके जितने भाग हैं उसमें विश्वाचीके साथ कभी सुशोभित नन्दनवनमें, कभी अलकामें, कभी पहाड़की चोटीपर अथवा कभी उत्तर प्रदेशमें खेलने लगे। अनन्तर धर्म्मात्माने जब देखा, कि सहस्र वर्ष पूरे होगये हैं, तब पुत्र पुरुको बुलवाकर बोले, कि हे अरिन्दम पुत्र! मैं तुम्हारे यौवनसे अभिलाषा और उत्साहके अनुसार उचित कालमें विषय भोग चुका हूं; पर जिस प्रकार आगमें घृत छोड़नेसे न बुझकर औरभी जल उठती है, उसी प्रकार कामनाकी वस्तुओंको भोगनेसे कभी कामकी निवृत्ति नहीं होती, वरन औरभी क्रमसे बढ़ता रहता है। पृथ्वीमें धान, यव, सुवर्ण, पशु और स्त्री यह सब एक पुरुषसे भोगी जाने परभी उसकी पूरी तृप्ति नहीं होती; अतएव भोगकी प्यास त्यागना उचित है। जो प्यास दुर्म्मतियोंके त्यागनेके अयोग्य है, बुढ़ापा आजानेसेभी जिस प्यासकी क्षय नहीं होती, और जो प्राणविनाशी रोगसदृश है, उस प्यासके छोड़े बिना सुखी होनेका दूसरा उपाय नहीं है। मैं विषयासक्त था, उसमें सहस्र वर्ष व्यतीत हो गये हैं, तिस परभी मेरी विषयकी प्यास दिनोंदिन प्रबल होती जाती है, अतएव मैं यह प्यास छोड़कर परम ब्रह्ममें चित्तको समाधान करके बिना झगड़ा औ ममता-रहित होकर वनमें मृगोंके साथ एकत्र बसूंगा। हे पुरो! तुम्ही मेरे प्रियकार्य्य करनेहारे पुत्र हो, मैं तुम पर प्रसन्न हुआ हूं, तुम्हारा मङ्गल होगा, तुम अपना यौवन लेकर इस राज्यके अधीश बनो।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर नहुषपुत्र ययातिने जराको ले लिया और पुरुभी फिर अपना यौवन प्राप्त हुए। राजाके कनिष्ठ पुत्रको राज्यमें अभिषिक्त करने की अभिलाषा प्रगट करते पर, ब्राह्मणादि चारों वर्ण, सबोंने राजाके समीप आकर यह कहा, कि हे प्रभो! शुक्रके नाती देवयानीके प्रसव किये ज्येष्ठ यदुको अतिक्रम कर पुरुको क्यों राज्य देते हैं? यदु आपके ज्येष्ठ पुत्र, तुर्व्वसु दूसरे, और शर्म्मिष्ठाके गर्भोत्पन्न द्रुह्यु तीसरे, अनु चौथे और पुरु सबोंसे कनिष्ठ हैं, अतएव ज्येष्ठको अतिक्रम करके कनिष्ठ क्योंकर राज्याधिकारी हो सकता है? हमने यह आवेदन किया, आप यथाधर्म्म पालन कीजिये। ययाति बोले, कि हे ब्राह्मणादि वर्णो! तुम सब मेरी बात सुनो, मैं ज्येष्ठको किसी प्रकार राज्य नहीं दूंगा, ज्येष्ठ यदुने मेरी आज्ञा नहीं पाली है। जो पुत्र पिताके प्रतिकूल आचरण करता है, साधुओंके मतसे वह पुत्र, पुत्रोंमें नहीं गिना जाता; जो पुत्र पिता की आज्ञासे चलनेवाला, हितकारी तथा नम्र है, और पिता माता पर पुत्रके समान स्नेह करता है, वही पुत्र पुत्र है; यदु, तुर्व्वसु, द्रुह्यु, अनु, इन्होंने मेरे प्रति बड़ा अनादर प्रगट किया है; पुरुने मेरी बातको विशेष रूपमें रखकर और मानकर मेरी जराको ले लिया था, इससे पुरु कनिष्ठ होनेसेभी मेरा उत्तराधिकारी दायाद होगा। मित्ररूपी पुरुने मेरी अभिलाषा पूरी की है और उशनाशुक्रने स्वयं मुझको वह वर दिया है, कि जो पुत्र तुम्हारा आज्ञाकारी होगा, वही राज्याधिकारी होगा; अतएव तुमसे विनय करता हूं, कि तुम पुरुको राज्यपर बैठाओ। तब चारों वर्णोंकी प्रजाओंने कहा, कि जो पुत्र गुणयुक्त साधु, श्रेष्ठ और सदा पिता माताका हितकारी होता है, वह कनिष्ठ होने परभी सम्पूर्ण कल्याणका पात्र हो सकता है, अतएव आपका प्रियकारी पुत्र पुरु इस राज्यको प्राप्त करनेके योग्य है, इस विषयमें शुक्रनेभी वर दिया है, सो उसको विरुद्धतामें उत्तर नहीं दिया जा सकता।

श्रीवैशम्पायनजी बोले कि पुरवासी और जनपदवासियोंके सन्तुष्ट होकर वैसा कहने पर ययातिने निजपुत्र पुरुको अपने राज्यपर अभिषिक्त किया। वह पुरुको राज्य देकर वनवासके लिये सङ्कल्प ठहराकर ब्राह्मण और तपस्वियोंके साथ राजपुरसे निकले। राजा ययातिके पुत्रोंमें यदुके वंशसे यादव, तुर्व्वसुके वंशसे यवन, द्रुह्युके वंशसे भोज और अनुके वंशसे म्लेच्छ जातिने जन्म लिया है। हे पृथ्वीनाथ। जिस वंशसे आपने संयतेन्द्रिय होकर सहस्र वर्ष राज्य करनेके लिये जन्म लिया है, वह पौरव वंश पुरुहीसे उत्पन्न हुआ है।

सम्भवपर्व्वमें पचासी अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि नहुष-पुत्र राजा ययाति एक प्रकार प्यारे पुत्रको राज्यपर अभिषिक्तकर प्रसन्नचित्तसे वाणप्रस्थाश्रम आश्रयकर मुनि होगये। वह जितेन्द्रिय संयतव्रत, और फल-मूल भक्षी होकर ब्राह्मणोंके साथ कुछकाल वनमें वसकर स्वर्गको पधारे; स्वर्गमें आरूढ़ होकर उन्होंने कुछकाल परम सुखसे काटा। आगे स्वल्प कालहीमें देवराजने फिर उनको स्वर्गसे नीचे गिराया था। सुन चुका हूं, कि वह स्वर्गसे च्युत होकर भूतलको प्राप्त नहीं हुए थे, आकाशहीमें ठहरे थे; आगे उस वीर्य्यवान राजाने वसुमान अष्टक, प्रतर्द्दन और शिविके साथ एकत्र होकर फिर स्वर्गारोहण किया था।

जनमेजय बोले, कि यह आद्योपान्त सब प्रकार सुना चाहता हूं, कि महीपति ययाति किस कार्य्यसे फिर देवलोकको प्राप्त हुए, आप इन ब्राह्मणों और ऋषियोंके सामने कहिये। वह कुरुवंशके बढ़ानेवाले, सत्य कीर्त्तियुक्त, सूर्य्य समान तेजस्वी पृथ्वीपति ययाति देवराजके सदृश थे; उनका यश सर्व्वत्र फैला हुआ है, उन महात्माके इस लोक और परलोककी सम्पूर्ण कथा सुननेका अभिलाषी हो रहा हूं।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे राजन्! स्वर्गमें और इस लोकमें पुण्य उपजानेवाली सर्व्व पापनाशिनी राजा ययातिकी अच्छी कथा आपसे कहता हूं, सुनिये। नहुष-पुत्र राजा ययाति कनिष्ठपुत्र पुरुको राज्यपर अभिषिक्त और यदु आदि पुत्रोंको नीच देशमें स्थापन करके सन्तुष्ट चित्तसे वानप्रस्थाश्रमको आश्रय कर फलमूलभक्षक होकरके बहुकाल तक वनमें रहे; उसकालमें उन्होंने संयतात्मा और जितक्रोध होकर देवता और पितरोंका तर्पण, वाणप्रस्थकी विधिसे अग्निमें आहुति दान और और वनके फल मूल और घृतसे अतिथियोंकी पूजा की थी; उक्त विभुने उञ्छवृत्ति अवलम्बन कर शस्यको चुन चुन कर शेष अन्नके भोजनसे पूरे सहस्र वर्ष व्यतीत किये थे; आगे उन्होंने संयतचित्त होकर जलमात्र पीकर एक वर्ष काटा; अनन्तर तन्द्रा रहित होकर वर्षभर वायु भक्षक हो रहे; अन्तमें एक वर्ष पञ्चाग्निके बीचमें तपस्याकी ६ महीने वाताहारी हो एक पांवके बल खड़े रहे; अनन्तर पुण्यकीर्त्ति नहुष-नन्दनने आकाश-मण्डलको चमका कर स्वर्गारोहण किया।

सम्भवपर्व्वमें छियासी अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि वह राजेन्द्र ययाति स्वर्गारोहण पूर्व्वक देव, साध्य, मरुत और वसुओंसे भली भांति घेरे जाकर देवालयमें चारु-पूर्व्वक देवलोक और ब्रह्मलोकमें विचरने लगे। यह सुन चुका हूं, कि पुण्यकारी, जितेन्द्रिय उस पृथ्वीपतिने इस प्रकारसे बहुकाल स्वर्गवास किया। एक समय उस नृपश्रेष्ठ ययातिके देवराजके पास जानेपर उन्होंने उनसे बातें करनेके पश्चात् उनसे पूछा, कि राजन्! जब पुरु तुम्हारा स्वरूप लेकर जरा ग्रहण

पूर्व्वके भ्रम उनमें घूमे फिरे थे, तब सच कहो, तुमने उनको राज्य देकर क्या कहा था। ययाति बोले, कि तब मैंने पुरुसे यह कहा था, कि गङ्गा और यमुनाके बीचमें जितने देश हैं, वह सबही तुम्हारे हैं, इस भूमण्डलके बीचमें तुम्हीं राजा हुए; और यह उपदेशभी किया था, कि क्रोधी जनसे अक्रोधी जन श्रेष्ठ, असहनशील जनसे सहनशील जन श्रेष्ठ, नीच जीवसे मनुष्य जाति श्रेष्ठ और अविद्वान जनसे विद्वानजन श्रेष्ठ करके गिने जाते हैं; किसीके आक्रोश करने पर पलटमें आक्रोश मत करना, क्योंकि सहनशील जनका मन्युही आक्रोशकारीको जला देती है और उस क्षमाशील जनको पुण्यभी लाभ करा देता है, औरोंके पीड़ा देनेवाले वा निठुरवाणी कहनेवाले न होना, अभिचार आदि नीच उपायों से शत्रुको वशमें न लाना और जिस बातसे औरोंके चित्तमें दुःख पहुंचने की सम्भावना हो, ऐसी जलाने वाली पापयुक्त बातभी किसीसे न कहना। जो जन वाक्यरूपी कांटोंसे मनुष्योंको बींधता है, जिसके मुखमें औरको पीड़ा पहुंचानेवाला वाक्यरूपी राक्षस बैठा है, ऐसे कड़े कहनेवाले निठुरजनको देखनेसेभी लक्ष्मी कूट जाती हैं; सच्चरित्रजन असाधुओंसे लाञ्छित होनेसेभी सदा साधुओंसे पहिले पूजित और पीछे रक्षित होते हैं; वे साधुचरित्रकी आश्रय करके असाधुओंकी निन्दाकी बातों पर क्षमा दिखाते हैं। मुखसे वाक्यरूपी तेजवाण निकलकर अन्यके मर्म्म स्थानहीमें गिरता है, उससे जो जन घायल होता है, वह दिन रात मनके दुःखसे दुःखी रहता है, अतएव पण्डित जन किसीपर वह वाक्यवाण नहीं मारते। सर्व्वजीवों पर दया, दान और मीठी बात इन चारोंकी नाईं धन तीनोंभुवनमें दूसरा नहीं है; अतएव सदा शान्त वचन कहना, कदापि निठुर बात मत कहना, पूजनीय जनकी पूजा करना और दानशील होना, कभी भीख न मांगना।

सम्भवपर्व्वके ययाति उपाख्यानमें सतासी अध्याय समाप्त।

इन्द्रजी बोले, कि हे राजन् नहुष-पुत्र ययाति! जब तुम सम्पूर्ण कर्म्म पूरेकर गृहाश्रमको त्यागकर वनमें सिधारे तब कहो, कि तपस्यामें किसके सदृश हुए थे। ययाति बोले, कि हे वासव! देव, मानव, गन्धर्व्व, और महर्षियोंमें मैं अपने समान तपस्वी किसीको नहीं देखता। इन्द्र बोले, कि हे राजन्! तुमने औरोंके प्रभाव न जान करकेही अपनेसे श्रेष्ठ तुल्य और अधम सबोंका अपमान किया इस हेतु तुम्हारा पुण्य क्षय होगया, सो इस स्वर्ग भोग काभी अन्त हुआ, इसलिये तुम आज देवलोकसे नीचे गिरोगे। ययाति बोले, कि हे देवराज! देव, ऋषि, गन्धर्व्व और मनुष्यों पर अपमान प्रगट करने से यदि मेरा स्वर्ग-भोगका अन्त हुआ हो, तो मैं देवलोकसे च्युत होकर साधु-समाजमें गिरना चाहता हूं। इन्द्र बोले, कि हे राजन्! तुम स्वर्ग से गिरकर साधुओंके निकट रहोगे और वहां फिर प्रतिष्ठा लाभ कर सकोगे। हे ययाति! तुमको अब धर्म्मका मर्म्म ज्ञात हुआ, सो फिर कभी तुल्य और श्रेष्ठ जनोंपर अनादर न प्रगट करना!

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर राजा ययाति देवराजसे सुशोभित पुण्यलोकको छोड़कर गिर रहे थे, कि ऐसे समयमें साधु धर्म्म ठहरानेवाले राजर्षिश्रेष्ठ अष्टक उनको देखकर बोले, कि अपने तेजसे अग्नि समान प्रज्वलित, इन्द्र सदृश रूप-यौवनयुक्त और आकाशमें चरनेवाले में श्रेष्ठ, सूर्य्यके समान तुम कौन मेघरूपी अंधियारीको हटाते हुए आकाशसे गिर रहे हो? अग्नि वा सूर्य्य समान

प्रकाशमान तुमको सूर्य्य की बाटसे गिरते देखकर सम्पूर्णलोक मोहित होकर "यह क्या गिर रहा है," कहके तर्क कर रहे हैं। हम सब तुमको उपेन्द्र, इन्द्र और सूर्य्य सदृश प्रभावी और देवमार्गमें ठहरते हुए देखकर तुम्हारे गिरनेके कारण जाननेके लिये उठ खड़े हैं। हे लालसाके योग्य रूपवान्! तुमसे पहिले पूछ कर हमने धृष्टता प्रगट न की होती, पर आप यह पूछनेकी प्रवृत्त न हुए, कि हम कौन हैं; इस हेतुसे पूछते हैं, कि तुम किसके पुत्र हो? और क्यों आ रहे हो और हे इन्द्रसे प्रभावी! तुम्हारा भय दूर होवे, तुम खेद और मोहको झट दूर करो, तुम्हारे इन साधुओंके पास ठहरनेसे बलनाशी इन्द्र भी तुमको सता नहीं सकेंगे। हे अमरराज-कल्प! साधुलोग सुखसे च्युत होनेसे उनकी साधुलोगही भली भांति सदा रक्षा करते हैं, इस स्थानमें उन चराचर भूतोंके प्रभु वे साधु भी बहुत एकत्र हैं, अतएव तुम अपने समान सज्जनोंके निकटही आन पहुंचे हो; जिस प्रकार अग्नि ताप देनेके प्रभु हैं और सूर्य्य अंधेरा दूर करनेके प्रभु हैं, उस प्रकार साधुओंके विषयमें नये आये हुए जन भी प्रभु होते हैं।

सम्भवपर्व्वके ययाति उपाख्यानमें अठासी अध्याय समाप्त।

ययाति बोले, कि मैं नहुषका पुत्र और पुरुका पिता हूं, मेरा नाम ययाति है। मैंने सर्व्व जीवोंका अपमान किया था, इस हेतु पुण्य घटनेसे सुर, सिद्ध और ऋषिलोगसे च्युत होकर गिर रहा हूं; मैं तुमसे अवस्थामें ज्येष्ठ हूं, इस हेतु तुमको नमस्कार नहीं किया, क्योंकि जो जन विद्या या तपस्या अथवा जन्मसे वृद्ध होते हैं वही द्विजातियोंमें पूजनीय होते हैं? अष्टक बोले कि तुमने कहा कि जो जन अवस्थामें वृद्ध हैं वह पूजनीय होते हैं, पर ऐसा कहा है, कि जो जन विद्या और तपसासे वृद्ध हैं, वही द्विजोंमें पूजनीय होते हैं। ययाति बोले, विद्या और तपस्यादि कर्म्मके अहङ्कारको पण्डितोंने नरक उपजानेवाला पाप कहा है, वह अहङ्कार स्वतन्त्र जनमें ही वर्त्तता है, साधुलोग उन स्वतन्त्र असाधुओंके समान अहंकारके वशमें नहीं होते, पूर्व्वकालके सज्जन भी ऐसेथे; मैं वैसा न करकेही स्वर्गसे च्युत हुआ हूं। मुझमें पुण्यरूपी प्रचुर धन सञ्चित था, वह मेरे अहंकारही से नष्ट हुआ है, इस समय विशेष चेष्टा करकेभी उसको फिर पा नहीं सकता। जो मेरी ऐसी गति देखकर आत्महित साधनेमें निविष्ट होंगे, वही विज्ञ और धीर हैं। जो जन महा धनयुक्त हो करके अच्छे यज्ञोंसे यजन क्रिया करते हैं, वे सर्व्व विद्याओंके जानकार हो करके विनय-बुद्धियुक्त होते हैं, और सम्पूर्ण वेदोंको पाठ करके तपस्याकर देह छोड़ते हैं, वह पुरुषही मोहरहित होकर स्वर्गगामी होते हैं। पर महत् पुण्य सञ्चय करके उससे कभी सन्तुष्ट चित्त न होना और वेद पढ़केभी अहंकृत न होना। इस जीवलोकमें कोई धर्म्ममें आसक्त और कोई अधर्म्ममें आसक्त होते हैं, क्योंकि सभी दैवाधीन हैं, इससे उनकी चेष्टा और योग्यता सभी विनष्ट होजाती है। अतएव धीर पुरुष निज बुद्धिसे अदृष्टका बल समझकर सुख वा दुःख आनेपर उनसे क्रोध द्वेषसे आत्म विद्ध नहीं करते। जीव मात्रही सुख वा दुःख आत्मशक्तिके अनुसार नहीं भोगते, दैवाधीन भोगते हैं, अतएव दैवको औरोंसे बली जानकर सुख दुःखमें प्रसन्न वा दुःखी होना किसी प्रकार उचित नहीं है। धीर जन दुःख भोगनेके कालमें दुःखी वा सुख भोगनेके कालमें प्रसन्न नहीं होते, सदा एकभावसे रहते हैं; वह यह जानकर, कि भाग्यही सबकी जड़ है,किसी प्रकारसेही सन्तोष असन्तोषमें लिप्त नहीं होते। हे अष्टक! यह समझकर कि विधाता जो विधान करते हैं, वह

अवश्यही होगा, मैं कभी भयसे मोहित नहीं हुआ और मेरा मानसिक कोई सन्तापभी विद्यमान नहीं है; देखो, सर्प, विच्छू, मछली आदि जलके और स्थलके कीट, पत्थर और तृण काष्ठादि जितने स्वेदज, अण्डज और उद्भिज्ज पदार्थ हैं सभी नियतिके अन्तमें निज निज प्रकृतिमें लीन होते हैं। हे अष्टक! सुख दुःख अनित्य हैं, अतएव क्यों उनसे तापित हूंगा? यह विचार कर, कि क्या करूं क्या करनेसे सन्ताप जाता रहेगा, अप्रमत्त होकर सन्तापका विसर्जन कर दिया है।

श्री वैशम्पायनजी बोले, कि वहां ठहरे हुए सर्व्वगुणयुक्त मातामह भूपाल ययातिके ऐसा कहने पर अष्टकने फिर स्वर्गवासकी कथा पूछी, कि हे पृथ्वीपते! तुम केवल नारद आदिके समान धर्मकी कथा कह रहे हो, अतएव तुमने जितने कालमें जिस प्रकारसे जिन जिन प्रधान लोकोंको भोग किया है, वह सब मुझसे कहो। ययाति बोले, कि मैं इसलोकमें सार्व्वभौम राजा था, आगे महत् लोकको जय-कर वहां सहस्र वर्ष वास किया, पश्चात परम-लोकको प्राप्त कर सहस्र द्वारयुक्त सौ योजन फैली हुई सुन्दर इन्द्रपुरीमें सहस्र वर्ष वास किया था। अनन्तर उससेभी श्रेष्ठ दुष्प्राप्य दिव्य अजर लोकपति प्रजापतिलोकको प्राप्त-कर वहांभी सहस्रवर्ष वास किया, आगे उस-सेभी परम लोकको पाकर देव-देवके आलयमें विहार कर, देवोंसे पूजे जाय तथा देवोंके तुल्य प्रभावी और तुल्य द्युतिमान होकर मन-माने लोकोंमें वास किया, अन्तमें कामरूपी होकर दस लच्च वर्ष नन्दनवनमें वास कर सुगन्धी फूल लगे हुए मनोहर वृच्चदलको देखता हुआ अप्सराओंके साथ विहार करने लगा, इस प्रकार स्वर्गीय सुखमें आसक्त रहनेमें बहुत काल व्यतीत हुआ। अनन्तर उग्ररूपी देव तने मेरे पास आकर "च्युत हो" यह बात उच्च प्लुतस्वरसे तीन वार कही; हे राज-सिंह! मैं इतनाही मात्र जानता हूं, आगे उसीच्चण मैं अल्प पुन्यवान् होकर नन्दन वनसे च्युत हुआ। हे नरेन्द्र! तब शोक करनेवाले सुरोंका यह खेद वाक्य आकाश-मार्गमें सुना, कि हाय! कैसे दुःखकी बात है! वह देखो, पु[illegible]कारी, पुण्य-कीर्त्तिमान् ययाति च्चीण-पु[illegible] होकर गिर रहे हैं! आगे मैं गिरते हुएही उनसे पूछा, कि मैं क्योंकर साधु समाजमें गिर सकता हूं? अनन्तर उन्होंने मुझको तुम्हारी यह यज्ञ-भूमि दिखायी; इस यज्ञ-भूमिमें घृएसे सूचित उपदेश-करने-वालेकी भांति हविको गन्ध सूंघकर प्रसन्न-चित्त होकर इस यज्ञभूमिमें शीघ्र चला आया।

सम्भवपर्व्वमें ययाति उपाख्यानमें
नवासी अध्याय समाप्त।

अष्टकजी बोले, कि हे सत्यशील! तुम कामरूपी होकर दश लच्च वर्ष नन्दनवनमें बसे थे, अनन्तर किस हेतु उसको छोड़कर भूतलमें उतरे ययाति बोले, कि जिस प्रकार इस लोकमें किसीके स्वल्पवित्त होने पर उसको ज्ञाति, मित्र और स्वजनगण त्याग देते हैं, उस प्रकार वहां मनुष्यों के च्चीण-पुण्य होनेपर ऐश्वर्य्यवान देवगण उनको उसीच्चण त्याग देते हैं। अष्टकने कहा, कि उस देवलोकमें वहांके लोग क्योंकर च्चीण-पुण्य-होते हैं? इस विष-यमें मुझे बड़ी शङ्का हो रही है। फिर यह-भी मुझसे कहो, कि किस पु[illegible]के करनेसे कौनसे प्रजापति-धाममें जाया जाता है, क्योंकि मेरी समझमें तुम केवल हो। ययाति बोले, कि हे नरदेव! जो लोग अपनी उन्नति निज मुखसे प्रगट करते हैं, वे च्चीण-पुण्य होकर देवलोकसे इस भूतलरूपी नरकमें गिरकर भोगकी अभिलाषासे थक जाते हैं, और पच्ची सियार आदिके भोजनके निमित्त कष्टदायी

नाना प्रकारके शरीर प्राप्त करते हैं। हे नरेन्द्र! इस कारणसे दोषयुक्त और लोकोंमें निन्दा किये जाते हुए, कर्म त्याग देना। हे पृथ्वीनाथ! तुमसे सब कुछ कह चुका; कहो, अब फिर क्या कहना होगा।

अष्टकजी बोले, कि जब गिद्ध शितिकण्ठ आदि पक्षी और पतिङ्गे मनुष्यों को खा लेते हैं, तब किस प्रकारसे जीव वर्त्तमान रहता है? फिर क्योंकर प्रगट होता है? और रौरव वैतरणी आदि जो नरक प्रसिद्ध हैं, उनके अतिरिक्त भौम नरक क्या है? यह सब सुना चाहता हूं। ययाति बोले, कि सम्पूर्ण जीव अनुष्ठान किये हुए कर्म्मके अनुसार देह छोड़नेके पीछे माता की कोखमें जन्म लेकर उस स्थानमें सम्पूर्ण अङ्ग प्रत्यङ्ग युक्त देहकी उत्पत्ति होनेपर प्रसव किये जाकर प्रकाश रूपसे पृथ्वीमें चलते फिरते रहते हैं, वही जीवके लिये भौम नरक कहा जाता है, क्योंकि इस प्रकारसे वहां गिरनेसे अपनी अवस्थाको हानि नहीं देखते, अज्ञानवश केवल विषयके भोगहीमें वर्षोंको व्यतीत किया करते हैं। कोई जीव निजके किये हुए कर्म्मके अनुसार कुछकाल स्वर्ग भोग कर स्वर्गसे गिरनेके कालमें साठ सहस्र वा अस्सी सहस्र वर्षभी आकाशमें रहकर कष्ट भोगते हैं, गिरनेवाले उन जीवोंको बड़े बड़े दांतवाले भयङ्कर हस्ती, भैंसे और राक्षस लोग हिंसा करते रहते हैं! अष्टक बोले, कि जो लोग पापके हेतु स्वर्गसे च्युत होते हैं, बड़े काटनेवाले भयावने भौम राक्षसोंके उनकी हिंसा करने पर वे क्योंकर बने रहते हैं? क्योंकर इन्द्रियादि युक्त होते हैं? अथवा क्योंकर गर्भमें जाकर जन्म लेते हैं? ययाति बोले, कि सूक्ष्म भूतसे आवृत जीव जलयुक्त शरीर धरकर वीर्य्यका स्वरूप प्राप्त करता है; पुरुषसे गिराये जाकर वह वीर्य्य स्त्रीके शोणितसे मिलने पर फल फलके समान होकर "रज" यह संज्ञा पाता है। रज स्त्रीके पेटमें गर्भके स्वरूपमें उत्पन्न होता है। जीवगण पहिले जल, वायु, आकाश और तेज इन पांच महाभूतोंमें प्रविष्ट होते हैं, आगे वनस्पति और औशधिमें व्याप्त होते हैं, अनन्तर शुक्र और शोणितके स्वरूपको पाकर गर्भोत्पत्ति करते हैं। क्रमसे दोपाये चारपाये आदिके शरीर प्राप्त करते हैं। अष्टक बोले, कि जब जीव नरयोनिको प्राप्त करता है, क्या तब अपने सूक्ष्म शरीरहीको लेकर माता की कोखमें घुसता है? अथवा कोई अन्य भौतिक शरीर धरकर घुसता है? यह मुझसे कहिये मैं शङ्कायुक्त होकर पूछता हूं, और जीवोंके क्योंकर शरीर भेद आदि होते हैं? अथवा क्योंकर अपने आंख, कान आदि सम्पूर्ण इन्द्रिय, रूप और शब्दादि विषयोंका ज्ञान लाभ करते हैं? हे पिता! हम तुमको ऋत्विज समझ कर पूछ रहे हैं, तुम यह सब सच्ची रीतिसे कहो। ययाति बोले, कि पांच प्राण, मन, बुद्धि और दश इन्द्रियुक्त अपञ्चीकृत भूतसे बने बनाये सूक्ष्म शरीरमें वीर्य्यके स्वरूपको धारण कर स्त्रियोंको ऋतुमें पुष्परससे अनुसंबद्ध गर्भाश्रित वह जीव तन्मात्रका अधिकार युक्त किसी विशेष वायुसे उत्कृष्टता और क्रमसे वृद्धिको प्राप्त होता है; आगे जब सम्पूर्ण आकार पाकर संज्ञालाभ करके मनुष्य के आकारमें जन्म लेता है, तब कानसे शब्द जान सकता है, चक्षुसे रूप देखता है, नाकसे गन्ध सूंघता है, जिह्वासे स्वाद लेता है, त्वचासे अनुभव कर सकता है और मनसे पदार्थोंको जान सकता है। हे अष्टक! जीवात्माका सूक्ष्मरूपी वह लिङ्ग शरीर इस प्रकार स्थूल शरीरमें आ पहुंचता है।

अष्टक बोले, कि जो पुरुष मर जाता है, लोग उसको जलाते वा गाड़ते हैं, अथवा अन्य किसी प्रकार से उसके शरीरको नष्टकर डालते

हैं, सो स्थूल शरीरके साथ लिङ्ग शरीर भी नष्ट होजाता है, अतएव वह लिङ्ग शरीर नाशकी प्राप्तकर क्योंकर मांस पिण्डरूपी स्थूलदेहको चेतनायुक्त करता है? ययाति बोले, कि हे राजसिंह! जीवात्मा मृत्युके कालमें पवनके आगे चलनेवाले पञ्च प्राणादि लिङ्ग शरीरको धारण करके निःश्वसकी भांति स्थूलदेहको छोड़कर सुकृत और दुष्कृतको सामने लिये एक प्रकारका विशेष शब्द करता हुआ अन्य योनिमें जन्म लेता है, उनमें पुण्यात्मा पुरुष पुण्ययोनिमें जन्म लेता है, और पापकारी पुरुष पाप योनिमें कीट पतङ्गादिके स्वरूपमें उत्पन्न होते हैं। हे महानुभाव, राजसिंह! छः पाये, चारपाये, दो पाये आदि जीवगण इस प्रकारसे गर्भमें आभिभूत होते हैं, मुझे और कुछ कहनेको नहीं है, मैं सब कुछ कथा तुमसे कह चुका, कहो और क्या पूछोगे। अष्टक बोले, कि हे तात! तपस्या और विद्या इन दोनोंमें किससे श्रेष्ठलोककी प्राप्ति होती है, और जिस क्रमसे शुभ लोकमें जाया जाता है, वह सब सत्यरूपसे कहो। ययाति बोले, कि साधुलोग सदा कहा करते हैं, कि तपस्या, दान, शम, दम, लज्जा, ऋजुता और सर्व्व जीवों पर कृपा, यह सात मनुष्योंके स्वर्गलोकमें जानेके प्रधान द्वार हैं; पर साधुलोग सदा यह कहा करते हैं, कि जो सब पुरुष तमयुक्त होकर अहङ्कार प्रकाश करते हैं, वे मङ्गल पानेके योग्य नहीं हो सकते हैं। जो जन पढ़ करके ऐसा अभिमानी होकर, कि मैंही पण्डित हूं, विद्यासे औरोंके यशको लोप करता है, उसको स्वर्ग प्राप्त नहीं होता, यहांतक कि उसका वह पाठ कुछभी फलदायी नहीं होता। अग्निहोत्र, मौनव्रत, अध्ययन यज्ञ चार प्रकारके कर्म्म शुभ करनेवाले तो हैं, पर अहङ्कारके साथ यह सब कर्म्म किये जानेपर अनुचित रूपसे आचरित होकर भय देने वाले होते हैं। मनुष्य अति सम्मानके पात्र होनेसेभी हर्ष युक्त न होवे और अपमानित होनेसेभी खेदयुक्त न बने, क्योंकि इस लोकमें साधुलोगही साधुलोगोंकी पूजा किया करते हैं, असाधुलोग कभी साधुओंके समान आचरण नहीं करते। पण्डितोंने ऐसा कहा है, कि इस प्रकार अहङ्कार दिखानेसे दान दिया, यज्ञ किया, पाठ किया, व्रत किया, उसकी सुगति नहीं होती, अतएव सर्व्वप्रकारसे अहङ्कारको छोड़नाही उचित है। पर जो विद्वानलोग चिन्तापथके अदृश्य और अपने समान साधुओंके मङ्गलकारी सनातन ब्रह्मको संयत चित्त होकर अपना आश्रय करके जानते हैं, वे समाधिसे उस ब्रह्मके साथ एकत्रभाव प्राप्तकर अच्छी शान्ति अर्थात् मुक्तिलाभ करते हैं।

सम्भवपर्व्वके ययाति उपाख्यानमें।
९०वें अध्याय समाप्त।

अष्टकजी बोले, कि वैदिकगण इस विषयमें भांति भांतिकी बातें कहा करते हैं, कि गृही, भिक्षु, ब्रह्मचारी और वानप्रस्थ, यह सुपथमें रहकर कैसा आचरण करनेसे धर्म्मार्ज्जन करनेको समर्थ होते हैं। ययाति बोले कि ब्रह्मचारी गुरुके घरमें वासकर गुरुके बुलाने पर पाठ लें; गुरुके कार्य्यमें सदा उत्साही बने रहें, बड़े सबेरे गुरुके उठनेके पहिले उठें, रातको गुरुके सोनेके पीछे सोवें और, धीर जितेन्द्रिय, धीरजयुक्त बकवादवर्ज्जित पठनशील होवें, तो उनका ब्रह्मचर्य्य सिद्ध होता है। प्राचीन उपनिषदों में कहा है, कि गृहीजन धर्म्मानुसार धनार्ज्जन करके नित्य नैमित्तिकादि अतिथियोंको भोजन करावे और किसीके विना दान करे न ले। वनवासीजन निज शक्तिसे लाभ किये हुए फल मूल पर जीते हुए, पापकार्य्यसे निवृत्त, दानशील, नियमित भक्षक सदा चेष्टित और परायी हिंसा आदिसे रहित होनेसे मुनिके

स्वरूपमें अच्छी सिद्धि प्राप्त करते हैं। जो नाना गुणयुक्त, नित्य जितेन्द्रिय और थोड़े वस्त्र पहिननेवाले होते हैं और शिल्पसे जीविका नहीं करते हैं। गृहस्थके घरके बिना किसी और स्थानमें सोते हैं, किसी विषय से मिलते मिसते नहीं हैं और स्वल्प चलते हैं, पर तिसपरभी नाना देशोंमें घूमते हैं वही भिक्षु करके कहे जाते हैं। जिस समय सब विषय तुच्छ हो जाते हैं और सुखदेनेवाली वस्तु मनमानो छोड दो जा सकती हैं, विद्वान्‌जन उस समयहीमें संयत होकार ब्रह्मनिष्ठाके निमित्त वनमें जानेकी चेष्टा करें; वानप्रस्थजन निज शरीर और सम्पूर्ण इन्द्रियोंको वनमें छोड़ें, तो ऊपरके पितृ पिता महादि दश पुरुषोंको, नीचेकी पुत्र पौत्रादि दद पीढ़ियोंको तथा निजको परब्रह्ममें लीन करते हैं।

अष्टकजी बोले, कि हम यह सुना चाहते हैं, कि मुनि कितने प्रकारके होते हैं और मौनव्रतभी कितने प्रकारके होते हैं। ययाति बोले, कि हे जनाधिप! वनमें बसनेसे सम्पूर्ण ग्रामकी वस्तु जिनके समीप रहती हैं, और ग्राममें टिकने परभी सम्पूर्ण वनके पदार्थ जिसके सामने आते हैं, उनका नाम मुनि है। अष्टक बोले, कि वनमें बसनेसे ग्रामकी वस्तु और ग्राममें बसनेसे वनकी वस्तु क्योंकर सामने आसकती हैं? ययाति बोले, कि मुनिके वनमें बसनेसे उन को ग्रामकी वस्तु इकट्ठी करनी नहीं पड़ती, उनके योगबलसे स्वयं सम्पूर्ण पदार्थ सामने आजाते हैं, वह विवेकसे सन्यासी, गृहादि वर्जित और परमहंस होते हैं और विद्याके व्यपदेशरहित होते हैं एवम् कोपीन तथा उसके ढंपनेके योग्य वस्त्रमात्रको लेते हैं; और उतनाही भोजन करते हैं, कि जिससे केवल प्राण धारण हो सके, उनके ग्राममें बसनेसेभी वनके व्यवहार सब उनके वशमें हो जाते हैं; जो मुनि सम्पूर्ण कर्म्म और कामना त्याग कर जितेन्द्रिय होकर मौनव्रत आश्रय किये रहते हैं, वह सिद्धिको प्राप्त करते हैं; जो नित्य शुद्धचित्त और आकांक्षा-वर्जित होकर हिंसायुक्त धर्म्मको त्याग देते हैं, विशुद्ध भोजन करते हैं और जिन्होंने हिंसा करनेवाले नखोंको काट डाला है, ऐसे मुनिको कौनसा जन न पूजेगा? जो क्षमाशील और तपस्यासे दुबले पतले और जिनका मांस, हड्डी और रक्त पतला हो गया है वह इस लोक और परलोकमें जयको प्राप्त करते हैं; जब मौनकी भली भांति आश्रय किये हुए मुनि अद्वैत भावके अवलम्बनसे द्वन्द्व वर्जित होते हैं, तब इस लोक और परलोकमें जयको प्राप्त होते हैं; जिस प्रकारसे गौ आदि पशु, हाथ पांव आदिकी चेष्टासे भोजनको न बटोर कर केवल मुखसे आहार निर्व्वाह करते हैं, उसही प्रकार जब मुनि प्रत्यागात्मामें एकाग्र होकर बिन मांगे पहुंची हुई भोजनकी सामग्रीको प्राण धरनेहीके निमित्त मुखसे उठाते हैं, हाथ पांवसे कोई चेष्टा नहो करते, ऐसी अवस्था होनेसे उनके सामने सम्पूर्ण लोक अमृतके स्वरूप होते हैं।

सम्भवपर्व्वके ययाति उपाख्यानमें एकानब्बे अध्याय समाप्त।

अष्टकजी बोले, कि सूर्य्य और चन्द्रके समान दौड़नेवाले यति और वानप्रस्थ इन दोनोंमें कौन पहिले देवत्व को सकते हैं? ययाति बोले, कि दोनोंमेंसे यतिजन संयत रह कर ब्रह्मचारी गृहस्थ जनोंसे और पूरे ग्राममें वस करकेभी पहिले देवके स्वरूपको प्राप्त होते हैं, पर उन यति-जनसे क्रोध द्वेषादि देहके धर्म्मोंके हेतु निजको अनुष्ठानकी हुई तपस्याका विपरीत व्यवहार रूपी पाप किया जावे, तो बहुत कालमें होने योग्य तप अनुष्ठान करनेके कालप्राप्त न होनेसेभी वह उस कारण यदि

अनुतापित होवे, तो फिर दूसरी तपस्याका अनुष्ठान करें, ऐसा करनेसे वह उस पापसे मुक्त होकर सफल मनोरथ हो सकते हैं, और जिस ज्ञानी पुरुषने अविनाशी ब्रह्मको धारण (दर्शन लाभ) किया है, वह सदा इच्छानुसार पापाचरण करनेसेभी अति सुखरूपी मुक्तिको लाभ करता है। हे राजन्! मोक्षकी खोज न करके अनित्य स्वर्ग भोगनेके लिये जिस धर्मका अनुष्ठान किया जाता है, उस धर्मकी पण्डितोंने अजितेन्द्रिय जनके धनके सदृश कष्टदायी और असत्य करके कहा है; पर जिस निष्काम धर्म्मसे मोक्षफलकी प्राप्ति होती है, उसीको उचित पथ और समाधि करके कहा है एवम् उसी पर चलना योग्य है।

अष्टक बोले, कि हे राजन्! तुमको मालाधारी, सुतेजस्वी और परम सुन्दर युवा पुरुष देखता हूं, आज तुम कहांसे आये हो! और किस जनके दूतरूपी होकर किस ओर भेजेगये हो; अथवा पृथ्वीहीमें तुम्हारा जाने योग्य स्थान है क्या? ययाति बोले, कि मैं क्षीणपुण्य होनेसे स्वर्गसे च्युत होकर इस भौम नरकमें गिरनेके लिये पृथ्वीमण्डलमें प्रवेश कर रहा हूं; तुम्हारे साथ वाक्यालाप करके गिरूंगा, इस लिये लोक-पाललोग मुझको शीघ्र प्रस्तुत होनेको कहते हैं। हे नरेन्द्र! मेरे भूतलमें गिरनेके पहिले इन्द्रसे प्रार्थना करने पर उन्होंने मुझको वर दिया है, कि तुम गुणवन्त और संगत साधुमण्डलीके समीप गिरोगे।

अष्टक बोले, कि हे पृथ्वीनाथ! मुझको जान पड़ता है, कि तुम धर्म्मके फलरूपी सब सिद्ध स्थानोंको जानते हो, अतएव पूछता हूं, कि स्वर्गलोक अथवा नक्षत्र लोकादिमें मेरे पुण्यसे उपार्ज्जित कोई भोगनेका स्थान है वा नहीं? यदि है, तो गिरनेपरभी न गिरोगे। ययाति बोले, कि हे नरेन्द्रसिंह! सुनो, इस भूमण्डलमें गौ, घोड़े और जितने वनके और पार्व्वतीय पशु हैं, देवलोकमें उतनेही तुम्हारे पुण्यसे उपार्ज्जन किये हुए स्थान हैं। अष्टक बोले, कि हे राजेन्द्र! यदि मेरुकी पीठ पर वा नक्षत्रलोकमें अथवा स्वर्गधाममें मेरे पुण्यसे उपार्ज्जन किये हुए स्थान हों, तो वह सब तुमको दे देता हूं मत गिरो, मोहसे वर्जित होकर तुम्हो उनको अधिकार में लाओ। ययाति बोले, कि हे राजश्रेष्ठ! मेरे ऐसे वेदज्ञ और वेदाचारी जन कभी प्रतिग्रह नहीं करते। हे नरेन्द्र! ब्राह्मणको सदा दान देता होता है मैंने पहिले वैसा दान दिया है; क्षत्रियादि पुरुष और दिग्विजय करनेवाले वीरको पतो यह मांगने को नाईं दीनताको स्वीकार करके कभी न जीयें; अहो! मैं सुकर्म्म करनेका अभिलाषी होकर, जो कार्य्य पहिले कभी नहीं किया था, क्या वही करूंगा?

अनन्तर वहां टिके हुए प्रतर्द्दन नामक एक राजाने कहा, कि हे स्पृहणीय-रूप-धारिन्! मैं प्रतर्द्दन हूं, तुमको पूछता हूं, कि यदि नक्षत्रलोक वा देवलोकमें मेरा पुण्यसे उपार्ज्जन किया हुआ स्थान हो, तो कहो; मुझको समझ पड़ता है, कि धर्म्मानुष्ठानसे उपार्ज्जन किए हुए सम्पूर्ण सिद्ध स्थानोंसे तुम ज्ञात हो। ययाति बोले, कि हे नरेन्द्र! घृतकुल्य परम सुखदेनेवाले इतने अधिक स्थान तुम्हारी प्रतीक्षामें हैं, कि इन स्थानमें सात सात दिन वसनेसे भी वे चुकते नहीं। प्रतर्द्दन बोले, कि यदि नक्षत्रलोक वा स्वर्गमें मेरे पुण्यसे उपार्ज्जन किये हुए स्थान हों, तो वह सब तुमको दे देताहूं, वह सब तुम्हारे ही होवें, तुम और न गिरो, मोहवर्ज्जित होकर शीघ्र वहां चढ़ जाओ। ययाति बोले कि पृथ्वीनाथ! तुल्य तेजयुक्त भूपाल होकरके कोई दूसरे राजासे योगक्षेम करनेवाले सुकृतको प्रार्थना नहीं करते; ज्ञानी राजा दैवकी

आत्मासे विपदग्रस्त होनेपरभी कभी निष्ठुर व्यवहार नहीं करते, अतएव मैं क्योंकर यह स्वीकार करूंगा? राजाकी धर्म्मकी ओर दृष्टि रखकर धर्म्मयुक्त और यशदायी कार्य्य करना चाहिये। पर तुम जो कहते हो,वह नीच कर्म्म है, अतएव मेरे ऐसे धर्म्मज्ञ जन जान बूझकर यह क्यों मानेंगे? दूसरे राजाओंने जो प्रतिग्रहका कार्य्य कभी नहीं किया है,मैं सुकर्म्म करने का अभिलाषी होकर वह क्योंकर करूंगा? नृपति ययाति ऐसा कह रहे थे, कि ऐसे समयमें वसुमान नामक एक नृपोत्तम उनसे बोले।

सम्भवपर्व्वके ययाति उपाख्यानमें बानब्बे अध्याय समाप्त।

वसुमानजो बोले, कि हे नरेन्द्र! मैं औषदश्वि वसुमान, तुमसे पूछता हूं, कि यदि नक्षत्रमण्डल वा स्वर्गधाममें मेरे पुण्यसे उपार्ज्जित प्रख्यात स्थान हो, तो कहो; हे महात्मन्! मुझको जान पड़ता है, कि तुम धर्म्मसे लाभ करने योग्य सम्पूर्ण पुण्य लोकोंसे ज्ञात हो। ययाति बोले, कि सूर्य्यदेव आकाशमण्डल, पृथ्वी और दिशाओंमें जितना स्थान तापयुक्त करते हैं, देवलोकमें उतना अनन्त पुण्यलोक तुम्हारी प्रतीक्षामें हैं। वसुमान बोले, कि हे राजन्! वह सब पुण्यलोक तुमको दान देता हूं, वह तुम्हारेही होवें, तुम मत गिरो, हे धीमान्! यदि तुमको प्रतिग्रह जान पड़े, तो तुम वह सब लोक तिनका देकर मोल ले लो। ययाति बोले, कि स्मरण होता है, कि मैंने शिशुके सदृश भयानक कालचक्रसे भय खाकर कभी व्यर्थ मोल बिक्री नहीं की है, और राजाओंने जो कभी नहीं की, वह मैं सुकर्म्म करनेका अभिलाषी होकर क्योंकर करूंगा? वसुमान बोले, कि हे राजन्! यदि तुमको मोल लेना अभीष्ट न हो तौभी मेरे दिये हुए वह सब पुण्यलोक ले लो, हे नरेन्द्र! मैं जिन लोकोंमें न जाऊंगा वह तुम्हारे होवें।

अनन्तर शिवि नामक नृपोत्तमने कहा, कि मैं उशीनरका पुत्र शिवि हूं, तुमसे पूछता हूं, कि नक्षत्रलोक वा देवलोकमें यदि मेरे पुण्यार्ज्जित स्थान होवें, तो कहो; हे तात! मुझको जान पड़ता है, कि धर्म्मार्ज्जित उन सब पुण्यलोकोंसे तुम ज्ञात हो। ययाति बोले, कि हे नरेन्द्र! तुमने कभी वाक्यसे वा मनसे साधु याचक जनका अनादर नहीं किया है, इस कारण देवलोकमें बिजलीके समान प्रख्यात अनन्त महत् स्थान तुम्हारे लिये हैं। शिवि बोले, कि हे राजन्! तुमको मोल लेना अभीष्ट न हो, तो वह सब पुण्यलोक दान कर देता हूं तुम ले लो, मैं उन्हें देकर फिर लौटा न लूंगा, उन स्थानोंमें जानेसे पण्डित लोग शोक नहीं पाते। ययाति बोले, कि हे नरदेव! तुम इन्द्र समान प्रभावी हो और तुम्हारे सब पुण्यलोकभी अनन्त हैं, पर हे शिवे! अन्यके दिये हुए पुण्यलोकमें मैं क्रीड़ा न करूंगा, अतएव तुम्हारा यह दान मुझे स्वीकृत नहीं है।

अष्टक बोले, कि हे राजन्! हम सबोंसे हरेकने निज निज पुण्यार्ज्जित लोक अलग अलग तुमको दान करदिये, उनका यदि लेना सम्मत तुमको न हो, तो हम सब एकत्र होकर अपने सम्पूर्ण पुण्यलोक तुमको देकर भौम-नरकमें जाते हैं। ययाति बोले,कि हे सत्यप्रिय साधुओ! मैंने जो पहिले कभी नहीं किया है, वह स्वीकार नहीं करूंगा, मैं जिस विषयके योग्य हूं, वह पूरा करने में तुम यत्नवान हुओ। अष्टक बोले, कि उस आकाशमण्डलमें सुवर्णमय पांच रथ देखता हूं, उन पर चढ़ कर मनुष्यगण स्वर्गधामको जा सक्ते हैं; यह कहो, कि वे किसके हैं। ययाति बोले, कि वह जो अग्निशिखाके सदृश प्रज्वलित उच्च, पांच रथ आकाश-

मण्डलमें प्रगट हो रहे हैं, वे तुमलोगोंको बैठाकर देवताओंके यहां ले जायंगे। अष्टक बोले, कि हे राजन्! तुम रथ पर आरूढ़ होओ और आकाशपथको पधारो, जब काल उपस्थित होगा, तब हमभी तुम्हारे पीछे चलेंगे। ययाति बोले, कि इसीक्षण हम सभी निष्पाप और स्वर्गजयकारी भये हैं, अतएव हमको एकत्र होकर चलना पड़ेगा, वह देखो, देवलोकका पथ दीख पड़ता है।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर वे सब नरेश धर्म्मके प्रभावसे आकाशमण्डल आक्रमण करके रथों पर आरूढ़ होकर पधारे। अष्टकजी बोले, कि मैंने सोचा था, कि महात्मा देवराज सर्व्वप्रकारसे मेरे मित्र हैं, अतएव मैंही पहिले अकेला जाऊंगा, पर यह उशीनरके पुत्र शिवि अकेले क्यों हम सबोंको छोड़कर चले? ययाति बोले, कि इस उशीनरके पुत्र शिविने ब्रह्मलोक पथको पानेके निमित्त सर्व्वस्व दान कर दिया था, सो यह तुमसेभी श्रेष्ठ हुए हैं। हे राजन्! दान, तपस्या, सत्य, धर्म्म, लज्जा, श्री, क्षमा, अकुटिलता और पालनेकी इच्छा यह सब गुण उपमा-रहित राजा शिविके इतने हैं, कि बुद्धिसे उनका नाम नहीं हो सकता; शिवि इतने गुणशाली और लज्जाके भारसे नम्र होनेहीसे उनका रथ हमको छोड़ चला।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर अष्टकजीने कौतूहलयुक्त होकर इन्द्र सदृश मातामहसे फिर पूछा, कि हे नृपते! मैं पूछता हूं सच कहो, कि तुम कहांसे आये हो? किसकी सन्तान और स्वयं कौन हो? तुमने जो कार्य्य किया है, वह जग मण्डलमें तुम्हारे बिना ब्राह्मण वा क्षत्रिय कोई नहीं कर सकता है। ययाति बोले, कि मैं नहुषका पुत्र और पुरुका पिता हूं, मेरा नाम ययाति है; मैं इस धरतीमण्डलमें सार्व्वभौम राजा था; तुम मेरे परम आत्मजन हो; तुमसे स्पष्ट कहता हूं, कि मैं तुम्हारा मातामह हूं। मैंने सम्पूर्ण भूमण्डलको जीतकर ब्राह्मणोंको वस्त्र दान करके पवित्र और सुन्दर सौ घोड़े देवोंके नामसे उत्सर्ग कर दिये थे; जो ऐसा करते हैं, देवगण उन पुण्यवान जनोंकी उपासना करते हैं। वाहन, गौ, सुवर्ण, तथा दूसरे और उत्कृष्ट धनोंसे भरी पूरी यह पृथ्वी और सौ अर्ब्बुद गौ ब्राह्मणोंको दान कर दी थी, और मेरी कथित बात कभी निष्फल नहीं हुई; मेरे सत्यसे आकाशमण्डल तथा धरती बनी है और मर्त्यलोकमें अग्नि जल रहा है, इस हेतु साधुलोग सत्यहीको पूजा करते हैं। हे अष्टक! तुमसे, प्रतर्द्दनसे और औशदश्वि से जो कहता हूं, वह सच है। यह मुझे निश्चय समझ है, कि मुनिगण और देवगण एक सत्यनिष्ठा हीसे पूज्यतम होते हैं। जो जन द्वेषरहित होकर हमारे इस स्वर्ग प्राप्तिका वृत्तान्त आद्योपान्त सम्पूर्ण ब्राह्मणोंको सुनावेगा, वह हमारे पुण्यार्ज्जित स्थानको लाभ करेगा। वैशम्पायनजी बोले, कि, अति महात्मा उदारकर्म्मा राजा ययाति नातियोंसे त्राण प्राप्तकर कीर्त्तिसे पृथ्वी प्राप्त करके मित्रोंके साथ स्वर्गको आरूढ़ हुए।

सम्भवपर्व्वके ययाति उपाख्यानमें
तिरानब्बे अध्याय समाप्त।

जनमेजय बोले, कि भगवन्! पुरुवंशी राजाओंमें जिनको जैसा विक्रम और वीर्य्य था और जो जैसे थे, वह सुना चाहता हूं। इस वंशमें कोई राजा कभी कुचरित्र, वीर्य्यवर्ज्जित अथवा प्रजारहित नहीं हुआ। हे तपोधन! प्रख्यात चरित्र और विज्ञानयुक्त उन राजाओंके चरित्र विस्तृत रूपसे सुननेकी इच्छा हो रही है।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे राजन्! पुरुवंशका वृत्तान्त जो हमसे पूछा, उन पुरुके वंशधर वीर देवराजके समान तेजयुक्त, अगणित वित्तशाली, विक्रमी और सर्व्व लक्षणोंसे

पूजा योग्य राजोंके वृत्तान्त आपसे कहता हूं, सुनिये। पुरुकी पौष्टि नाम्नी महिषीसे प्रवीर, ईश्वर और रौद्राश्व इन तीन महारथी पुत्रोंका जन्म हुआ था, उनमें प्रवीर वंशधर हुए। प्रवीरके वीर्य्य और शूरसेनीके गर्भसे मनस्यु नामक पुत्रने जन्म लिया; प्रसन्ननेत्रयुक्त सर्व्वप्रभु मनस्युने चार समुद्रतक पृथ्वीका शासन किया था। मनस्युके वीर्य्य और शौवीरोके गर्भसे शक्त संहनन और वाग्मी यह तीन पुत्र उत्पन्न हुए; वे सभी शूर और महारथी भये थे। मनस्वी रौद्राश्वके वीर्य्य और मिश्रकेशो नाम्नी अप्सराके गर्भसे अन्वग भानु आदि दश पुत्रोंने जन्म लिया था; वे सभी सर्व्व शास्त्रोंमें निपुण, धर्म्मशील, बडे चापधारी, योगशील, शूर, प्रजायुक्त और सर्व्व शास्त्रज्ञ हुए। उनसे ऋचेयु, कक्षेयु, वीर्य्यवान कृकणेयु, स्थण्डिलेयु, वनेयु, महा यशोवन्त जलेयु, बलवन्त तेजेयु, इन्द्रके समान विक्रमी धर्म्मेयु और देवसदृश पराक्रमी दशवें सन्नतेयु, इन दश पुत्रोंने जन्म लिया था। देवोंमें देवराज जैसे विक्रमी, और विद्वान हैं, ऋचेयु, भूमण्डलमें अद्वितीय राजा होकर अनाधृष्टि नामसे प्रसिद्ध हुए। राजसूय और अश्वमेध यज्ञ करनेवाले परम धार्म्मिक प्रख्यात राजा मतिनारने अनाधृष्टिसे जन्म लिया, हे राजन्! मतिनारके औरससे तंसु, महान, अतिरथ और महा द्योतवान द्रुह्यु यह चार पुत्र उत्पन्न हुए, यह सब असीम विक्रमी थे। उनमें तंसु अति वीर्य्यवन्त और वंशधर थे; उन्होंने भूमण्डलको जीत कर प्रदीप्त यश उपार्ज्जन किया था! वीर्य्यवन्त तंसुने ईलिन नामक पुत्रको जन्म दिया; जयशील उन तंसुके पुत्रनेभी सम्पूर्ण धरतीतलको जोत लिया था। अनन्तर रथन्तरीके गर्भ और राजा ईलिनके वीर्य्यसे पञ्च-भूतोंके समान पांच पुत्र उत्पन्न हुए; उनके नाम दुष्मन्त, शूर, भीम, प्रवसु और वसु थे। हे जनमेजय! उनमेंसे श्रेष्ठ दुष्मन्त राजा हुए; दुष्मन्तसे शकुन्तलाके गर्भसे विद्वान भरतने जन्म लिया, उनसेही भरत-वंशका महान् यश फैल गया।

भूपाल भरतके तीन महिषियों से नौ पुत्रोंने जन्म लिया, वे राजाके योग्य पुत्र नहीं हुए थे यह कहके राजा उनपर असन्तुष्ट थे, यह देखकर पुत्रों की माताओंने क्रोधके वशमें होकर निज निज पुत्रोंको मार डाला; इससे नरश्रेष्ठ भरतके उन पुत्रोंकी उत्पत्ति व्यर्थ हुई। हे भारत! अनन्तर राजा भरतने महायज्ञका अनुष्ठान करके भरद्वाजसे भुमन्यु नाम पुत्र लाभ किया। हे भरतश्रेष्ठ! आगे पौरवनन्दन भरतने अपनेको पुत्रवान जानकर उस भुमन्यु नामक पुत्रको यौवराज्यपर अभिषिक्त किया। अनन्तर भुमन्युके वीर्य्य और पुष्करिणीके गर्भसे सुहोत्र, सुहोता, सुहवि, सुयजु, ऋचीक और दिविरथ इन सब पुत्रोंने जन्म लिया इनमेंसे सुहोत्र ज्येष्ठ पुत्र थे, सो उन्होंने राज्य पाया। वह राजसूय अश्वमेध आदि नाना यज्ञ करके हाथी और घोडासे भरी, नाना रत्नोंसे पूरी, समुद्रसे घिरी सम्पूर्ण पृथ्वी भोगने लगे। तब भूमण्डल हाथी घोड़े और रथोंसे पूरित और अगणित मनुष्योंसे विकल होकर अति भारसे पीड़ित होनेके कारण डूबने पर हुआ। राजा सुहोत्रके धर्म्मानुसार प्रजाशासन करनेसे धरतीमण्डल सैकड़ों सहस्रों स्थानोंमें देवालय और यज्ञके यूपोंसे चित्रित हुयाथा। हे भारत! पृथ्वीनाथ सुहोत्रसे स्त्री ऐक्ष्वाकीने अजमीढ़, सुमीढ़ और पुरुमीढ़ यहतीन पुत्र प्रसव किये; उनमेंसे अजमीढ़ ज्येष्ठ पुत्र थे, उनसेही वंश प्रतिष्ठित हुआ। हे भारत! अजमीढ़ने तीन राणियोंसे ६ पुत्र उत्पन्न किये; उनमें धूमिनीके गर्भसे ऋक्ष नीलीके गर्भसे दुष्मन्त तथा परमेष्ठी और केशिनीके गर्भसे जन्हु, व्रजन और रूपिन इन तीन पुत्रोंने जन्म लिया। दुष्मन्त और परमेष्ठीके वंशसे

यह सब पाञ्चाल राजा उत्पन्न हुए। अमिततेजा जन्हुके वंशसे कुशिकोंने जन्म लिया। जनाधिप ऋक्ष, व्रजन और रूपिणसे ज्येष्ठ थे; ऋक्षसे राजवंश करनेवाले सम्बरण नामक पुत्र उत्पन्न हुए। हे राजन्! हम सुन चुके हैं, कि जब ऋक्षपुत्र सम्बरणने धरतीको शासन किया था, तब बहुत प्रजा क्षय होने लगी; क्षुधा, मृत्यु, अनावृष्टि और व्याधि आदि नाना कारणोंसे प्रजा लोप होनेपर राज्य एकवारही नष्ट हो गया; शत्रु पक्षकी सेना भारत पक्षीय योद्धोंको मारने और घायल करने लगी; पाञ्चालके भूप विक्रम से भूमण्डलको जीतकर चतुरङ्गिणी सेनासे पृथ्वीको डोलाते हुए राजा सम्बरणके निकट आन पहुंचे; आगे युद्धस्थलमें दश अक्षौहिणी सेनासे राजा सम्बरणकी पराजय किया। तब वह बहुत भय खाकर स्त्री, पुत्र मन्त्री और मित्रोंके साथ भागकर सिन्धु नामक महानदके तटसे पर्व्वतके निकट तक फैली हुई एक फुलवाड़ीमें टिक रहे, भारतगण उस जानेके अयोग्य वनमें बहुकाल वसने लगे; धीरे धीरे उनके सौ वर्ष व्यतीत हुए।

अनन्तर एक समय भगवान् ऋषि वशिष्ठ उनके यहां आ पहुंचे, भारतलोगोंने उनको आगत देखकर यत्नके साथ नमस्कार करके अर्घ दिया। आगे उन बड़े तेजस्वी ऋषिके आसन पर बैठने पर राजाने स्वयं उनका सत्कार करके सम्पूर्ण वृत्तान्त कह सुनाकर उनसे प्रार्थना की, कि आप हमारे पुरोहित होवें, तो हम राज्यको फिर पानेका यत्नकर सकते हैं। वशिष्ठने भारतोंके निकट वह स्वीकार किया और सम्पूर्ण भूमण्डल की चोटी को नाईं श्रेष्ठ पौरव सम्बरणको क्षत्रियोंके आधिपत्यरूपी साम्राज्यपर अभिसिक्त किया। भूपाल सम्बरण भरतके पहिले वसे हुए सुन्दर नगरमें फिर अधिष्ठान करके सम्पूर्ण भूपालोंको करदाता बनाने लगे। अजमोढ़के पौत्र महाबली सम्बरण फिर पृथ्विको प्राप्तकर बहुत दक्षिणायुक्त अनेक यज्ञोंका अनुष्ठान करने लगे। अनन्तर सूर्य्यपुत्री तपतीने भूपति श्रेष्ठ सम्बरणसे कुरु नामक पुत्र प्रसव किया। हे राजन्! सम्पूर्ण प्रजाओंने कुरुको धर्म्मज्ञ देखकर वरण किया। उन महातपा कुरुको तपस्यासे कुरुजाङ्गल नामक स्थान पवित्र और उनके निज नामके अनुसार कुरुक्षेत्र करके प्रसिद्ध हुआ था। वाहिनी नाम्नी उनकी मनस्विनी राणीने तिनसे अविक्षित, भविष्यत अभिष्यत, चैत्ररथ, मुनि और प्रख्यात जनमेजय यह पांच पुत्र प्रसव किये। अविक्षितके शवलाश्व, वीर्य्यवन्त आदिराज, पिराज, महाबली, शाल्मली, उच्चैःश्रवा, भङ्गकार और जितारी यह आठ पुत्र उत्पन्न हुए; इनके वंशमें कर्म्मके हेतु गुणसे प्रधान जनमेजय आदि सात और दूसरे अनेक महारथियोंने जन्म लिया था। कक्षसेन, उग्रसेन, वीर्य्यवन्त चित्रसेन, सुषेन और भीमसेन यह सब पुत्र परीक्षित से उत्पन्न हुए थे; यह सब धर्म्मार्थ तत्वज्ञ थे। जनमेजयसे महाबलवन्त पृथ्वी भरमें प्रख्यात धर्म्मार्थयुक्त और सर्व्वभूतोंके हितमें नियुक्त आठ पुत्रोंने जन्म लिया; उनमें ज्येष्ठ धृतराष्ट्र हैं, पीछे पाण्डु, वाह्लीक, महातेजा निषध, बलवन्त जाम्बुनद, कुण्डोदर और पदाति हैं, इनमें धृतराष्ट्र राजा भये थे। कुण्डिक, हस्ती वितर्क, क्राथ, कुण्डिन, वह्निश्रवा, इन्द्राभ और अपराजित भुमन्यु यह धृतराष्ट्रके पुत्र हैं। हे भारत! प्रतीप, धर्म्मनेत्र और सुनेत्र, यहतीन प्रसिद्ध राज कुमार धृतराष्ट्रके पौत्र हैं; इनमें प्रदीप प्रख्यात और अद्वितीय थे। हे भरत वंशश्रेष्ठ! देवापि, शान्तनु और वाह्लीक, इन तीन महारथी पुत्रोंने प्रतीपसे जन्म लिया था; उनमें देवापिने धर्म्म लाभके लिये प्रवज्या अवलम्बन की और महारथी शान्तनु तथा वाह्लीक भूमण्डलके अधीश हुए। हे नृपते!

देवर्षिसदृश सत्ययुक्त बहुतेरे भूपालोंने भरत वंशमें जन्म लिया था। ऐसे देवर्षि सदृश सत्त्वावान् बहुतेरे महारथी भूपतियोंनेभी ऐल वंशकी वृद्धि करके मनुवंशमें जन्म लिया था।

सम्भवपर्व्वमें चौरानवे अध्याय समाप्त।

जनमेजय बोले, कि हे ब्रह्मन्! आपसे अगले पुरुषोंकी महत उत्पत्तिकी कथा सुनी और इस वंशके उदारचरित राजाओंके वृत्तान्तोंसेभी ज्ञात हुआ, पर यह परमप्रिय उपाख्यान संक्षेपमें कहा गया है, उससे भली प्रकार तृप्त नहीं हुआ हूं आप फिर विस्तृत रूपसे कहिये। प्रजापति मनुसे लेकर सम्पूर्ण राजाओंके पवित्र जन्म-वृत्तान्त रूपी यह दिव्य कथा सुननेसे किस मनुष्यकी प्रीति नहीं होती? वे दानशीलता आदिगुण, असाधारणशक्ति, शारीरिक बल, मानसिक सामर्थ्य, अदीनता और उत्साहयुक्त थे; उनके सुकर्म्म, गुण और महात्मासे बढ़ा हुआ यश तीनों लोकमें व्याप्त होकर और बढ़कर आजतक विद्यमान है; उनकी अमृत सदृश मीठी कथा संक्षेपमें सुनकर भली प्रकार तृप्त नहीं हो सका हूं।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे राजन्! मैंने पहिले द्वैपायनसे आप के शुभवंशके वृत्तान्तोंको जैसा सुना है, वह सब कहता हूं, सुनिये। दक्षसे अदिति अदितिसे विवस्वान विवस्वानसे मनु, मनुसे इला, इलासे पुरूरवा, पुरूरवासे आयु, आयुसे नहुष और नहुषसे ययातिने जन्म लिया था। ययातिके दो स्त्रियां थीं, शुक्र की पुत्री देवयानी और वृषपर्व्वाकी कन्या शर्म्मिष्ठा। इस स्थानमें वंशकी कथा-सम्बन्धी श्लोक है, कि देवयानीने यदु और तुर्व्वसु इन दो पुत्रोंको और वृषपर्व्वाकी कन्या शर्म्मिष्ठाने द्रुह्यु, अनु और पुरु इन तीन पुत्रोंको प्रसव किया था। आगे यदुसे यादव वंश और पुरुसे पौरव वंश उत्पन्न हुआ। पुरुकी भार्य्या कौशल्यासे जनमेजयने जन्म लिया; उन्होंने तीन वार अश्वमेध और एकवार विश्वजित यज्ञ करके वनमें प्रवेश किया था उन्होंने माधवकी अनन्ता नाम्नी कन्यासे विवाह किया था, उससे प्राचिन्वान् नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। सूर्योदयके स्थानतक प्राची दिशा जीतने पर उनका नाम प्राचिन्वान हुआ। प्राचिन्वानने अश्मकी नाम्नी माधव की कन्यासे विवाह किया था, उनसे संयातिकी उत्पत्ति हुई। संयातिने दृषद्वतकी कन्या वराङ्गीसे विवाह किया था, उसके गर्भसे अहंजातिने जन्म लिया। अहंजातिने कृतवीर्य्यकी कन्या भानुमतिका पाणिग्रहण किया; भानुमतिके गर्भसे सार्व्वभौमने जन्म लिया। सार्व्वभौमने कैकेय राजको जीतकर उनकी पुत्री सुनन्दाको हर लिया, आगे उसकी विवाह करने पर उसके गर्भसे जयत्सेनकी उत्पत्ति हुई। जयत्सेनने विदर्भ राजकुमारी सुश्रवाका पाणिग्रहण किया, उससे अवचीनका जन्म हुआ। अवाचीनने दूसरी वैदर्भी मर्य्यादा नाम्नी कन्यासे विवाह किया, इससे अरिहका जन्म हुआ। आङ्गी नाम्नी कन्यासे राजा अरिहके विवाह होने पर उनसे महाभौमने जन्म लिया। महाभौमने प्रसेनजितकी कन्या सुयज्ञाके गर्भसे अयुतनायीका जन्म हुआ; इनके अयुत अश्वमेध यज्ञ करनेसे इनका नाम अयुतनायी हुआ। अयुतनायीने पृथुश्रवाकी कन्या कामासे विवाह किया था; इससे कामाके गर्भसे अक्रोधनने जन्म लिया। कलिङ्ग राजकन्या करम्भाके साथ अक्रोधनका विवाह हुआ, इससे करम्भाके गर्भसे देवातिथिने जन्म लिया। देवातिथिने विदेहराजपुत्री मर्य्यादासे विवाह किया था, मर्य्यादाके गर्भसे अरिहने जन्म लिया, अरिहने अङ्गराजकी सुदेवा नाम्नी कन्यासे विवाह किया था। सुदेवाने ऋक्ष नामक पुत्र प्रसव किया था। तक्षककी पुत्री ज्वालाके साथ ऋक्षका विवाह

हुआ, उस ज्वालाके गर्भसे मतिनार नामक राजाने जन्म लिया; मतिनारने सरस्वती नदीके तटपर बारह वर्षमें अनुष्ठान होनेवाले, अनन्त गुणयुक्त यज्ञका अनुष्ठान किया था। उस महा-यज्ञके समाप्त होनेपर सरस्वतीने आकर उनको पतिरूपमें वरण किया था, इसी सरस्वतीके गर्भसे तंसु नाम पुत्र उत्पन्न हुआ। इसस्थान-में वंशकथाका श्लोक है, "सरस्वतीने मतिनारसे तंसुनामक पुत्रको प्रसव किया।" तंसुने कालि-ङ्गीसे ईलिन नामक पुत्र उत्पन्न किया। राजा ईलिनके और रथन्तरीके गर्भसे दुष्मन्तादि पांच पुत्रोंने जन्म लिया। दुष्मन्तने विश्वामित्रकी कन्या शकुन्तलासे विवाह किया था, उससे भरतका जन्म हुआ। इस स्थलमें वंशानुकीर्त्तन के दो श्लोक हैं, कि हे दुष्मन्त! माता चमड़े-की कोशकी नाईं है, उसमें पिता आपही पुत्रके स्वरूपमें जन्म लेता है, अतएव पुत्रको पोषो पालो शकुन्तलाका अनादर मत करो। हे नर-देव! निज वीर्य्यसे उत्पन्न हुई, सन्तान यम-राजके घरसे उद्धार करती है और तुम्हीने यह गर्भाधान किया है; वह सच है, शकुन्त-लाने जो कहा है। अतएव हे पौरव! शकु-न्तलाके गर्भसे उत्पन्न इस महात्मा पुत्रको पालन करो, हमारी बातके अनुसार तुमको इस पुत्रका पालन करना होगा।" इस हेतु दुष्मन्तके पुत्रका नाम भरत हुआ है।

भरतने काशीराज सर्व्वसेनकी पुत्री सुन-न्दासे विवाह किया था, इससे सुनन्दाके गर्भसे भुमन्युकी उत्पत्ति हुई। भुमन्युने दशार्हकी कन्या विजयासे विवाह कर सुहोत्र नाम पुत्रोत्पादन किया था सुहोत्रने इक्ष्वाकुकी कन्या सुवर्णासे विवाह किया था, उससे सुवर्णाके गर्भसे हस्ती नामक राजपुत्रका जन्म हुआ; महाराज हस्तीने निज नामसे हस्तिनापुर स्थापन किया था; इस लिये हस्तिनापुर प्रख्यात हुआ है। हस्तीने त्रिगर्त्त राजकन्या यशोधरासे विवाह कर उससे विकुण्ठन नाम पुत्र उत्पन्न किया था! विकुण्ठनने दशार्हकी पुत्री सुदेवासे विवाह किया था, सुदेवाके गर्भसे अजमीढ़ने जन्म लिया। अजमीढ़के कैकेयी, गान्धारी, विशाला और ऋक्षा इन चार पत्नियोंसे चौबीस सौ पुत्रोंका जन्म हुआ। वे सब भूपाल अलग अलग वंश-धर हुए थे, उनमेंसे संवरणके पुत्रहीसे वंश प्रतिष्ठित था। सम्वरणने सूर्य्यकी पुत्री तप-तीसे विवाह किया था, तपतीके गर्भसे कुरुका जन्म हुआ। कुरुने दशार्हकी पुत्री शुभाङ्गीसे विवाह किया। शुभाङ्गीके गर्भसे विदूरथका जन्म हुआ। माधवपुत्री संप्रियासे विदूरथका विवाह होनेपर संप्रियाके गर्भसे अनश्वाने जन्म लिया। अनश्वाने अमृता नामी मगधराज-कुमारीसे विवाह करके उसके गर्भसे परीक्षित नामक पुत्रोत्पादन किया। परीक्षितने बहुदकी कन्या सुयशासे विवाह किया था, सुयशाके गर्भसे भीमसेन नामक पुत्रने जन्म लिया। भीमसेनने कैकेय राजकुमारी, कुमारीसे विवाह किया था, कुमारीके गर्भसे प्रतिश्रवा नाम पुत्रका जन्म हुआ। प्रतिश्रवाके पुत्र प्रतीपने शैव्यराजकुमारी सुनन्दा से विवाह कर उसके गर्भसे देवापि, शान्तनु और वाह्लीक यह तीन पुत्र उत्पन्न किये; देवापि बालेपनहीमें वनमें गये थे, शान्तनु राजा भये। इस स्थानमें वंश-कीर्त्तनका श्लोक है, कि "वह भूप भुजसे जिन जिन जीर्ण जनोंको स्पर्श करते थे, वे सब फिर युवा (शान्ततनु) होकर सुख भोगते थे," इस हेतु इनका नाम शान्तनु हुआ है। शान्तनुने भागीरथी गङ्गासे विवाह किया था, उससे गंगाके गर्भसे देवव्रतने जन्म लिया, जिनको सब भीष्म कहा करते हैं। भीष्मने पिताका प्रिय-कार्य्य करनेकी इच्छासे उनके साथ सत्यवतीका विवाह कर दिया, उस सत्यवतीका और एक नाम गन्धमाली करके प्रसिद्ध था। पहिले सत्य-वतीको कन्यादशा में पराशरसे गर्भ होनेसे

द्वैपायनका जन्म हुआ था; आगे शान्तनुके वीर्य्य और उसके गर्भसे दो और पुत्रोंने जन्म लिया, उनके नाम विचित्रवीर्य्य और चित्राङ्गद थे; चित्राङ्गद यौवनको प्राप्त करनेके पहिले गन्धर्व्वसे मारे गये थे, विचित्रवीर्य्य राजा हुए थे। विचित्रवीर्य्यने कौशल्याके गर्भोत्पन्न काशिराजपुत्री अम्बिका और अम्बालिका इन दो कन्याओंसे विवाह किया था; पर वह सन्तान न होतेही परलोकको सिधारे। तब इस हेतु, कि दुष्मन्तका वंश नष्ट न हो जाय, सत्यवती सोचने लगी; आगे उसने निजपुत्र द्वैपायन ऋषिकी मनसे स्मरण किया, तिस्से द्वैपायनने उसके सम्मुख उपस्थित होकर पूछा कि माई! क्या करना होगा? सत्यवती बोली, कि तुम्हारे भाई विचित्रवीर्य्य बिना सन्तान परलोकको सिधारे हैं, उनका पुत्रोत्पादन करो; द्वैपायनने स्वीकार किया। अनन्तर उन्होंने यथाकालमें धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर वह तीन पुत्र उत्पन्न किये। आगे द्वैपायनके वरदानके प्रभावसे गान्धारीके गर्भसे धृतराष्ट्रके पुत्रोंमेंसे दुर्य्योधन, दुःशासन, विकर्ण और चित्रसेन यह चार पुत्र प्रधान थे; कुन्ती और माद्री यह दो स्त्री-रत्न पाण्डुकी भार्य्या भयी थीं; कुन्तीका दूसरा एक नाम पृथा था, अनन्तर एक समय पाण्डु मृगयाके निमित्त वनमें गये थे; वहां देखा, कि एक ऋषि मृगीसे मैथुन कर रहे हैं, तबतक कामरसके पूर्ण न होनेकी हेतु भलि प्रकार तृप्त नहीं हुए थे, उन अद्भुत मृगरूपी ऋषि पर उन्होंने वाण मारा। ऋषि वाणसे विद्ध होकर पाण्डुसे बोले, कि तुमने धर्म्म और कामरसको अभिज्ञ होकर, मुझको अपूर्ण मनोरथ देखने परभी मार डाला! इन हेतु तुमभी कामरसमें अतृप्त रहकर उस दशाहीमें शीघ्र परलोकको सिधारोगे। पाण्डुका यह शाप सुनतेही मात्र उसीक्षण रङ्ग बदल गया, और शापसे बचनेके लिये स्त्रीसे मिलना त्याग दिया। आगे उन्होंने कुन्ती और माद्रीसे कहा, कि मैंने अपनी चपलतासे यह कुदशा प्राप्त की है; सुना है, कि पुत्रकी उत्पत्ति न होनेसे स्वर्गको प्राप्ति नहीं होती। अनन्तर कुन्तीसे बोले, कि तुम मेरे लिये पुत्र उत्पादन करो। आगे कुन्तीने पतिके उस नियोगके अनुसार धर्म्मसे युधिष्ठिर, पवनसे भीम और इन्द्रसे अर्ज्जुन यह तीन पुत्र उत्पन्न किये। पाण्डु उनपर प्रसन्न होकर बोले, कि तुम्हारी सौत यह माद्री निःसन्तान है, तुम यत्नवती होकर इसको अच्छे पुत्र उत्पन्न कर दो। कुन्तीने वह स्वीकार कर वह विद्या माद्रीको दे दी, कि जिस विद्यासे धर्म्मादिको बुलाकर वह पुत्रोत्पादन करती थी; आगे माद्रीनेभी दोनों अश्विनीकुमारोंसे नकुल और सहदेव यह दो यमज पुत्र उत्पन्न किये। एक समय पाण्डु माद्रीको गहनोंसे सजी हुई, देखकर कामवश हो गये, इससे माद्रीके स्पर्श करतेमात्र उन्होंने शरीर छोड़ा। पाण्डुकी देह चिताकी आगमें जला दी जानेपर माद्री उनके पीछे सती हो गयी, और उस समय कुन्तीसे कह गयी, कि तुम सावधान होकर मेरी इन दो यमज सन्तानोंको पालना। अनन्तर तपस्वीगण कुन्तीके साथ पाण्डवोंको हस्तिनापुरमें लिवालाकर भीष्म विदुरको दे दिया और ब्राह्मण क्षत्रियादि सर्व्व वर्णोंके निकट पाण्डवोंको सब जन्मकथा सुनाकर उनके सामनेसे चले गये; उन तपस्वियोंके वाक्योंके अन्तहोने कालमें आकाशसे फूलोंकी वृष्टि होने लगी और देवताओंके नगाड़े बजने लगे।

पाण्डवोंने भीष्मादिसे लिये जाकर पिताको मृत्यु-कथा कहकरके विधिपूर्व्वक पिताका और्द्धदैहिक कार्य्य किया; आगे वे उस स्थानमें बसने लगे। इनसे दुर्य्योधन लड़कपनहीसे झगड़ने लगा; उस पापात्माने राक्षसी बुद्ध

लेकर नाना उपायोंसे उनको वहांसे उखाड़नेकी चेष्टा की थी, पर जो कार्य्य होनहार है, उसके अवश्य होनेके हेतु उसका मनोरथ सफल नहीं हो सका। अनन्तर धृतराष्ट्रने छलपूर्व्वक उनको वारणावत् ग्रामको भेजा, पाण्डवलोगभी सम्मत होकर वहां गये थे। वारणावतमें उन्होंने दुर्य्योधनके चेष्टित अनुष्ठानसे जतुगृह में जल मरने पर होकर विदुरजीके परामर्शके प्रभावसे रक्षा पायी। आगे वारणावतसे एकचक्रा नगरीमें गये, वहां जानेमें पथमें हिड़िम्बको बध किया था। उस एकचक्रा नगरीमें वक नामक राक्षसको मारकर पाञ्चाल नगरमें गये, वहां द्रौपदीको भार्य्या प्राप्त करके निज राज्यमें लौटकर कुछदिन कुशलसे रहे। उस समय द्रौपदीके गर्भसे पांच पुत्र उत्पन्न हुए, उनमें युधिष्ठिरके वीर्य्यसे प्रतिविन्ध्य भीमके वीर्य्यसे सुतसोम, अर्जुनके वीर्य्यसे श्रुतिकीर्त्ति, नकुलके वीर्य्यसे शतानीक और सहदेवके वीर्य्यसे श्रुतकर्म्माका जन्म हुआ। युधिष्ठिरने गोवासन नामक शव्यराजको कन्या देविकाको स्वयम्वरके स्थानमें प्राप्त किया; उस देविकाके गर्भसे यौधेय नाम पुत्र उत्पन्न हुआ था। भीमसेनने वीर्य्यरूपी शुल्कके द्वारा काशीराजकी पुत्री वलन्धरासे विवाह कर उसके गर्भसे सर्व्वक नामक पुत्रको उत्पन्न किया। अर्जुनने द्वारकामें जाकरके वासुदेवकी बहिन भद्रभाषिणी सुभद्राको हरकर उससे विवाह किया। आगे बिनाविघ्न निज नगरमें लौटकर उस सुभद्रासे अति गुणवन्त वासुदेवके प्यारे अभिमन्यु नामक पुत्रको उत्पन्न किया। नकुलने चेदिराजकुमारी करेणुमती नाम्नी कन्यासे विवाह करके उससे निरामित्र नामक पुत्रको उत्पादन किया। सहदेवने स्वयम्वरके कालमें द्युतिमान मद्रराज की कन्या विजयासे विवाह किया था, विजयाके गर्भसे सुहोत्र नाम पुत्रका जन्म हुआ। भीमसेनने पहिलेही हिड़िम्बासे राक्षस घटोत्कचको उत्पादन किया था। पाण्डवोंके यह ग्यारह पुत्र थे; उनमें अभिमन्युहीसे वंशकी रक्षा हुई है। अभिमन्युने विराट-राजपुत्री उत्तरासे विवाह किया था, उनके वीर्य्य और उत्तराके गर्भसे छः महीने पीछे अस्त्राग्निकेद्वारा जला मरा पुत्र भूमिष्ठ हुआ, पुरुषोत्तम वासुदेवने "मैं इस सन्तानको जिलाऊंगा," कहके कुन्ती को नियोग किया। उनके नियोगके अनुसार कुन्तीने उस मरे हुए बालक को गोदमें लिया, आगे भगवान वासुदेवने उस अकालोत्पन्न अजात बलवीर्य्य-पराक्रमयुक्त और अस्त्राग्नि से जले हुए बालकको निज तेजसे जिलाया, अनन्तर बोले, कि कुलके परिक्षीण होने पर इस बालकने जन्म लिया है, इस हेतु इसका नाम परिक्षित होवे। महाराज! परिक्षितने माद्रवती नाम्नी आपकी मातासे विवाह किया था, उस माद्रवतीके गर्भसे जनमेजयके नामसे आपने जन्म लिया है; आपने वपुष्टमा नाम्नी राणीसे शतानीक और शङ्कुकर्ण यह दो पुत्र उत्पन्न किये हैं। शतानीक के वीर्य्य और वैदेहीके गर्भसे अश्वमेधदत्त नाम एक पुत्र उत्पन्न हुआ है।

हे नृपते। पुरु और पाण्डवोंकी यह वंशकथा कह चुका। धन्य, पुण्य भरी और श्रद्धायुक्त ब्राह्मण लोग निज धर्म्ममें नियुक्त और प्रजा पालनमें लगे हुए क्षत्रियगण, वैश्यवर्ग और तीनों वर्णोंके सेवाकारी और श्रद्धायुक्त शूद्र अवश्यमेव सुनें और इसका अर्थ जानें, जोसब देवपरायण ब्राह्मण औ दूसरे मानवगण अहङ्काररहित और संयत होकरके इस पवित्र इतिहासको अशेषरूपसे सुनेंगे वा सुनावेंगे, वह स्वर्गको जीत कर पुण्य लोकमें बसेंगे और देवता ब्राह्मण और दूसरे मनुष्योंके समान माननीय और पूजनीय होंगे। यह परम पवित्र महाभारत भगवान् वेदव्याससे रचा गया है। जो सब वेद सम्पन्न ब्राह्मणादि चारवर्ण श्रद्ध-

ङ्गारको तज कर श्रद्धायुक्तहोकर इसे सुनेंगी, वे सुकीर्त्तिशाली और स्वर्ग-जयकारी होंगी और वे पापाचरण करने परभी शोचनीय दशाको प्राप्त नहीं होंगी। इस विषय पर यह श्लोक है, कि "वेदवत पवित्र, उत्तम, धन्य,यश बढ़ानेवाला और आयुवृद्धिकारी यह महाभारत नियतात्म जनोंके सुनने योग्य हैं।

सम्भवपर्व्वमें पचानव्वे अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि इक्ष्वाकु वंशोत्पन्न महाभिष नामसे प्रख्यात सत्यवादी और सत्य विक्रमी एक नरनाथ थे। उन्होंने सहस्र अश्व-मेध और शत संख्यायुक्त राजसूय यज्ञसे देवाधीशको सन्तुष्ट किया था, इससे वह अन्त-कालमें स्वर्गको पधारे। अनन्तर एक समय सुरलोग ब्रह्माकी उपासना कर रहे थे; उस समय राजर्षि और राजा महाभिष उस स्थान-में उपस्थित थे। अनन्तर नदियोंमें प्रधान गङ्गा उस समय पितामहके निकट उपस्थित हुई, उनका चन्द्र-प्रकाश सदृश वस्त्र पवनसे ऊपर उठा, देवताओंने देखतेही मुख नीचे कर लिये; राजर्षि महाभिष निःशङ्क चित्तसे उन पर ताकते रहे; इस हेतु भगवान् ब्रह्माने महाभिषको शाप देकर कहा, कि तुम मर्त्त्य-लोकमें जन्म लोगे और कुछकाल पीछे इस पुण्य लोकमें आ सकोगे। नृपति महाभिषने राजालोग और दूसरे तपोधनोंकी कुछकाल चिन्ता करके अति तेजस्वी भूप प्रतीपके वीर्य्यसे जन्म लेनेकी अभिलाषा की; जलयुक्त गङ्गा नृपति महाभिषको उस प्रकार अधैर्य्य देखकर उनको मनही मनमें सोचती हुई चली गयी। उन्होंने जानेके काल पथमें स्वर्गधामवाले देव वसुओंको मनःपीड़ासे दुःखी और स्वर्गसे च्युत होते देखा। हे नृपते! जलयुक्त भागीरथीने उनको उस दशामें देखकर पूछा, कि तुम क्यों श्रीभ्रष्ट हुए हो? देवोंका कोई अमङ्गल तो नहीं हुआ? वसुओंने कहा, कि हे महा-नदी! महात्मा वशिष्ठने स्वल्प दोषसे क्रोधित होकर हम पर शाप दिया है; ऋषिश्रेष्ठ वशिष्ठ छिपकर सन्ध्योपासन कर रहे थे, हम मुग्ध चित्त होकरके उनको लांघ कर गये थे, इस-से उन्होंने क्रोधयुक्त होकर हमको शाप दिया है, कि तुम नरयोनिमें जन्म लो। ब्रह्मवादी महर्षिने जो कहा है, वह अतिक्रम नहीं हो-सकेगा, अतएव तुम भूमण्डलमें मानवी बनकर हमको पुत्र बनाओ। हे शुभे! हम मान-वीके पेटमें नहीं घुसेंगे। गङ्गाने वसुओंकी बातको सुनकर जाना और कहा, कि मर्त्त्य-लोकमें कौनसे श्रेष्ठ पुरुष तुम्हारे जन्मदाता होंगे? वसुलोग बोले, कि नरलोकमें प्रतीप नामक पृथ्वीनाथके पुत्र शान्तनु नामसे तीनों लोकोंमें प्रशंसित भूप होंगे, हम चाहते हैं, कि वह हमारे जन्मदाता होवें। गङ्गाजी बोलीं, कि हे निष्पापी देवगण! तुम जैसा कहते हो, मेराभी वही मत है; कल्पना की है कि, मैं उन शान्तनु राजाहीका प्रिय अनुष्ठान करूंगी, वह तुम्हारा भी अभिमत हुआ है। वसुलोग बोले, कि हे तीनों लोकोंमें जाने-वाली! जब हम तुम्हारे पुत्रके स्वरूपमें जन्म लें, तब तुम हमको जलमें फेंकना, कि सदा हमको मर्त्त्यलोकमें रहना न पड़े, शीघ्र बचाव हो सके। गङ्गाजी बोलीं, कि तुम जैसा कहते हो, वही करूंगी, पर पुत्रार्थी शान्तनुका मुझसे मिलन व्यर्थ न हो, इस हेतु ऐसा विधान करो, कि मेरा एक पुत्र जीवित रहे। वसु-लोग बोले, कि हम अपनेसे हरेकसे निज निज तेजका आठवां भाग देंगे, उस तेजसे तुम्हारी और उनकी अभिलाषानुरूप एक पुत्र उत्पन्न होकर जीवित रहेगा; पर मर्त्त्यलोकमें उसका वंश नहीं रहेगा, वह वीर्य्यवन्त सन्तान निःस-न्तान होगी। वसुलोग गङ्गाके साथ ऐसा

नियम बांधकर उसीक्षण मनमाने स्थानको प्रसन्न चित्तसे पधारे।

सम्भवपर्व्वमें छानब्बे अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर सर्व्व भूतोंके हितमें नियुक्त भूपति प्रतीप बहुवर्ष गङ्गाद्वारमें वसकर जप करने लगे। रूपगुण-युक्त अति लुभानेवाली स्त्रीरूपिणी ससुखी, दिव्यरूपा, मनस्विनी, गङ्गाने जलसे निकलकर पाठपरायण राजर्षिके शालवृक्षके समान दहिनी उरुकी भजना की। महीपाल प्रतीप उस यशस्विनीसे बोले, कि हे कल्याणि! तुम्हारे प्रार्थित कौनसा प्रिय कार्य्य करूं? नारी बोली, कि महाराज! मैं तुमकी कामना करके भजती हूं। तुम मुझको भजो; साधुलोग इच्छावती कामिनीको त्याग देना दोषयुक्त कहा करते हैं; प्रतीप बोले, कि री सुन्दरी, कल्याणि! मेरा धर्म्मयुक्त व्रत यह है, कि मैं कामके वशमें होकर परायी नारि वा असवर्णा स्त्रीसे नहीं मिलता। नारी फिर बोली, कि महाराज! मैं अलक्षणा, मिलनेके अयोग्य वा निन्दित स्त्री नहीं हूं; मैं प्रार्थनीया सुन्दरी नारी तथा स्वर्गकी कन्या होकर तुमसे प्रार्थना कर रही हूं, तुम मेरी भजन करो। प्रतीप बोले, कि तुम जिस प्रिय कार्य्यके लिये मुझे प्रवृत्ति दिलाती हो, मैं उससे निवृत्त हूं यदि इसक्षण उसका विरुद्धाचरण करूं, तो यह धर्म्म विरोध मुझको नष्ट करेगा; विशेष तुमने मुझे दक्षिण उरुका आश्रयकर आलिङ्गन किया हैं; री भीरु वराङ्गने! पुरुषकी दहिनी उरु, पुत्र, कन्या और पुत्रवधूका आसन है, और बांयी उरु, प्रणयिणीके भोगनेके योग्य हैं; तुमने उस बांयी उरुको आश्रय नहीं किया है, इस लिये मैं तुमसे कामयुक्त आचरण नहीं कर सकता हूं। री कल्याणि! जोंकि तुमने आकरकेही मेरी पुत्रवधूके पक्ष की दहिनी उरुकी आश्रय किया है, सो तुम मेरी पुत्रवधु होओ, अतएव अपने पुत्रके निमित्त तुमको ले लिया। नारि बोली, कि हे धर्म्मज्ञ! तुम अपने पुत्रसे साथ मेरा विवाह करनेके लिये जो कुछ कह रहे हो, वही होवे; तुम पर भक्ति करके मैं इस वंशको सेवा करूंगी; भूमण्डल में जितने भूपाल हैं, तुम्ही उनकी गति हो। तुम्हारे इस वंशके जितने गुण हैं, वह मैं सैकड़ों वर्षोंमेंभी कहके अन्त नहीं कर सकती और इस वंशमें जो प्रख्यात हैं, उनकी जितनी साधुता और श्रेष्ठता थी, वहभी कह करके अन्त नहीं की जासकती। हे धर्म्मज्ञ विभो! मेरे साथ यह एक नियम ठह-राना पड़ेगा, कि मैं जो कुछ करूंगी, तुम्हारा पुत्र उसका कभी विचार नहीं कर सकेगा, मैं ऐसाही नियममें रहकर तुम्हारे पुत्रसे प्रेम बढ़ाऊंगी, तुम्हारे पुत्र प्रणय तथा प्रियकार्य्य और पुत्रसे स्वर्गकी प्राप्ति करेंगे।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे राजन! गङ्गा ऐसाने कहकर उसी स्थानमें अन्तर्हिता हुईं। राजाने पुत्रके जन्मकी प्रतीक्षा करके वही निश्चय किया। उसी समयसेही क्षत्रियोंमें श्रेष्ठ कुरुकुलप्रदीप प्रतीप स्त्रीके सहित पुत्रके लिये तप करने लगे। आगे दम्पतिके बुढ़ापेमें उन महात्मा महाभिषने जन्म लिया; वृद्ध भूपालके शान्तचित्त होने पर उस कालमें उस सन्तानका जन्म हुआ, इस हेतु उनका नाम, शान्तनु हुआ, कुरुश्रेष्ठ शान्तनु निज कर्म्मसे जो अक्षय पुण्यलोक जीता जाता है, वह मनमें ठहरा-कर पुण्य कर्म्मोंहीका अनुष्ठान करने लगे। अनन्तर राजा प्रतीप निजपुत्र शान्तनुको युवा देखकर बोले, कि हे शान्तनो! तुम्हारे मङ्गलके निमित्त पूर्व्वकालमें एक सुन्दरी नारी मेरे पास आई थी; हे पुत्र! वह अनुपम रूपवती युवती वरवर्णिनी कामगामिनी दिव्य-कामिनी यदि पुत्रकी कामना से तुम्हारे पास

निरालेमें आवें, तो तुम उसको ऐसा मत पूछना, कि "हे अङ्गने ? तुम कौन, किसकी बेटी हो ? और वह कामिनी जो कर्म्म करेगी वहभी तुम उससे मत पूछना ; हे अनघ। मैं तुमको यह आज्ञा करता हूं, कि इस आज्ञाके अनुसार तुम उस भजनेवाली युवतीको भजना।

श्रीवैशम्पायनजी, बोले कि राजा प्रतीप तब अपने पुत्र शान्तनुको ऐसी आज्ञा देनेके पश्चात् निज राज्यपर अभिषिक्त करके वनको पधारे। देवराजके समान द्योतमान धीमान् धरतीनाथ शान्तनु सदा वनमें जाकर मृगया करने लगे। महाराज ! एक समय वह राजश्रेष्ठ मृग और भैंसे बंध करके सिद्धचारणोंसे सेवित गङ्गाके सामने अकेले घूम रहे थे, कि ऐसे समयमें साक्षात लक्ष्मीके सदृश कान्तिवती अनिन्दिता, दिव्य आभूषणोंसे सजी, शोभा देनेवाले दांतोंसे सुशोभिता एक परमा नारीको देखा। नराधिप शान्तनुने पद्मोदर सदृश सुन्दरी, पतला वस्त्र पहिने हुए उस रमणीको देखकर उसके रूपैश्वर्य्यसे आश्चर्य्य माना और उनके नेत्ररूपी दो चकवे रूप चन्द्रमाके अमृतको पीकर तृप्त नहीं हुए और विलासिनी नारिभी राजाको अति उज्ज्वल रूपलावण्यसे चमकते और घूमते देखकर स्नेह और प्रेममें फांसकर अपनी देखनेकी लालसाको भले प्रकार पूर्ण नहीं कर सकी। राजाने उसको मीठी बातोंसे समझाकर कहा, कि सुन्दरी, शोभने देवीवत् कान्तिमती ! मैं तुमसे यह प्रार्थना करता हूं, कि तुम चाहे देवी वा दानवी, अथवा गन्धर्व्वी वा अप्सरा पन्नगी वा यक्षी वा मानवी जो हो, मेरी भार्य्या होओ।

सम्भवपर्व्वमें सतानव्वे अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनिन्दिता गङ्गा राजाकी मृदु और मनोहर वाणी मन्द हंसीके साथ सुनकर वसुओंके नियमको स्मरण करके उनके सामने गयीं और बातोंसे भूपतिके चित्तको प्रसन्न करती हुई बोलीं, कि, हे महीपाल ! मैं तुम्हारी रानी और वशीभूता हूंगी, पर मैं यदि शुभ वा अशुभ कार्य्य करूं, तो तुम रोकने वा अप्रिय बात कहने नहीं पाओगे ; हे पृथ्वीपाल ! तुम यदि ऐसे नियमसे मेरे साथ रह सको तो मैं भी तुम्हारे साथ रहूंगी, यदि रोको वा अप्रिय वाणी कहो, तो निश्चय तुमको त्याग दूंगी। हे भरतश्रेष्ठ ! राजाके वह मानने पर गङ्गाने उन भूपालश्रेष्ठको प्राप्तकर अपार आनन्द लाभ किया। भूपति शान्तनु भी उनको लाभकर उनके वशमें होकर मनमाना भोग करने लगे ; पूछना उचित न समझकर उससे कुछ पूछते नहीं थे, वरन उनकी शीलता, सुव्यवहार, सुन्दरता, उदारता और निरालेकी सेवासे सन्तुष्ट होने लगे। सुन्दरी दिव्यरूपा त्रिपथगामिनी देवी गङ्गा शोभनीय मानवी शरीर धरकर देवराजके समान द्योतमान नृपसिंह शान्तनुके सौभागसे उनका मनोरथ सफल करती हुई प्यारी पत्नी हुईं। वह सम्भोग, स्नेह, चतुरता, सुन्दर नाच और मनोहर हाव भावसे राजाका मन बहलाने लगीं ; राजाभी उसके प्रेमी बने ; वह अच्छी स्त्रीके गुणसे वशीभूत होकर क्रीड़ामें आसक्त रहनेसे यह जान नहीं सके, कि अनेक महीने, ऋतु और वर्ष बीत रहे हैं। नरेशने मनमाना उनसे क्रीड़ाकरते हुए क्रमशः अमर सदृश आठ पुत्र उत्पन्न किये। हे भारत ! जब जो पुत्र जन्म लेता था, तबही गङ्गा उसको जलमें डालदेती और कुमारको यह कहकर सोतेमें डुबा देती थी, कि तुमको प्रसन्न करती हूं। इस प्रकार क्रमसे सात पुत्रोंको जलमें डालदेने पर गङ्गाका ऐसा निर्दयी व्यवहार राजाके लिये अति असन्तोषका होने लगा, पर इस भयसे, कि कहीं छोड़कर चली न जाय, उससे कुछ कहते नहीं थे। अनन्तर आठवें

पुत्रके जन्म लेने पर जब गङ्गा हंस रही थी, कि ऐसे समयमें राजा अति दुःखी होकर निज पुत्रकी रक्षाके निमित्त उनसे बोले, कि पुत्रको मत मारो; तुम कौन, किसकी बेटी हो? क्यों पुत्रको मार डालती हो? री पुत्रघात करनेवाली! तुम यह अति अनुचित और महत् पाप कर रही हो। नारी बोली, कि हे पुत्र-कामी! तुम पुत्रवान जनोंमें श्रेष्ठ हुए, तुम्हारे इस पुत्रको न मारूंगी; पर मैंने जो नियम बांधा था, उसके अनुसार तुम्हारे पास मेरे रहनेका काल बीत गया। मैं महर्षियोंसे सेवित जन्हुकी कन्या गङ्गा हूं, देवताके कार्य्य साधनेके लिये तुमसे सहवास किया था, तुम्हारे पुत्र महातेजस्वी महाभाग अष्टवसु वशिष्ठजीके शापसे मनुष्य होकर जन्मे थे, इस मर्त्त्यलोक भरमें तुम्हारे बिना उनका जन्मदाता होनेवाला कोई नहीं है, और मेरे बिना कोई उनकी माता होनेवालीभी नहीं है, इस हेतु मैंने वसुओंकी माता होनेके लिये मानवी शरीरको आश्रय किया था, तुमने अष्टवसुओंका जन्म देकर अक्षयलोक लाभ किया। वसुओंसे मेरा यह नियम स्वीकार किया हुआ था, कि जन्म लेतेही मैं उनकी मानवी जन्मसे मुक्त करूंगी। इसलिये उनको उस प्रकारसे जलमें डाल दिया था, इससे वे महात्मा आपव ऋषिके शापसे मुक्त हुए, इस समय तुम इस महाव्रत पुत्रको पालो; तुम्हारा मङ्गल होवे, मैं जाती हूं। मैंने तुम्हारे लिये वसुओंके निकट एक पुत्र मांगा था, इससे हरेक वसुके आठवें भागसे इस पुत्रका जन्म हुआ है। सो मेरे प्रसव किये हुए, इस पुत्रको 'गङ्गादत्त' अर्थात् गङ्गाका दिया हुआ करके जानना।

सम्भवपर्व्वमें अठानव्वे अध्याय समाप्त।

शान्तनुजी बोले, कि आपव नामके कौनसे ऋषि हैं? और वसुओं ने उनका कौनसा दोष किया था? और तुम्हारे दिये हुए इस पुत्रने कौनसा दोष किया था, कि उस कर्म्मफलसे वह मानवलोकमें वास करेगा? हे जाह्नवी! वसुलोग सर्व्व लोकोंके ईश्वर हैं, सो मुझे यह कहो, कि वे क्यों मर्त्त्यलोकमें उत्पन्न हुए।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि देवी जाह्नवी गङ्गा पुरुषश्रेष्ठ पति राजा शान्तनुसे यह कहने लगीं, कि हे भारतश्रेष्ठ! पूर्व्वकालमें वरुणदेवने जिनको पुत्र लाभ किया था, वह वशिष्ठ नामक मुनि आपव नामसे प्रसिद्ध हुए; पर्व्वतोंमें श्रेष्ठ सुमेरु के किनारे उनका पवित्र आश्रम था, वह आश्रम मृग पक्षियोंसे गूंजता हुआ और सदा सर्व्वऋतुओंके फूलों से घिरा रहता था। हे भारतश्रेष्ठ! पुण्यवानोंमें श्रेष्ठ वही वरुणपुत्र मीठे फल मूल और जलयुक्त उस आश्रमके वनमें तप किया करते हैं, हे भरतर्षभ! एक समय सर्व्वकामदुघा सुरभी नाम्नी देवी दक्षपुत्रीने जगत् पर कृपा प्रगट करनेके लिये कश्यपसे एक कन्या प्रसव की; धर्म्मात्मा वरुणपुत्रने उस कन्याको लेकर हवनधेनु बनायी सुरभीकी कन्या गौ उन मुनियोंसे सेवित पवित्र और रमणीय उपवनमें वासकर निर्भय चित्तसे चरने लगी। हे भरतश्रेष्ठ! अनन्तर किसी समयमें पृथ्वादिदेव वसुगण देवर्षिसेवित उस वनमें आकर निज निज स्त्रीसे विचरने लगे और रमणीय पर्व्वत और निकुञ्जमें इधर उधर क्रीड़ा करनेको प्रवृत्त हुए। हे इन्द्रसमान विक्रमी! उनमेंसे एक वसुकी सुन्दरी एक स्त्रीने उस वनमें घूमती हुई सुरभी की कन्या नन्दिनीको देखा। हे राजेन्द्र! शीलसम्पदसे भरी पूरी वसुकी स्त्रीने नन्दिनीको गौवैल समान आंखवाली, सर्व्वकामदुघाओंमें श्रेष्ठ, प्रशस्त थनवाली अच्छी दुधारी सुन्दर पूंछ और खुरयुक्त, शुभलक्षणा, सुशीला, और सर्व्वगुणवती देखकर अचरज मानकर अपने

पति द्यु नामक वसुको दिखाया, हे गजेन्द्र समान विक्रमी पौरव-नन्दन! द्यु नामक वसुने तब उस सुरभी की पुत्रीको देखकर अपनी प्रेमिका देवीसे उसके रूप और गुणका बखान कर कहा, कि री सुन्दरी! जिन ऋषिका यह उत्तम तपोवन है, यह कालिनेत्रवाली देवी सुरभी की पुत्री उन वरुणजीके हवनकी गौ है। हे सुन्दरी! जो नर इस नन्दिनीका मीठा दूध पीयेगा, वह अटल यौवन पाकर दश सहस्र वर्ष जीवित रहेगा।

हे नृपोत्तम! सुमध्यमा सुन्दरी देवी वसुपत्नीने यह सुनकर अति तेजस्वी पतिसे कहा, कि मर्त्यलोकमें रूप-यौवनवती भूदेव-पुत्री जितवती मेरी सहेली है, वह धीमान सत्य प्रेमी राजर्षि उशीनरकी बेटी है; मानव-लोकमें उसका रूपसम्पद प्रसिद्ध है, हे महा-भाग। उसके लिये मुझे बछड़ा-सहित इस गौको लेनेकी अभिलाषा हुई है। हे पुण्य-बढ़ानेवाले अमरश्रेष्ठ! शीघ्र गौको लाइये, हे मानद! मेरी वह सहेली केवल इस गौका दूध पीकर मर्त्यलोकमें जरारहित और रोग-वर्जित होगी! हे अनिन्दित महाभाग! मेरा यह प्रियकार्य्य करना आपका कर्त्तव्य है, इससे अधिक प्रिय मेरा और कुछ नहीं है। द्यु-नामक वसुने यह बात सुनकर प्रेमिका देवीका प्रिय अनुष्ठान करनेके लिये पृथु आदि भाइयोंके साथ उस कामधेनुको हर लिया! हे भूप! वह उस कालमें अपनी कमलनेत्रा स्त्रीकी बातोंमें आकर उन ऋषिकी कठोर तपस्याको भली भांति आलोचना नहीं कर सके। यह तर्क एकवार भी मनमें नहीं उठाया, कि इस गौके हरनेसे हमारा पतन होगा।

अनन्तर वरुणपुत्र ऋषि फल बटोरकर आश्रममें उपस्थित हुए; पर अपने सुहावने काननमें बछड़ा सहित उस गौको नहीं देखा। तब उदारधीमान् तपोधन उस वनमें इधर उधर ढूंढ़ने लगे। पर देरतक ढूंढ़ करकेभी नहीं पाया। आगे दिव्य नेत्रसे जाना, कि वसुओंने गो हर ली है, इससे उन्होंने उसी-क्षण क्रोधयुक्त होकर वसुओंको यह शाप दिया, कि जोकि वसुओंने मेरी सुलक्षणावती अच्छी पूंछवाली दुधारी कामधेनुको हर लिया है, सो इसमें सन्देह नहीं, कि वे सब मर्त्त्यलोकमें जन्म लेंगे। हे भरतकुलप्रदीप! मुनियोंमें श्रेष्ठ भगवान् आपवने क्रोधके वशमें होकर वसु-ओंको यह शाप दिया! उन महाभाग मह-र्षिने शाप देकर तप में मन लगाया। हे राजन्! क्रोधयुक्त महाप्रतापी ब्रह्मर्षि तपो-धन से देवता आठोंवसु एस प्रकारसे शाप पाकर शापके वृत्तान्तसे ज्ञातहोकर फिर उन महात्माके आश्रममें आकर उनकी उपासना करने लगे। हे पृथ्वीपालश्रेष्ठ! पुरुषव्याघ्र वसुगणने उन सर्व्वधर्मनिपुण ऋषिश्रेष्ठ आपवको प्रसन्न करनेके लिये बड़ी चेष्टा की, पर मनोरथ सफल नहीं हो सका। अनन्तर धर्म्मात्मा ऋषिने कहा, कि मैंने पृथु आदि तुम सबोंको जो शाप दिया है, वर्षभरमें तुम उस शापसे मुक्त हो सकोगे, पर तुम जिसके लिये शाप-ग्रस्त हुए हो, वह द्यु नामक वसुही केवल निज धर्म्मके दोषसे मनुष्यलोक में दीर्घकालतक बसेगा, मैंने क्रोधित होकर जो कहा है, उसको विरुद्धता नहीं कर सकूंगा। यह महामना द्यु नामक वसु मर्त्यलोकमें सन्तान उत्पादन नहीं करेगा, स्त्रीमिलन त्याग देगा और धर्म्मात्मा तथा सर्व्व शास्त्रोंमें पण्डित होकर पिताके प्रियकार्य्यमें सदा नियुक्त रहेगा। महर्षि सब वसुओंसे यह बात कहकर चले गये। तब सब वसुओंने एकत्रहोकर मेरे पास आकर प्रार्थनापूर्व्वक कहा, कि हे गंगे! हमारे जन्म लेतेही तुम स्वयं हमें जलमें डाल देना। हे राजश्रेष्ठ! शापसे ग्रसित वसुओंको शापसे

बचानेके लिये मैंने ऐसा किया है। हे नृपोत्तम भारत! उन ऋषिके शापसे यह द्यु नामक वसु अकेले दीर्घकाल मनुष्यलोकमें बसेंगे।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि देवी गङ्गा यह कहकर उस स्थानहीसे अन्तर्हित हुईं और उस कुमारको लेकर मनमाने स्थानको पधारीं। वह द्यु नामक वसु शान्तनुकी सन्तान होकर देवव्रत और गाङ्गेय नामसे प्रसिद्ध हुए और शान्तनुसेभी अधिक गुणशील भये थे। इधर शान्तनुने शोकयुक्त होकर निज पुरमें प्रवेश किया। हे महाराज! इसक्षण उन महात्मा भारत राजा शान्तनुके अनुपम गुण और महाभाग्यकी कथा कहूंगा, जिनका देदीप्यमान इतिहास महाभारत करके प्रसिद्ध हुआ है।

सम्भव पर्व्वमें निनानवे अध्याय समाप्त।

श्री[illegible] बोले, कि धीमान शान्तनु सत्यवादी करके सब लोकोंमें प्रसिद्ध और देवता तथा राजर्षियोंसे सत्कार किये जाते थे। हे पुरुषश्रेष्ठ! महासत्त्व शान्तनुमें दम, दान, क्षमा, बुद्धि, लज्जा, धैर्य्य, और बड़ा प्रभाव यह सब गुण सदा विद्यमान थे। ऐसे सुगुणशाली, धर्म्मार्थपरायण वह राजा भरतवंश और सर्व्व जनोंके रक्षक थे; वह शङ्खसी ग्रीवायुक्त, वृहत् स्कन्धधारी उन्मत्त नाग ऐसे विक्रमी और और सम्पूर्ण अर्थ और राजलक्षणोंसे अलंकृत थे। मानववृन्दने उस कीर्त्तिमान पुरुषके चरित्रको देखकर यह ठहराया था, कि काम और अर्थसे धर्म्महो श्रेष्ठ है; पुरुषश्रेष्ठ महासत्त्व शान्तनुमें यह सब गुण थे। कोई पृथ्वीपाल धर्म्मके विषयमें उनके समान नहीं हो सके। भूपोंने उन राजाको धर्म्मपथमें वर्त्तमान और धार्म्मिकोंमें प्रधान देखकर राजाओंके प्रधान पद पर बैठाया; वे शोक, भय और बाधाओंसे रहित होकर सुखसे सोते और सुखसे जागते थे, सो भारतवर्षाधिप शान्तनुको उन्होंने पति समझा था। स्वर्गनाथके समान तेजस्वी कीर्त्तिमान उन सम्राटके शासनके अनुसार नरेशवृन्द यागशील, और सुक्रिया युक्त हुए थे। तब शान्तनु आदि भूपालोंसे प्रजा रक्षित और सुनियम भली भांति स्थापित होनेसे सर्व्व वर्णोंका धर्म्म बढ़ने लगा। क्षत्रिय लोग ब्राह्मणोंकी सेवामें, वैश्यलोग क्षत्रियोंकी सेवामें और शूद्र लोग ब्राह्मण और क्षत्रियोंके प्रेमी रहकर वैश्यों की सेवामें लगे रहे। राजा शान्तनु कुरुवंशियोंकी कुलक्रमिक रमणीय राजधानी हस्तिनापुरमें बसकर सागरसहित धरतीको शासने लगे। धर्म्मशील, सत्यवादी और सरल स्वभावी धरतीनाथ शान्तनु दान धर्म्म और तपस्याके बलसे देवराजके समान श्रीमान् हुए थे। वह क्रोध द्वेष-वर्जित देखनेमें चन्द्रमा ऐसे प्यारे, तेजमें सूर्य्य सदृश, वेगमें पवन समान, क्रोधमें यमराजकी भांति और क्षमागुणमें पृथ्वीकीनाईं थे। हे राजन्! उनके राज्यके समय पशु, सूवर, मृग, पक्षी आदि जीव नहीं मारे जाते थे। वह राज्यको अहिंसा रूपी ब्रह्मधर्म्मसे अलङ्कृत करके स्वयं कामक्रोधसे रहित, नम्र और यत्नशील होकर बिना पक्षपात सर्व्व प्राणियोंका शासन करते थे। उन दिनों देव-यज्ञ, ऋषियज्ञ और पितृयज्ञकी क्रिया होने लगीं; कोई अधर्म्म करके किसी जीवको मारता नहीं था। वह राजा दीन, दुःखी, अनाथ और पक्षी योनिमें जन्म लिये हुए सर्व्व जीवोंके पिताके समान थे; और उनके साम्राज्यके कालमें वाणी सत्यको आश्रय किया, और वह छत्तीस वर्ष तक स्त्री सम्भोगादि विषय भोगकर अन्तमें वनको सिधारे। गङ्गाके गर्भसे जन्मे वसु उनके पुत्र देवव्रत सुन्दरता, आचार चरित्र और विद्या सर्व्व विषयहीमें उनके सदृश हुए थे।

महाबलवीर्य्यवन्त महासत्वान महारथी

और गदादि सर्व्व अस्त्रोंके चलानेमें निपुण नृपवर शान्तनुने एक समय एक मृगको बाँधकर उसके पीछे जाते हुए निकटकी नदी भागीरथी गङ्गाको स्वल्प जलयुक्त देखा। पुरुषश्रेष्ठ शान्तनु वह देखकर सोचने लगे, कि इस जलभरी गङ्गामें आज क्यों पहिलेके समान सोता नहीं दिखता है? अनन्तर उसका कारण ढूंढ़ते हुए देखा, कि बड़ा भारी देखनेमें सुन्दर रूपधारी और देवराज सदृश सुन्दर एक कुमार तेजवाणजालसे गङ्गाजीके सोतोंको रोक कर दिव्यास्त्र चला रहा है। राजाने अपने पासहीमें नदीगङ्गाको वाणोंसे ढँपी हुई देखकरके बालकका अलौकिक आश्चर्य कार्य्य निहार कर अचरज माना। धीमान शान्तनुने पहिले जन्म लेनेहो पर पुत्रको देखा था,सो इस क्षण निज पुत्र करके पहिचाननेके योग्य कोई लक्षण उनके स्मरणपथमें आरूढ़ नहीं हुआ; कुमार पिताको देख करकेही मायासे उनको मुग्ध करके उस स्थानहीसे अन्तर्हित हुए। अनन्तर राजा शान्तनु वह आश्चर्य लीला देखकर शङ्कायुक्त होकरके गङ्गासे बोले, कि उस अन्तर्हित हुए कुमारको मुझे दिखाओ। गङ्गाने उत्तम रूप धरकर दहिने हाथमें उस अलंकृत कुमारको लेकर राजाको दिखाया। निर्म्मल वस्त्रसे भली भांति आवृता और नाना आभूषणोंसे सजी हुई गङ्गाको पहिले देखने परभी इस समय उन्होंने नहीं पहिचाना। तब गङ्गा बोलीं, कि हे पुरुषव्याघ्र नृपते! पहिले तुमने मेरे गर्भसे जो आठवां पुत्र लाभ किया था, यह वही पुत्र है। यह सम्पूर्ण अस्त्र विद्याओंमें अति पण्डित हुआ है। हे विभो, महाराज! इस पुत्रको मैंने बढ़ाया है, इसे घरको ले जाओ। यह कुमार युद्धमें देवराज समान बड़े चापधारी, अस्त्र विद्यामें दक्ष और वीर्य्यवान् हुआ है; तुम्हारे इस पुत्रने ऋषि वशिष्ठसे छओं अङ्गके सहित वेद पढ़ लिया है। हे भारत! यह सुर और असुर दोनोंके प्यारे हैं; असुरोंके गुरु उशना जिन जिन शास्त्रोंसे ज्ञात हैं, इस पुत्रने वह सब पढ़ लिये; और अङ्गिराके पुत्र तथा सुरासुरकोंके नमस्कारयोग्य वृहस्पतिजी जो जो शास्त्र जानते हैं, इस पुत्रने वह सबभी सीख लिये हैं। प्रतापी कठोर ऋषि जामदग्न्य राम जिन सब अस्त्रविद्याओंसे ज्ञात हैं, इस महाबाहु महात्मा पुत्रमें साङ्गोपाङ्ग वह सब विद्या अधिष्ठित हुई हैं। हे राजन्, हे वीर! धर्म्मार्थ कोविद महाधनुर्द्धरी तुम्हारे इस वीर पुत्रको मैं इस समय दे देती हूं, इसे घर लेते जाओ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि राजा शान्तनु गङ्गासे ऐसी आज्ञा पाकर दिवाकर सदृश दैदीप्यमान पुत्रको लेकर अपने पुरमें आये और उन्होंने पुरन्दरपुर ऐसी पुरीमें प्रवेशकर अपनेको अति सम्पदयुक्त और सिद्धकाम समझा। अनन्तर पौरववंशके राज्यको भले प्रकार रखनेके निमित्त अभय-देनेवाले और गुणशील महात्मा पुत्रको यौवराज्यमें अभिषिक्त किया। हे भरतर्षभ! महायशस्वी शान्तनुपुत्रने सुचरित्रसे अपने पिता, पौरवगण और प्रजावृन्द सबोंको प्रेमी बनाया था। अपरिमित विक्रमयुक्त महीपाल शान्तनुने अपने पुत्रके साथ आमोद आनन्दमें चार वर्षकाल काटा।

किसी समयमें उन महीपति शान्तनुने यमुनातटके वनमें जाकर एक प्रकारकी अनजानी अच्छी गन्धका घ्राण पाया। यह पता लगानेके लिये, कि कहांसे वह गन्ध आ रही थी, चारो ओर घूमघाम कर अन्तमें देवरूपिणी एक दासीको देखा; काली आंखवाली उस कन्याको देख करकेही उन्होंने पूछा, कि री भीरु! तुम कौन, किसकी बेटी हो? इस वनमें क्यों आई हो? कन्या बोली, कि तुम्हारा मङ्गल होवे, मैं दासकन्या हूं, महात्मा दासराज

मेरे पिता है। उनकी आज्ञासे मैं धर्मके लिये नाव चलाती हूं। राजा शान्तनुने उस दास-कन्याको रूपवती सुगन्धवती मधुरतासे मोहिनी और देवरूपिणी देखकर मनहीमनमें उसकी कामना की फिर उसके पिताके पास जाकर वह कन्या मांगी और यहभी पूछा, कि मुझसे विवाह कर देनेको सम्मत हो वा नहीं। दासराजने उनसे कहा, कि हे नरेश! इस सुन्दरीने जब जन्म लिया है, तभी निश्चय हुआ है, कि यह कन्या किसी वरको सम्प्रदान की जायगी, पर मेरी एक कल्पना है, उसे सुनिये; हे अनघ! आप सत्य-वादी हैं, अतएव यदि इस कन्याको धर्मपत्नी बनानेकी प्रार्थना करें, तो आपको मेरे पास सत्य करके एक बात अङ्गीकार करनी होगी। हे नृप! उसके अङ्गिकार करनेहीसे मैं कन्याको दान कर दूंगा। मेरे लिये, आपके समान सुपात्र फिर कभी न मिलेगा। शान्तनु बोले कि हे दास! कहो, तुम क्या वर मांगते हो। मैं सुनकर उसकी व्यवस्था करूंगा, यदि देने योग्य हो, तो दूगा, न देनेका हो, तो न दे सकूगा। दासराजने कहा, कि हे पृथ्वीनाथ! इस कन्याके गर्भसे जो पुत्र जन्म लेगा वह पुत्र आपके पीछे राजा होगा; उसीको अभिषिक्त करना होगा, दूसरे पुत्रको अभिषिक्त नहीं कर सकेंगे।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे भारत! राजा शान्तनु कठिन कामपीड़ासे जलने परभी दासको वह देनेको सम्मत नहीं हुए। वह उस दास-कन्याकी चिन्ता करते हुए कामसे चेत रहित होकर हस्तिनापुरको लौट गये; अनन्तर एक समय शान्तनु शोकसे विह्वल होकर सोच रहे थे, कि ऐसे समयमें पुत्र देवव्रतने आकर उनसे कहा, कि आपको सबप्रकारसे कुशल देखता हूं, सब राजालोग आपकी आज्ञावश हैं तिसपरभी आप क्यों दुःखित होकर शोक प्रगट कर रहे हैं? मुझे जान पड़ता है, मानों आप मेरेही विषयमें सोच रहे हैं। हे राजन्! मुझसे कुछ बात नहीं कहते हैं, पर मैं देखता हूं, कि आप पीले बदरङ्ग और दुबले हो गये हैं, अब घोड़ेपर चढ़कर घूमते नहीं; सो जानना चाहता हूं कि आपको कौनसी पीड़ा हुई है, मैं उसको दूर करनेका उपाय करूंगा। पुत्रकी यह बात सुनकर शान्तनु बोले, कि ऐ बेटा! यह सन्देह नहीं है, कि मैं शोचयुक्त हुआ हूं; उसका कारण सुनो। ऐ बेटा भरत-कुल प्रदीप! हमारे इस महतवंशमें एकमात्र सन्तान तुमने जन्म लिया है, पर तुम सदा अस्त्र चलानेमें नियुक्त और पौरुषकी इच्छा रखतेहो, सो मनुष्यकी अनित्यता समझ-कर मैं शोकयुक्त हुआ हूं! हे गाङ्गेय! यदि किसी प्रकार तुमको विपत होय, तो हमारा बंश नहीं रहेगा, पर इसमें सन्देह नहीं, तुम एक पुत्रही मेरे शत पुत्रोंसे श्रेष्ठ हो, इस हेतु मैं फिर विवाह करनेकी इच्छाभी नहीं करता, केवल बंशकी रक्षाके लिये इतनीही कामना करता हूं, कि तुम कुशलसे रहो; धर्मवादीलोग कहा करते हैं, कि जिसका एकमात्र पुत्र है, वह निःसन्तान है। अग्निहोत्र वेदाध्ययन और शिष्य प्रशिष्योंसे विद्याका प्रकार इन सबके अक्षयफल देनेवाले होनेसेभी पुत्रके सोलह भागके एकांशकेभी तुल्य नहीं होते और पुत्र जिस प्रकार मनुष्यके लिये मङ्गल साधनेहारा करके प्रसिद्ध है, उस प्रकार पशु पक्षी आदि सब जीवोंके लियेभी प्रसिद्ध हुआ है। हे महाप्राज्ञ! इसमें मुझे संशय नहीं है, कि पुत्रसे स्वर्ग प्राप्त होता है। सब पुराणोंकी जड़ और देवोंके प्रमाणभूत जो बेद हैं, उससे सदा इसका प्रमाण मिलता है। हे भारत! तुम शूर,अमर्षयुक्त और अस्त्र चलानेमें सदा नियुक्त रहते हो, इससे युद्ध-स्थलही में तुम्हारे नष्ट होनेकी सम्भावना

देखता हूं। ऐसा होनेसे वंशकी कैसी गति होगी? इसी लिये मैं संशययुक्त हुआ हूं। बेटा! तुमको दुःखके सम्पूर्ण कारणोंसे ज्ञात किया।

श्रीवैशम्पायनजी बोले कि महाबुद्धि देवव्रत राजासे वह सब कारण ज्ञात होकर बुद्धिसे कुछकाल सोच करके उसीक्षण परम हितैषी वृद्ध मन्त्रीके पास जाकर पिताके उस शोकके कारणका वृत्तान्त पूछा। हे भरतर्षभ! कुरुराज-पुत्रके यथावत् पूछने पर उस गन्धवती कन्याके लिये दासराजने जो वर मांगा था, मन्त्रीने वह कह सुनाया। अनन्तर देवव्रत वृद्ध क्षत्रियोंसे मिलकर स्वयं दासराजके साथ जाकरके पिताके लिये वह कन्या मांगी। दासराजने उनको विधिपूर्व्वक पूजकर स्वागत किया। हे भारत! देवव्रतके उस दासराजकी सभामें बैठनेपर दासराजने उनसे कहा, कि हे भरतर्षभ! आप शस्त्र धरनेवालोंमें श्रेष्ठ और शान्तनुके एक मात्र पुत्र हैं; आप सब विषयोंके कर्त्ता हैं, आपसे एक बात कहता हूं, सुनिये। कन्याके पिताके साक्षात् इन्द्र होने परभी ऐसे मानयुक्त और प्रार्थनीय सम्बन्धके छोड़नेसे उसको अवश्यही सन्तापित होना पड़ता है। जो पुरुष-प्रधान तुम्हारे ऐसे गुणवान हैं, उन्हींके वीर्य्यसे इस सत्यवती नामी सुन्दरी कन्याने जन्म लिया है; उन्होंने बहुवार मेरे पास आपके पिताका नाम लेकर कहा था, कि वह धर्म्मज्ञभूपाल सत्यवतीसे विवाह करनेके योग्यपात्र हैं; फिरभी ऋषिश्रेष्ठ देवर्षि असितने पहिले इस सत्यवतीके लिये वार वार प्रार्थना कीथी, मैंने उस पर ध्यान नहीं दिया। हे नृपोत्तम! मैं कन्याका पिता हूं, इस लिये यह एक बात कहता हूं, कि इसमें केवल एक बलवत सपत्न दोष है। हे शत्रुको पीड़ादेनेवाले! आप जिसके सपत्न हैं, यद्यपि वह गन्धर्व्व वा असुर होवे, तथापि आपके क्रोधित होनेसे वह कभी दीर्घकाल तक जी नहीं सकेगा, तौभी हे पृथ्वीनाथ! इस विषयमें इतनाही दोष है, कोई दूसरा दोष नहीं; हे परन्तप! आपका मङ्गल होवे, देने और नदेनेके विषयमें यही जानना।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे भरतवंशतिलक! गङ्गापुत्र देवव्रत दासराजकी यह बात सुनकर पिताके उपकारके लिये सब वृद्ध क्षत्रियोंके सामने बोले कि हे सत्यवादिन्! जानना, कि सत्यही मेरा व्रत है, मैं सत्य करके कहता हूं ऐसा मनुष्य जन्मा नहीं है, कि यह कहनेका उत्साही हो और यहभी जान नहीं पड़ता, कि पीछे जन्म लेगा। तुम जो अभिप्राय प्रगट करते हो, मैं वैसाही करूंगा, तुम्हारी इस कन्या के गर्भमें जो सन्तान उत्पन्न होगी, वह सन्तानही हमारे राज्यकी अधिकारी होगी। हे भरतर्षभ! उनकी यह बात सुनकर दासराजने राज्यके लिये कठोर कर्म्म करने पर होकर फिर यह कहा, कि हे धर्म्मात्मन्! अति प्रकाशमान् आप शान्तनु पक्षके कर्त्ता होकर आये हैं, पर इस कन्या दानकेभी आप कर्त्ता होवें। हे शान्तशील! इसस्थलमें और एकबात कहनीहै, उसका भी विधान आप कीजिये हे अरिन्दम! जिनको कन्या पर स्नेह है, उनको यह अवश्यमेव कहना पड़ता है, अतएव मैं कन्याके प्रेमसे ही कहता हूं। हे सत्यधर्म्मशील! इन राजाके बीचमें आपने सत्यवतीके निमित्त जो प्रतिज्ञाकी, वह आप जैसे महानुभाव हैं, उसके योग्यही हुआ। हे महावाहो! इस विषयमें मुझे कुछभी शङ्का नहीं है, कि उसका विपरीत नहीं होगा, पर आपकी जो सन्तान होगी उसके लिये मुझे बड़ा संशय होता है। वैशम्पायन बोले, कि हे राजन्! सत्य धर्म्मशील सत्यव्रतधारी, गङ्गानन्दन दासराजका अभिप्राय

जानकर पिताकी प्रीतिके लिये प्रतिज्ञा पूर्व्वक बोले; कि हे नृपोत्तम दासराज! मैं पिताके लिये इन राजाओंके सम्मुख यह कहताहूं सुनो। हे राजश्रेष्ठ! मैंने पहिलेही राज्य छोड़ दिया है, अब मेरे पुत्रके राज्य पानेके विषय में जो शङ्का कही गयी है, उसके निमित्तभी प्रतिज्ञा करता हूं; हे दास! मैं जितने दिन जीवित रहूंगा, आजसे तबतक के लिये ब्रह्मचर्य्य अवलम्बन करलेता हूं, इससे मेरे निःसन्तान होने परभी मेरा अक्षय स्वर्ग होगा। श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि धर्म्मात्मा दासराज उनकी वह बात सुनकर परमानन्दसे गद्गद होकर कन्यादानके लिये सम्मत हुए। अनन्तर आकाशसे अप्सरा गण और ऋषिगण गङ्गानन्दन देवव्रतके ऐसे भयानक संकल्पको सुनकर यह कहके, कि "यह भीष्म है उनपर फूल वर्षाने लगे। आगे भीष्म पिताके लिये उस यशस्विनी योजनगन्धा कन्यासे बोले, कि हे माता! रथपर आरूढ़ होओ, अपने घरको चलना होगा। वैशम्पायन बोले, कि भीष्मने यह बात कह कर भाविनी गन्धवतीको रथपर चढ़ाकर हस्तिनापुरमें गमन करके शान्तनुसे सब कह सुनाया। राजगणभी आकार सब मिल करके और हरेक मनुष्य पृथक रूपसे उनके उस दुष्कर कार्य्य की प्रशंसा करने लगे और बोले, कि इनके भयङ्कर कार्य्य करनेसे इनका नाम भीष्म हुआ है। महाराज शान्तनुने भीष्मकृत वह दुसाध्य कार्य्य सुनकर सन्तुष्ट होकरके उन महात्माको इच्छामृत्युका वर दिया।

सम्भवपर्व्वमें एकसौ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे महीपाल! अनन्तर विवाह होजाने पर राजा शान्तनुने रूपवती सत्यवतीको अपने घरमें स्थापन किया। उनके वीर्य्य और सत्यवतीके गर्भसे चित्राङ्गद नामक धीमान वीर्य्यवान पुरुष श्रेष्ठ एक वीरपुत्रने जन्म लिया। अनन्तर वीर्य्यवन्त प्रभु शान्तनुने उस सत्यवतीसे विचित्रवीर्य्य नामक बड़े चापधारी एक पुत्रको उत्पादन किया था। पुरुषश्रेष्ठ विचित्रवीर्य्य वयःप्राप्त होनेके पहिलेही धीमान शान्तनु कालके वशमें हुए। शान्तनुके स्वर्गको सिधारनेपर भीष्मने सत्यवतीके मतमें होकर अरिन्दम चित्राङ्गदको राज्य पर अभिषिक्त किया। चित्राङ्गदने शूरतासे सम्पूर्ण राजों को पराजय किया था। वह किसी मनुष्यको आत्मसदृश नहीं समझते थे; यह देखकर, कि वह सुर असुर मनुष्योंको पराजय कर सकते हैं, चित्राङ्गद नामक एक बलवन्त गन्धर्व्वराज उनके पास उपस्थित हुए। अनन्तर शान्तनु पुत्र चित्राङ्गदके साथ गन्धर्व्वराजचित्राङ्गदका कुरुक्षेत्रमें अत्यन्त कठोर युद्ध हुआ; गन्धर्व्वराज और कुरुराज दोनों महाबली थे; सो तीन वर्षोंतक सरस्वती नदीके तटपर दोनोंका युद्ध हुआ। हे रूपश्रेष्ठ! उसमें शस्त्रवृष्टियुक्त और मथनेहारा घोर युद्ध होनेके अन्तमें बड़ी बड़ी मायाधरनेवाले गन्धर्व्वराजने वीर कुरुनन्दनको रणमें गिरायाथा। गन्धर्व्वराज नरश्रेष्ठ, अरिन्दम, चित्राङ्गदको मारकर एकही कालमें नष्ट करके स्वर्ग पर जा चढ़े। अति तेजस्वी चित्रके हत होनेपर शान्तनुनन्दन भीष्मने उनकी सम्पूर्ण अन्तक्रिया सम्पन्न की थी। उसके पश्चात् उन महाभुज सत्यव्रतशील भीष्मने यौवन न पाये हुए, बालक विचित्रवीर्य्यको कुरुराज्यमें अभिषिक्त किया। महाराज! विचित्रवीर्य्य भीष्मके आज्ञानुसारी होकर पिताके राज्यको शासने लगे। वह धर्म्मशास्त्रज्ञ भीष्मको जिस प्रकार पूजते थे, भीष्मनेभी वैसेही धर्म्मानुसार उनका पालन किया था।

सम्भवपर्व्वमें एकसौ पहिला अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे कौरव! भ्राता चित्राङ्गदके मारे जानेपर बालक भ्राता विचित्रवीर्य्य को उपलक्ष कर भीष्म सत्यवतीके मतमें रहकर राज्य पालने लगे। अनन्तर धीमान् भीष्मने भ्राता विचित्रवीर्य्यको यौवन प्राप्त होते देखकर उनके विवाहका निश्चय किया। हे राजन्! अनन्तर उन्होंने सुना, कि काशी-राजकी अप्सरा-समान तीन कन्याओंका एकत्र स्वयम्वर होगा। महारथी शत्रुजित् प्रभु भीष्म माताकी आज्ञा लेकर प्रधान रथपर चढ़कर वाराणसीपुरीमें गये। उन्होंने वहां पहुंच-कर देखा, कि सर्व्वत्रसे राजालोग आकर उप-स्थित हुए हैं, और उनके बीचमें स्वयम्वरकी अभिलाषिणी वे तीन कन्याभी विद्यमान है। हे राजन्! जब सब राजाओंके नाम कहे जाने लगे, तब प्रभु भीष्मने स्वयं उन तीनकन्या-ओंको हर लिया और उन कन्याओंको निज रथपर चढ़ाकर बोलने लगे। बुधोंसे कथित हुआ है, कि गुणवान् वरको बुलवाकर यथा-शक्ति कन्याको अलंकृत करके धन दानपूर्व्वक सम्प्रदान करना, और दूसरे लोग दो गौ लेकर कन्यादान करते हैं। कोई कोई पण्डित धन लेकर कन्यादान करते हैं, कोई कोई बलपूर्व्वक कन्याको लेजाते हैं, कोई कोई कन्याकी सम्म-तिसे विवाह करते हैं, कोई कोई प्रमत्ता कन्यासे मिलते हैं, दूसरे लोग दान करनेवाले-को बुलाकर वा स्वयं जाकर कन्याको प्राप्त करते हैं और कोई कोई उचित विधानके अनु-सार दक्षिणाके स्वरूपमें कन्याको लाभ करते हैं, आठ संख्याओंमें गिने जाते हुए यह शेषोक्त विवाह कवियोंका प्रार्थनीय है; पर राजगण स्वयम्वरहीकी प्रशंसा करते हैं और उसमेंही उपगत होते हैं; परन्तु धर्म्मवादीजन कहते हैं, कि स्वयम्वरके स्थलसे विपक्षपक्षको दबा-कर बलपूर्व्वक जो कन्या लो जाती है, वह पत्नीही श्रेष्ठा है, इस कारण मैं बलपूर्व्वक इस स्थानसे कन्या हरता हूं, हे राजवृन्द! तुममें जिसकी जितनी शक्ति हो, उसके अनुसार जय-के लिये यत्नवान् होओ, अथवा हार मान जाओ। हे महीपतिगण! मैं युद्धके लिये निश्चित हो रहा हूं। वीर्य्यवान् कौरवनन्दन काशीराज और दूसरे महीपालोंसे ऐसा कह-कर कन्याओंको अपने रथपर ले करके राजा-ओंको युद्धार्थ बुलाकर शीघ्र पधारे।

अनन्तर सम्पूर्ण भूप क्रोधित होकर निज निज बड़ाई प्रगट करके दांतोंसे होंठ काटते हुए उठ खड़े हुए; और उनमेंसे किसी किसी ने क्रोधवश ऐसी शीघ्रताकी, कि उनके पहिने हुए आभूषण और कवचादि शरीरसे गिरने लगे, उनके वह गिरते हुए, कवच और आभू-षण तारोंके पतनके समान दीख पड़े। वह सब राजालोग इधर उधर कवच और अल-ङ्कारोंके गिर जानेसे क्रोध और अमर्षवश भौंहें चढ़ाय और आंखें बढ़ाय अस्त्र शस्त्र लेकर सारथियोंसे अच्छे घोड़े जोते हुए, प्रस्तुत सुन्दर रथोंपर चढ़के अस्त्र शस्त्र उठाकर चले जाते हुए भीष्मको पछियाते हुए चले। हे भारत! अनन्तर अकेले भीष्मसे उन सब राजाओंका रोंयें खड़ा करनेवाला घोर युद्ध होने लगा। राजा लोगोंने एकही कालमें भीष्मपर दश सहस्र बाण मारे, भीष्म ने उसीक्षण अर्थात् उन बाणोंके आ पहुंचनेके बीचपथहीमें रोंवें तक को बींधनेवाले घोर बाणोंको बिना रोक टोक की वृष्टिसे टुकरे टुकरे कर डाला। इस-के पीछे सब राजालोग चारों ओरसे उनको घेरकर जिस प्रकार बादलदल पर्व्वतपर बिना रोक टोक जल धारा वर्षाते हैं, उस प्रकार उनपर बाण वर्षाने लगे। तब भीष्मने बाण-जालसे उन सब बाणोंका वर्षना रोककर तीन तीन बाणोंसे हरेक महीपालको विद्ध किया। राजाओंमें सेभी हरेकने पांच पांच बाणोंसे भीष्मको विद्ध किया। हे राजन्! भीष्मने

फिर प्रभाव प्रगटकर दो दो बाणोंसे हर भूपको विद्ध किया। वह युद्ध इतना कठोर होने लगा, कि जो सब वीर देवासुरके युद्धके समान और शरशक्तियोंसे समाकुल उस घोर युद्धको देख रहे थे, उनके लियेभी यह भयानक हो गया. भीष्म युद्धस्थलमें कवच और शिर काटने लगे। तब रथ पर चढ़े हुए राजालोगोंने शत्रु पक्षी होने पर भी उनके अलौकिक आश्चर्य कार्य्य, शीघ्र हाथ चलानेका कौशल और आत्मरक्षाको देखकर उनको प्रशंसापूर्व्वक सम्मान प्रगट किया। अनन्तर शस्त्र धरने वालोंमें श्रेष्ठ भरतवंशतिलक भीष्मने युद्धमें राजाओंको पराजयकर कन्याओंके साथ निज नगर की ओर यात्रा की।

हे राजन्! जिस प्रकार महाबली हस्तीदलपति किसी हस्तिनीके प्राप्त किये हुए दूसरे हाथीके दो जंघाको फाड़ कर हस्तिनी को ओर दौड़ता है, उस प्रकार अमेयात्मा महारथी शाल्वराज स्त्रीकामी होकर युद्धके लिये भीष्मके पीछे दौड़े और वह महाभुज अमर्षयुक्त होकर "तिष्ठ तिष्ठ" ऐसा कहने लगे। शत्रुबल मथनेवाले पुरुषव्याघ्र भीष्म उस वाक्यसे आकुलित होकर क्रोधसे जलते हुए अग्नि समान जल उठे; क्षत्रिय-धर्म्ममें सच्चे निष्ठावान उस महारथीने लिलारको हिलोड़कर शर और शरासनको फैलाकर शाल्वराजके निमित्त निडर और स्थिर चित्तसे रथको रोक लिया। सम्पूर्ण राजालोग उनको निवृत्त होते देखकर भीष्म और शाल्व दोनोंका समागम देखनेके लिये खड़े होगये। ऋतुमती गौके लिये बलवन्त दो बैल जिस प्रकार तर्ज्जन गर्ज्जन करते हैं, वैसेही महाबली पराक्रमी दो भूप आपसमें विक्रम प्रगट करनेलगे। नरोंमें श्रेष्ठ शाल्वराजने शतसहस्र शीघ्रगामी शरोंसे भीष्मको ढांप लिया। राजालोग पहिलेही शाल्वराजसे भीष्मको मथे जाते देखकर अचरज मानकर शाल्वका बार बार साधुवाद करने लगे और शाल्वराज को लघुहस्तता और रणमें पण्डिताईको अवलोकन कर प्रसन्नचित्तसे बड़ी प्रशंसा करने लगे। अनन्तर शत्रुपुर-विजयी शान्तनुपुत्रने क्षत्रियों की वह प्रशंसा की वाणी सुन करके क्रोधयुक्त होकर "तिष्ठ तिष्ठ" यह बात कहो और क्रोधपूर्व्वक सारथीको आज्ञा दी, कि जहां वह शाल्वराज हैं, वहां रथको ले चलो; जिस प्रकार गरुड़ सर्प नष्ट करता है, उस प्रकार मैं आज उसका वाण नष्ट करूंगा। उसके अनन्तर कुरुनन्दन भीष्मने वारुणास्त्र छोड़कर उससे शाल्वराजके घोड़े नष्ट किये और अस्त्रसे शाल्वराजके सम्पूर्ण अस्त्र दूरकर उनके सारथीको यमराजका पाहुना बनाया। हे नरश्रेष्ठ! शान्तनुनन्दन भीष्मने कन्याओंके लिये ऐन्द्र अस्त्रसे उनके अच्छे घोड़ोंको मारा। इस प्रकारसे उन्होंने नृपश्रेष्ठ शाल्वराजको जीतकर जीवन शेष रहते हो छोड़ दिया। आगे राजाशाल्व निज नगर में जाकर धर्म्मानुसार अपना राज्य पालनेमें प्रवृत्त हुए। शत्रुपुर विजयी जो सब भूप स्वयम्बर देखनेको आये थे, वेभी निज निज राज्यको पधारे। महायोद्धा कुरु-पुत्र भीष्म इस प्रकार तीन कन्या जीतकर हस्तिनापुरमें उस स्थानकी ओर चले जिस स्थानमें कौरवराज विचित्रवीर्य्य विराज रहे थे। उनके पिता कुरुवंशी नृपश्रेष्ठ शान्तनु जिस प्रकार धरती शासते थे धर्म्मात्मा विचित्रवीर्य्यभी उस प्रकार शासन कर रहे थे। हे नराधिप! भीष्म स्वल्पकालके बीचमेंही वन, जल, पर्व्वत और भांति भांतिके वृक्षयुक्त उपवन अतिक्रम करने लगे। अनन्तर शत्रुकुल नष्टकर रणस्थलसे अक्षत शरीरमें काशीराजकी कन्याओंको ले आये;

उन धर्म्मशील महाभुज भीष्मने भ्राताके प्रियसाधनके लिये विक्रमसे लाभकी हुई

सर्व्वगुणयुक्त कुमारियोंको पुत्रवधू, छोटो बहिन और बेटीकी नाई लेकर कौरवोंके पास आकर कनिष्ठ भ्राता विचित्रवीर्य्यको देदिया। वह धर्म्मज्ञ उक्त प्रकार धर्म्मानुसार अलौकिक कार्य्य पूराकर भ्राता विचित्रवीर्य्यके विवाहके लिये प्रबन्ध करने लगे। जितेन्द्रिय भीष्म सत्यवतीसे परामर्श कर काशीराजकी कन्या-योंसे विचित्रवीर्य्यका विवाह कर देना निश्चय कर चुके थे, कि ऐसे समय उन कन्याओंमेंसे बड़ी कन्या हंसकर उनसे बोलो, कि मैं पहिले सौभराज्यके अधीश शाल्वको मनही मनमें पति बना चुकी थी, उन्होंनेभी मनहीमनमें मुझको भार्य्या बनाया था, इसमें मेरे पिताकी इच्छाभी थी, उस स्वयम्वर स्थलमें मैं शाल्व-हीको वरमाल देती, आप धर्म्मशील हैं; यह विचारकर धर्म्मानुसार कार्य्य कीजिये। उस कन्याके विप्रोंकी सभामें यहबात कहने पर धर्म्मज्ञ वीर भीष्म यह सोचने लगे, कि वर्त्तमान विषयमें क्या कर्त्तव्य है। आगे उन्होंने वेदपारग ब्राह्मणोंसे युक्ति निश्चयकर काशी नरेशकी अम्बा नाम्नो उस बड़ी कन्याको अपनी अभीष्टपूर्ण करनेकी आज्ञा दी। अन-न्तर यथाविधि कर्म्मानुसार अम्बिका और अम्बालिका नाम्नी काशीराजकी दो छोटी बेटियोंसे विचित्रवीर्य्यका विवाह कर दिया। रूप यौवनयुक्त धर्म्मात्मा विचित्रवीर्य्य अम्बिका, अम्बालिकका पाणिग्रहण कर कामानुवर्त्ती हुए। घूंघराले नीले केशवाली, लाल और तुङ्गनखयुक्त, काली और सुलक्षणा कल्याणी अम्बिका और अम्बालिका दोनों पीननितम्बिनी और पीनपयोधरा थीं। वे विचित्रवीर्य्य को अपना मनमाना पति पाकर सन्तोष पूर्व्वक उपासना करने लगीं। अश्विनीकुमार समान रूपवान् और देववतविक्रमी विचितवीर्य्य निरालेमें दोनों नारियोंहीके मनमें हर बने थे। वह उन नारियोंके साथ लगातार सात वर्ष बिहार कर यौवन कालहीमें भयानक क्षय रोगसे जकड़ गये। अनन्तर विश्वासी चिकित्सकों से आरोग्यके लिये मित्रोंके यत्न करने पर भी कुरुकुल प्रदीप बिचित्रवीर्य्य कालके वशमें होकर अस्ताचलको गये सूर्य्यके समान अदृश्य हुए। धर्म्मात्मा भीष्मने चिन्ता-युक्त और शोकवश होकर ऋत्विक और सम्पूर्ण कौरवोंके साथ सत्यवतीके मतानुसारी होके राजा विचित्रवीर्य्यके सब प्रेतकर्म्म भले प्रकार पूरे किये।

सम्भवपर्व्वमें एक सौ दूसरा अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे भारत! अनन्तर महाभागा भाविनी सत्यवतो पुत्र शोक-से विह्वल, दीन और क्षुब्धचित्त होकर पुत्र-वधुओंके साथ पुत्रकी और्द्धदैहिक क्रिया पूरी कर भीष्मको और दोनों पुत्रवधुओंको समझा बुझा कर मातृवंश और पितृवंशकी दशा शोच-के धर्म्म पर दृष्टि रखकरके भीष्मसे बोली, कि धर्म्मशील यशस्वी कुरुवंशी नरेश शान्तनुका बंश, कीर्त्ति और पिण्ड एक तुम्ही पर निर्भर है; और जिस प्रकार शुभ कर्म्मसे निश्चयही स्वर्ग होता है, और सत्यशीलता से निश्चयही आयु की वृद्धि होती है, उस प्रकार तुममें निश्चयही धर्म्म प्रतिष्ठित है। हे धर्म्मज्ञ! तुम धर्म्म और नानाप्रकारकी श्रुति और सम्पूर्ण वेदाङ्गोंसे संक्षेपमें और बिस्तृत रूपसे ज्ञात हो। शुक्र और अङ्गिरा की नाई तुम्हें धर्म्मशीलता और कुलाचार तथा विपत्कालमें विचार करने की सामर्थ्य भी है, यह सब मैं जानतीहूं. इसलिये मैं तुमसे बड़ा भरोसा पाकर तुमको किसी कार्य्यमें नियुक्त करूंगी। हे धार्म्मिकवर! यह सुनकर तुमको उसे पूरा करना चाहिये। हे पुरुषश्रेष्ठ! तुम्हारा प्रिय भ्राता मेरा पुत्र वीर्य्यवान विचित्रवीर्य्य पुत्र न होतेही बालेपनमें स्वर्गको सिधारा है।

हे भारत! तुम्हारे भ्राताकी रानी रूपयौवनयुक्ता, शुभलक्षणा यह काशीराजकी कन्यायें पुत्रकामा हुई हैं। हे महाभुज! हमारे वंश परम्परा की रक्षाके लिये मेरे नियोगसे उन दो पुत्रवधुओंके पुत्रोत्पादन कर धर्मरक्षा करो। तुम राज्यमें अभिषिक्त होकर भारत राज्यका शासन करो और धर्मानुसार विवाह करलो। पितरोंको मत डुबाओ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि माता और मित्रोंके ऐसा कहनेपर धर्मात्मा परन्तप भीष्मने धर्मसंयुक्त यह उत्तर दिया, कि हे माता! इसमें सन्देह नहीं है, कि आपने जो कहा, वह धर्मयुक्त है, पर सन्तानके लिये जो सत्य प्रण हुआ था उससेभी आप ज्ञात हैं, सो उस सत्यकी रक्षा के लिये फिर अभी प्रतिज्ञा करता हूं, कि त्रैलोक्यका राज्य त्याग दे सकता हूं, अथवा इससेभी अधिक जो कुछ हो, उसकोभी छोड़ सकता हूं, तथापि सत्यको किसी प्रकार छोड़ नहीं सकूंगा। यद्यपि पृथ्वी गन्धको छोड़ सके, जल निज रसको छोड़सके, ज्योतिरूपको छोड़ सके, पवन अनुभवगुणको छोड़ सके, सूर्य्यनिज प्रकाशको छोड़ सके, पुच्छलतारा गर्म्मी छोड़सके, आकाश शब्द को छोड़सके, चन्द्रमा ठंढी किरणको छोड़ सके, इन्द्र विक्रमको त्याग सकें और धर्म्मराज धर्म्मको त्याग सकें तथापि मैं सत्यको किसीप्रकार त्यागने को प्रवृत्त नहीं हूंगा। बहुबलधारी भीष्मके उत्साहसे ऐसा कहनेपर माता सत्यवतीने उनसे कहा, कि हे सत्यपराक्रमी! सत्यमें जो तुम्हारी परमनिष्ठा है, वह मैं जानती हूं। तुम इच्छा करनेसे निज तेजसे अन्य त्रिलोक रच सकते हो, औरभी तुमने मेरे निमित्त जो सत्य किया था, उससेभी मैं ज्ञात हूं; पर हे नृप! तुम इस विपदकी दशापर ध्यान देकर पैतृक वंशका भार लो। ऐसा करो, कि जिससे कुलकाक्रम नमिट कर धर्म्मरक्षा होवे और मित्रवर्ग आनन्दित होवें। यह सुनकर, कि सन्तान चाहने वाली सत्यवती कातर होकर ऐसी धर्म्मविरुद्ध बात वार वार कह रही है, भीष्मने फिर कहा, कि हे राज्ञी! आप धर्म्मपर दृष्टि कीजिये, हम सबोंको मत नष्ट करना, क्षत्रियका असत्यव्यवहार धर्म्मशास्त्रमें प्रशंसित नहीं होता। हे रानी! आपसे ऐसा सनातन क्षत्रियधर्म्म कहता हूं, कि जिससे भूमण्डलमें शान्तनुका वंश अक्षय बना रहे, आप उसे सुनकर लोकयात्रा पर दृष्टि रख करके पुरोहित और उनके साथ, कि जो सब प्राज्ञ धर्म्मार्थ विषयोंमें पण्डित हैं विचारिये।

सम्भवपर्व्वमें एकसो तीसरा अध्याय समाप्त।

भीष्मजी बोले, कि पूर्व्वकालमें जमदग्निके कुमार रामने पिताके वधसे दुःखी होकर परशुसे हैहय देशके अधीश कार्त्तवीर्य्यार्जुनको नष्ट किया था। जिस हैहयपतिने प्रजाओंसे अति कठोर धर्म्मका अनुष्ठान कराया था, परशुरामने उनके सहस्र भुजको काटकर, उससेभी न शान्त होकर फिर रथपर भूमण्डलको जीतनेके चाप लेकर महास्त्रोंके प्रयोगसे वारम्बार क्षत्रियकुलको नष्ट किया। उन महात्माने नाना अस्त्रोंसे इक्कीस वार धरतीको क्षत्रियोंसे खाली किया। उन महर्षिसे इस प्रकार भूमण्डलके क्षत्रियोंसे वर्जित होनेपर सब स्थानों की सम्पूर्ण क्षत्रियोंकी स्त्रियोंने वेदपारग ब्राह्मणोंसे सन्तान उत्पन्न करायी। वेदमें यह निश्चित है, कि जो जन विवाह करता है, उसके क्षेत्रमें सन्तान होनेसे उसकोही होती है, अतएव धर्म्म जानकरकेही क्षत्रिय पत्नियोंने ब्राह्मणोंसे संसर्ग किया था; इससेही क्षत्रियोंकी फिर उत्पत्ति हुई है। इस विषयमें और एक प्राचीन इतिहास कहता हूं, सुनिये, पूर्व्वकालमें उतथ्य नामक धीशील एक ऋषि थे; उनकी परम प्यारी ममता नाम्नी एक भार्य्या थी। एक

समय उतथ्यके कनिष्ठ भ्राता देवोंके पुरोहित और परम तेजस्वी बृहस्पति उस ममताके पास उपगत हुए, इससे ममता उन वाचस्पति देवरसे बोली, कि तुम्हारे बड़े भाईसे मैं गर्भवती हुई हूं; सो तुम लौट जाओ हे महाभाग बृहस्पति! मेरे गर्भमें स्थित इस उतथ्य मुनिने कोखमें स्थित होकरकेही षड़ङ्ग वेदको पाठ किया है, तुमभी अमोघ वीर्य्यवान् हो, सो "इस कोखमें" दो सन्तानोंका स्थान क्योंकर सम्भव हो सकताहै? इसलिये आज तुम लौट जाओ। ममताके ऐसा कहनेपर बृहस्पति अति-प्रदीप्त तेजस्वी होनेपरभी तब कामके वशमें अपने चित्तको रोक नहीं सके, अकामा कामिनी परभी अनुरागी हुए। अनन्तर वीर्य्यगिरानेमें उद्यत बृहस्पतिसे गर्भमें स्थित बालकने कहा, कि हे तात! आप शान्त होवें; इस गर्भमें दोको स्थिति सम्भव नहीं हो सकती। हे भगवान्! यह स्थान स्वल्प है, मैं पहिले यहां आया हूं, आप अमोघ वीर्य्यवान् हैं, सो मुझको पीड़ा न पहुंचावें। बृहस्पति उस गर्भमें स्थित मुनिकी बातको न मान कर मैथुनके लिये मनोहर नेत्रवती ममताकी ओर गये। अनन्तर गर्भमें स्थित उस मुनिने बृह-स्पतिके वीर्य्य गिरनेके समयको समझकर वीर्य्यघुसनेके पथको दोनों पावोंसे रोक रखा; तब वही वीर्य्य रोके जाकर स्थान न पानेसे उसी क्षण भूमिपर गिर गया। यह देखकर भगवान् ऋषि बृहस्पतिने क्रोधित होकर गर्भमें स्थित उतथ्य-पुत्रको लाञ्छन कर शाप दिया, कि जोकि ऐसे मनोहर कालमें तुमने मुझको ऐसी बात कही सो तुम दीर्घ अंधेरी में प्रविष्ट रहोगे अर्थात् अन्धे होगे। बहुत कीर्त्तियुक्त बृहस्पतिके इस शापके हेतु बृहस्पति-सदृश तेजस्वी वह ऋषि जन्म लेकर दीर्घतमा नामसे प्रसिद्ध हुए। वेदज्ञ, प्राज्ञ, जन्मान्ध दीर्घतमाने विद्याबलसे प्रद्वेषी नाम्नी एक तरुणी और रूपवती ब्राह्मणीको पत्नी प्राप्त किया। इससे महायशने कुलको बाढ़ानेके लिये गौतमादि पुत्रोत्पादन किये। वे गौतमादि सब पुत्र लोभ और मोहसे अभिभूत थे। धर्म्मात्मा वेदवेदाङ्गपारग महात्मा वह दीर्घतमा सुर-भीकी सन्तान कामधेनुसे सम्पूर्ण गोधर्म्म शिक्षा करके उससे श्रद्धायुक्त होकर निःशङ्क चित्तसे खुलाखुली मैथुनादि करनेको प्रवृत्त हुए। आश्रमनिवासी मुनिगण दीर्घतमा को मर्य्यादा छोड़ते देखकर मोहयुक्त और क्रोधित हुए और आपसमें कहने लगे, कि क्या आश्चर्य्य है! इसने मर्य्यादा और लज्जा त्याग दी है, सो यह पापात्मा आश्रममें रहनेके योग्य नहीं है; हम इसको आश्रमसे निकाल बाहर करें; और दीर्घतमाकी पत्नीभी पुत्र लाभके हेतु उस अन्धेपति पर सन्तुष्ट नहीं थी, एक समय दीर्घ-तमाने भार्य्याको असन्तुष्ट देखकर कहा, कि तुम क्यों मुझ पर विद्वेषका व्यवहार करती हो? प्रद्वेषी बोली, कि पति स्त्रीको भरते पोषते हैं; इस हेतु वह भर्त्ता कहे जाते हैं और पालते हैं, इससे पति कहे जाते हैं। हे महातपस्वि! मैं सदासे तुम्हारी जन्मान्धताके हेतु तुम्हारा और तुम्हारे पुत्रोंका भरण पोषण कर कर थक गयी हूं, अब और भरण कर नहीं सकूंगी।

भीष्म बोले, कि ऋषिने पत्नीकी बात सुन करके क्रोधयुक्त होकर पुत्रवती पत्नी प्रद्वेषीसे कहा कि मुझ को क्षत्रियोंके कुलमें ले जाओ, तो तुम धनवती बन सकोगी। प्रद्वेषी बोली, कि हे विप्रेन्द्र! तुम्हारे दिये हुए दुःखदायी धनकी मुझे इच्छा नहीं है, तुम जो चाहो करो, मैं पहिले की नाईं फिर भरण पोषण नहीं कर सकूंगी। दीर्घतमा बोले, कि मैं आजसे ऐसी लोक मर्य्यादा स्थापन करता हूं, कि नारी एक पतिपर जीवनभर निर्भर करेगी। एक पति जीवित रहे, वा मर जावे कोई स्त्री दूसरे

पतिको शरणाले नहीं सकेगी ; यदि कोई नारी दूसरा पति कर ले, तो वह पतित होगी, इसमें सन्देह नहीं। जिनके पति नहीं हैं, बात बातमें उनका पाप होगा और उनका प्रचुर धनभी रहे, तो उसका भोग व्यर्थ होगा। वे नित्य अकीर्त्ति तथा निन्दाकी पात्र होंगी ; ब्राह्मणी उनकी यह बात सुनकर अतिक्रोधयुक्त होकर बोली, कि हे पुत्री ! इसको गङ्गामें डाल आओ। आगे लोभ और मोह से अभिभूत गौतमादि पुत्रोंने अन्धे बापको बांधकर बेड़े पर रख करके गङ्गामें बहा दिया। अनन्तर वे कुटिल पुत्र यह सोचते हुए घरको लौटे, कि इस अन्धे और बूढ़ेको हम क्यों भरने पोषने चले। आगे अन्धेविप्र बेड़े पर गङ्गाके सोतेमें बहते हुए, मनमाने अनेक देशोंसे हो चले। धार्म्मिकवर बलि नाम एक राजाने गङ्गास्नानको जाकर सोतेसे निकट आये हुए, उन अन्धे ऋषिको देखा। बलि उनको सत्यपराक्रमी धर्म्मशील जानकर अपने घरमें लाये और अपने पुत्रके लिये उनसे प्रार्थना कर बोले, कि हे मानद, महाभाग ! मेरे वंश की रक्षाके लिये मेरी स्त्रीसे सन्तान उत्पन्न कीजिये, कि धर्म्म और अर्थमें कुशल होवे। तेजस्वी ऋषिके राजाको उस बात पर सम्मत होने पर राजाने उनके पास अपनी सुदेष्णा नाम्नी स्त्रीको भेज दिया ; पर राजरानी सुदेष्णाने उनको अन्धा और बूढ़ा देखकर स्वयं उनके पास न जाकर अपनी दासीको भेजा। धर्म्मात्मा ऋषिने उस शूद्रयोनिमें काक्षीवदादि ग्यारह पुत्र उत्पन्न किये। अनन्तर राजाने काक्षीवदादि पुत्रों को शठनशील देखकर यह उस अन्धे ऋषिसे कहा, कि "यह मेरे पुत्र हैं।" परन्तु महर्षिने कहा, कि यह तुम्हारे पुत्र नहीं हैं, यह मेरे हैं, इन्होंने मुझसे शूद्रयोनिमें जन्म लिया है। सुदेष्णा नामी तुम्हारी रानीने मूर्खता हेतु मुझको अन्धा और बूढ़ा देखकर, अनादर करके शूद्रा दासियोंको भेज दिया था। अनन्तर बलिने फिर उन ऋषिको प्रसन्न करके अपनी स्त्री सुदेष्णाको उनके पास भेजा। ऋषि दीर्घतमा देवी सुदेष्णाके अङ्गोंको स्पर्शकर बोले, कि तुम्हारे आदित्य समान तेजस्वी पुत्र उत्पन्न होंगे ! उन पुत्रोंके नाम अङ्ग, बङ्ग, कलिङ्ग, पुण्ड्र और सुह्म होंगे ; इस भूमण्डलमें उनके निज निज नामसे एक एक देश प्रख्यात होगा। अङ्गके नामसे अङ्गदेश बङ्गके नामसे बङ्गदेश, कलिङ्गके नामसे कलिङ्गदेश पुण्ड्रके नामसे पुण्ड्रदेश और सुह्मके नामसे सुह्मदेश होगा। पूर्व्वकालमें इस प्रकार महर्षिसे जन्म लिया हुआ राजा बलिका वंश प्रसिद्ध हुआ था। इनके अतिरिक्त महाबल पराक्रमी परम धर्म्मज्ञ बड़े बड़े चापधारी बहुतेरे क्षत्रियोंने ब्राह्मणोंके वीर्य्यसे जन्म लिया था ; हे मा ! आप यह सुनकर जो मन चाहें करें।

सम्भवपर्व्वमें एकसौ चौथा अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, कि हे माता ! भरतवंश की सन्तान बढ़ानेके लिये योग्य उपाय कहता हूं, सुनिये ; किसी गुणवन्त ब्राह्मणको धन देकर नेवता दीजिये ; वह विचित्रवीर्य्यके क्षेत्रमें पुत्रोत्पादन करेंगे। वैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर सत्यवती मुंह नीचे कर लज्जाके साथ टूटी फूटी बातोंमें भीष्मसे बोली, कि हे महाभुज, भारत ! तुम जो कहते हो, सब ठीक है। परन्तु तुम पर विश्वास रखनेके हेतु अपने वंश की वृद्धिके लिये जैसा कहूंगी, उस आपद्धर्म्मको तुम पलट नहीं सकोगे। हमारे वंशमें तुम्हीं धर्म्म, तुम्हीं सत्य और तुम्हीं परमा गति भये हो, सो मेरी सत्य बातको सुनकर आगे जैसा कर्त्तव्य होवे, वही करो।

मेरे पिता धार्म्मिक थे ; उनकी धर्म्म कर्म्म के लिये एक नाव थी, एक समय में अपने

नवयौवनके दिनोंमें उस नावको चलाती थी, कि उस समय धीमान् धार्म्मिक श्रेष्ठ परमर्षि पराशर यमुना नदीके पार उतरनेके लिये आकर मेरी नावपर चढ़ बैठे। मैं उन मुनिश्रेष्ठको यमुना पार कर रही थी, कि ऐसे समयमें वह कामवश होकर मीठी बातेंमें मुझको लुभाने लगे। हे भारत! मैं पिताके भय और ऋषिके शापका भय खाकर मूल्यवान वर पाकर उनकी बात पलट नहीं सकी; हे भारत! उन ऋषिने मुझको नावपर स्थित और बालिका पाकर तेजसे विवश कर अंधेरोसे भूमण्डलको छायकर अपने वशमें कर लिया। पहिले मेरे शरीरमें मछली की बड़ी बुरी गन्ध थी, उन्होंने उसको भगाकर यह सुन्दर गन्ध कर दी। अनन्तर बोले; कि तुम इस यमुना द्वीपही पर मेरे वीर्य्यसे पैदा हुए, इस गर्भको छोड़कर फिर कन्यावस्थाहीमें रहोगी। उससे यमुनाके द्वीप पर मेरी कन्यावस्थाके उस गर्भसे पराशरके पुत्र महर्षि महायोगी जन्म लेकर द्वैपायन नामसे प्रसिद्ध हुए। वह भगवान् ऋषि तपके प्रभावसे चारोंवेदोंके व्यास अर्थात् विभाग कर व्यास नामसे प्रख्यात हुए हैं और कृष्णवर्ण होनेसे उनका नाम कृष्ण हुआ है। सत्यवादी शान्तिशील और पापरहित वह महात्मा जन्म लेकरकेही उसीक्षण पिताके साथ चले गये थे, उन अप्रतिम द्युतिमान व्यासको मेरे नियुक्त करनेसे वह तुम्हारे भ्राताके क्षेत्रमें उत्तम पुत्र उत्पन्न कर सकते हैं। हे महाभुज! उन्होंने पहिले मुझसे कहा था, कि प्रयोजन होवे, तो मुझे स्मरण करना। हे भीष्म! यदि तुम चाहो, तो अब उनको स्मरण करूं, तुम्हारी सम्मति होनेसे वह महातपा द्वैपायन अवश्य ही विचित्रवीर्य्यके क्षेत्रमें सन्तान उत्पादन करेंगे।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि उन महर्षि कृष्णद्वैपायनको नाम कहतेही भीष्मने दोनों हाथ जोड़कर कहा, कि जो धर्म्म, अर्थ और काम इन विषयोंको भली प्रकार आलोचना करते हैं और इस प्रकार उन सबोंका अनुष्ठान करते हैं, कि धर्म्मके साथ भावी धर्म्मका, अर्थके साथ भावी अर्थका और कामके साथ भावी कामका सम्बन्ध रहे अर्थात् धर्म्मसे धर्म्मकी अर्थसे अर्थकी और कामसे कामकी फिर सम्भावना बनी रहे और एक विषयसे अन्य विषयका जोड़ न रहे; वही बुद्धिमान कहे जाते हैं। आपने मेरे कुलका हितजनक धर्म्मयुक्त और मङ्गलकारी जो वचन मुझसे कहा, उससे मैं पूर्ण रूपसे सम्मत हूं।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे कुरुनन्दन! अनन्तर भीष्मके उस विषयमें सम्मत होने पर कालीने मुनि कृष्णद्वैपायनका स्मरण किया। धीमान वेदव्यास वेदकी व्याख्या कर रहे थे, कि ऐसे समयमें माताकी चिन्ता जानकर क्षण कालमें माताके सम्मुख प्रगट हुए, दूसरा कोई कुछ जान नहीं सका। आगे धीवर की बेटीने पुत्रका विधिपूर्व्वक समादर कर हाथोंसे गले लगाकर स्तन दुग्धसे नहाया और बहुकालके पीछे पुत्रको देखकर अश्रुजलसे आपभी नहा गयी। पूर्व्व पैदा भये पुत्र व्यास दुःखिता माता पर जल छोड़ ठण्डाकर प्रणामपूर्व्वक बोले, कि हे धर्म्मतत्त्व जाननेवाली! आपकी जैसी इच्छा है, उसको पूरी करनेके लिये मैं आया हूं, हाप आज्ञा कोजिये, अपका मनमाना अनुष्ठान करूंगा। अनन्तर पुरोहितने आकर उन परमर्षिको यथाविधि पूजा की; उन्होंने भी मन्त्रसे वह पूजा ली और मन्त्रसे उपासना किये जाकर प्रसन्न हुए। आगे माता सत्यवतीने उनको आसन पर बैठे हुए देखकर कुशल पूछ करके कहा, कि हे कवि! पितासे जो पुत्र उत्पन्न होते हैं, वे पिता माता दोनोंमें साधारण होते हैं। पुत्र पर पिताका जैसा अधि-

कार है, इसमें सन्देह नहीं है, माताका भी वैसाही अधिकार रहता है। हे ब्रह्मार्थ! दैवविधानसे पैदा भये तुम मेरे जिस प्रकार प्रथम पुत्र हो, विचित्रवीर्य्यभी उस प्रकार मेरा कनिष्ठ पुत्र था और विचित्रवीर्य्य तथा भीष्म एक पिताके पुत्र होनेसे भीष्म जिस प्रकार विचित्रवीर्य्यके भ्राता भये हैं, उस प्रकार तुम और विचित्रवीर्य्य एक माताके गर्भसे पैदा-होनेके कारण यह मुझको समझ पड़ता है, कि तुमभी विचित्रवीर्य्यके भ्राता भये हो, आगे तुमको जैसी समझ हो। यह शान्तनुपुत्र सत्यविक्रमी भीष्म सत्य पालनेके लिये राज्य शासन, पुत्रोत्पादन करनेको सम्मत नहीं होते, अतएव हे अनघ! मैं जो कहती हूं, सुनकर अपने भाई विचित्रवीर्य्य पर स्नेहवश होके कुरु-वंशको रक्षा, प्रजाका पालन भीष्मकी बात, मेरा नियोग सर्व्वजीवों पर कृपा और अनिर्द्दिष्टिताके लिये वह तुमको पूरा करना चाहिये। तुम्हारे कनिष्ठ भ्राताकी देवकन्या समान रूप यौवनवती दो भार्य्या हैं, वे धर्म्मानुसार पुत्रकामा हुई हैं। ऐ बेटा! तुम मनमाने पात्र हो, सो उन दो रानियोंसे इस कुलकी परम्पराको बनाये रखनेके योग्य पुत्रोत्पादन करो।

व्यासजी बोले, कि हे अतिबुद्धिमती सत्यवती! आप इसलोक और परलोक दोनों प्रकारके धर्म्मसे जिस प्रकार ज्ञात हैं; उस विषयमें आपका चित्तभी उसी प्रकार प्राणियोंके हितमें है; अतएव मैं आपके नियोगके अनुसार धर्म्मको स्मरणकर आपकी इच्छा पूरी करूंगा, क्योंकि यह सनातनधर्म्म मेरा ज्ञात है मैं भ्राताको मित्र-वरुण-सदृश पुत्र दान करूंगा; पर अब यह एक नियम बना देता हूं, कि वधूगण न्यायानुसार वर्षभर व्रत किये रहैं; तभी वे शुद्ध होंगी, व्रत न करके कोई नारी मेरे पास नहीं आसकेगी। सत्यवती बोली, कि ऐसा करो, कि जिससे देवी राजरानियां आजही गर्भवती होवें। राज्य राजासे खाली रहनेपर प्रजा अनाथ होकर नष्ट होंगी, क्रिया लोप हो जायगी, वृष्टि नहीं होगी और देवगण चले जायंगे, सो बिना राजाके राज्य की क्योंकर रक्षा हो सकती है; अतएव तुम आजही गर्भाधान करो, भीष्म उस गर्भजात बालकको बढ़ावेंगे। व्यासजी बोले, कि यदि विलम्ब न कर अकालहोमें पुत्र देना पड़े, तो रानियां मेरे कुरूपको सहैं, यही उनका परम व्रत होगा। यदि कौशल्या मेरी गन्ध, रूप, वेश और शरीरको सहसके, तो वह आजही विशिष गर्भ ले।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि महातेजस्वी व्यासजी सत्यवतीसे यह बात कहकर फिर बोले, कि राजमहिषी कौशल्या अच्छा शुद्ध वस्त्र पहिन करके अच्छे आभूषणोंसे सजकर मेरे मिलन की कामना करे; सत्यवती पुत्रवधूके पास जाकर निरालेमें भेंटकर धर्म्म और अर्थ-युक्त और हितजनक यह बात बोली, कि हे कौशल्ये! तुमसे धर्म्म-सम्मत जो बात कहती हूं, सुनो। मेरे दुर्भाग्यसे भरतवंश उखड़ गया है, उससे भीष्मने मुझको पीड़ित देखकर और पिताके वंशको उखड़नेपर विचारकरके कुल बढ़ानेके लिये मुझको युक्ति दी है, ऐ बेटी! वह युक्ति तुम्हारे अधीन है, अतएव तुम मेरा अभीष्ट सिद्धकर उस युक्तिको सफल करो, विनष्ट भरतवंशका फिर उद्धार करो। री सुन्दरी! देवराज समान कुमार प्रसव करो; वह कुमार हमारे इस भारी राज्यके भारको सम्भाल लेगा। सत्यवतीने उस धर्म्म-चारिणीको धर्म्मानुसार विनय करके किसी प्रकार सम्मत कराके देव, ऋषि, ब्राह्मण और अतिथियोंको भोजन कराया।

सम्भवपर्व्वमें एकसौ पांच अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर वधू कौशल्याके योग्य समय में ऋतु-स्नान करने पर सत्यवती उसे भले प्रकार सजे हुए विस्तर पर बैठाकर धीमे स्वरसे बोली, कि हे कौशल्ये! तुम्हारे एक देवर हैं; वह आज रात्रिको तुम्हारे पास आवेंगे; तुम एकमन होकर उनकी बाट ताकती रहो। अम्बिका सासकी वह बात सुनकर सुभ शयनमें सोकर भीष्म और दूसर कुरुश्रेष्ठोंकी चिन्ता करने लगी। अनन्तर सत्यवतीके सुत सत्यवात बोलनेवाले ऋषिने पहिले अम्बिकाके लिये नियुक्त होकर दीप जलते रहते ही घरमें प्रवेश किया। अम्बिकाने उन कृष्णवर्ण पुरुषकी पिङ्गल जटा, बड़ी भारी दाढ़ी और जलते हुए नेत्रोंको देखकर आंखें मूद लीं। द्वैपायनने माताका प्रिय साधनेके लिये उसके साथ सङ्गम किया; पर काशी राजकी कन्या भयसे उनको देख नहीं सकी। अनन्तर व्यासजीके घरसे निकलने पर उनकी माताने उनसे पूछा, कि क्यों बेटा। इस वधूसे गुणवान पुत्र जन्म लेगा? इन्द्रियोंसे अतीत ज्ञान रखनेवाले सत्यवतीनन्दन व्यासजी माताकी यह बात सुनकर बोले, कि विधिपूर्व्वक जन्म लिया हुआ यह गर्भमें स्थित बालक दश सहस्र हस्ती के समान बलवान; विद्वान राजर्षियोंमें श्रेष्ठ, महाभाग, महा वीर्य्यवन्त और अति बुद्धिमान होगा और उस महात्मासे सौ सन्तान उत्पन्न होंगी; पर वह माताके दोषसे अन्धा होगा। पुत्र की बात सुनकर माता बोली, कि हे तपोधन! अन्धा पुरुष कुरुवंशके योग्य भूप नहीं हो सकता; अतएव जाति कुलके रक्षक पितरोंके वंशधर और कुरुवंशका राजा होसके, ऐसा एक पुत्र उत्पन्न करना होगा। महायशा व्यास उसपर स्वीकृत होकर चले गये। आगे समय आने पर कौशल्याने ऋषिकथित एक अन्धापुत्र प्रसव किया। हे अरिन्दम! देवी सत्यवतीने पूर्व्ववत पुत्रवधूको आज्ञा देकर फिर उन ऋषिको बुलाया। महर्षि पूर्व्ववत विधिके अनुसार अम्बालिकाके पास आकर उपगत हुए। हे भारत! अम्बालिका उन ऋषिको देखकर पीली हो गयी। सत्यवतीके सुत व्यासजी उसको भीत, दुःखित और पीली देखकर बोले, कि इस कारण, कि तुम मुझको विरूप देखकर पीली हुई हो, तुम्हारा पुत्रभी पीला होगा। हे शुभानने! वह पुत्र पीला अर्थात् पाण्डु नामहीसे प्रख्यात होगा। हे भगवान् ऋषिश्रेष्ठके यह बात कहकर घरसे निकलने पर सत्यवतीने उनसे सन्तानकी बात पूछी। व्यासने माताको फिर पुत्रके पीला होनेका विषय कह सुनाया। सत्यवतीने वह सुनकर फिर उनसे और एक पुत्रकी प्रार्थना की; महर्षिने वहभी स्वीकार किया। अनन्तर समय आनेपर देवी अम्बालिकाने सुन्दर श्रीयुक्त पाण्डुवर्ण एक कुमार प्रसव किया, जिनके पुत्र पांच पाण्डव बड़े चापधारी भये थे। अनन्तर बड़ी वधूका ऋतु काल आनेपर सत्यवतीने उसको उन ऋषिके निकट नियुक्त किया; पर उसने ऋषिके शरीरको वैसी गन्ध आरणकर देवीके वाक्यानुरूप कर्म्म नहीं किया। अनन्तर देवकन्या सदृशी उस काशीराज पुत्रीने अप्सरा समान एक दासीको अपने आभूषणों से अलङ्कृता कर कृष्णद्वैपायनजीके निकट नियोग किया। आगे ऋषिके आनेपर दासी उठकर नमस्कार पूर्व्वक ऋषिकी आज्ञानुसार उनको उपचरित और सत्कृत कर विस्तर पर जा बैठी। हे राजन्! व्रतशील महर्षि निरालेमें उससे सहवासमें कामको भोगकर उस पर अति प्रसन्न हुए और उठकर जानेके काल उससे बोले, तुम्हारा दासीपन मुक्त होगा। हे शुभे! तुम्हारे गर्भमें स्थित सन्तान धर्म्मात्मा मङ्गलभाजन और बुद्धिमान जनोंमें सबसे श्रेष्ठ होगी। महाराज! श्रीकृष्णद्वैपायनजी के वीर्य्य और

उसके गर्भसे धृतराष्ट्र और महात्मा पाण्डुके भाई विदुरने जन्म लिया। अर्थ तत्व जाननेवाले और जितेन्द्रिय श्रीकृष्णद्वैपायनजीने माताके निकट आकर महात्मा माण्डव्यके शापसे धर्म्मका विदुरके स्वरूपमें जन्म और अपनी सामने दासीका नियोग, और उससे पुत्रके स्वरूपमें धर्म्मका जन्म यह सब कह सुनाये। अनन्तर वह उस गर्भकी कथा माताके निकट कहकर धर्म्मानुसार ऋणसे छुटकारा कृपाकर उस स्थानही में अन्तर्हित हुए। हे भूप! श्रीद्वैपायनजी के वीर्य और विचित्रवीर्य्यके क्षेत्रमें कुरुकुलके बढ़ानेवाले देवकुमार समान कुमारों ने इस प्रकार जन्म लिया था।

सम्भवपर्व्वमें एक सौ छः अध्याय समाप्त।

जनमेजय बोले, कि धर्म्मने कौनसा कर्म्म किया था, कि उस कारण शापसे ग्रसित हुए और किस ब्रह्मर्षिके शापसे शूद्र योनिमें जन्म लिया?

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि माण्डव्य नामसे प्रसिद्ध सर्व्व धर्म्मज्ञ धृतिमान् सत्यनिष्ठ और तपमें नियुक्त एक महातपा महायोगी ब्राह्मण एक समय आश्रमके द्वारपर स्थित वृक्षकी जड़में ऊर्ध्वबाहु और मौनी होकर बहुत दिनोंसे तप कर रहे थे, कि ऐसे समयमें एकदिन लुटेरे लूटी हुई वस्तुओंको लेकर उनके उस आश्रममें आये। हे भरतवंशश्रेष्ठ! उनके पीछे रखवारे आरहे थे; सो वे भय खाकर रखवारोंके आते न आते उस आश्रममें लूटे हुए धनको छिपाकर आपभी वहीं रहे। अनन्तर चोरों को पछियाते हुए पैदल रखवारे उसीक्षण उस स्थानमें आपहुंचे। हे राजन्! उन्होंने उस दशामें तपस्वी उस ऋषिको देखकर पूछा, कि हे द्विजवर! लुटेरे किस पथसे गये? हे ब्राह्मण! कह दीजिये, हम शीघ्र उस पथमें जायंगे। हे राजन्! रखवारोंके उस प्रकार पूछनेपर तपोधन माण्डव्यने भली बुरी कुछ नहीं कही। अनन्तर राजपुरुषोंने उस आश्रममें ढूंढ़ते हुए चुराये हुए पदार्थोंके साथ चोरोंको पाया। आगे उन मुनिपर रखवारोंका सन्देह होनेपर उन्होंने लुटेरों और मुनिको बांधकर राजाके पास दे दिया। राजाने लुटेरोंके साथ मुनिकोभी मारनेकी आज्ञा दी। रखवारोंने महातपा माण्डव्य को न जानकर शूलीपर चढ़ा दिया; अनन्तर चुरायी हुई, वस्तुओंको लेकर राजाके यहां गये! धर्म्मात्मा विप्रर्षि बहुकाल शूलीपर चढ़े हुए और विना भोजन रहने परभी मृत्युके मुखमें न गिरे। वह तपके बलसे जीवित रहे, आगे ऋषियोंको अपने पास बुलवाया। हे भारत! तपोबलयुक्त मुनिलोग रात्रिकी पक्षियोंका स्वरूप लेकर उनके पास आकरके उन महात्माको शूलीके ऊपर तपमें मग्न देखकर, अति दुःखी हुए और उन्होंने निज निज रूप लेकर द्विजोत्तमसे पूछा, कि हे ब्रह्मन्! हम सुना चाहते हैं, कि तुमने कौन सा पाप किया है, कि इस शूलीका भारी दुःख और भय सहना पड़ता है।

सम्भवपर्व्वमें एकसौ सात अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर मुनि शार्द्दूल माण्डव्यने उन तपोधनोंसे कहा, कि मैं किसको दोष लगाऊं, कोई और मनुष्य इस विषयमें दोषी नहीं है। हे नराधिप! अनेक दिनोंके पीछे रखवारोंने उनको उस दशामें देखकर राजासे सब हाल कह सुनाया। वह सुनकर भूपाल तब मन्त्रियोंसे युक्ति करके, उस शूलीपर स्थित ऋषिको प्रसन्न करनेके लिये विनयके साथ कहने लगे, कि मैंने मोहवश अज्ञानतासे आपकी हानि की है, अब आपकी प्रसन्नताके लिये प्रार्थना करता हूं, आप मुझपर क्रोधित न होवें। राजाकी

ऐसी बात सुनकर, मुनि प्रसन्न हुए। भूपाल उनको प्रसन्न देखकर शूलीके खम्भेसे उतारकर उसे निकालने लगे; पर उससे मनोरथ सफल नहीं हो सका, आगे देहके भीतर घुसी हुई शूलीको जड़ काट डाली। तब मुनि भीतर घुसीहुई शूलीको ले करकेही कठोर तपस्या करने लगे; उससे औरोंके लिये दुर्लभ पुण्यलोकको जीत लिया। वह अणी अर्थात् शूलीके अगले भागको लिये रहनेके कारण अणि तत्त्वज्ञ ब्राह्मण अणि माण्डव्य एक समय धर्म्मके पास गये। धर्म्मको वहां बैठे देखकर प्रभु अणि-माण्डव्य उनको लाञ्छन कर बोले, कि मैंने अज्ञानतासे कौनसा कुकर्म्म किया है, कि जिससे ऐसा फल पाया? इसका गूढ़ तत्त्व मुझसे शीघ्र कहो और मेरी तपस्याका प्रभाव देखो। धर्म्म बोले, कि तुमने एक दिन पतंगे की पूछमें इषीका अर्थात् तिनका घुसाया था, हे तपोधन! तुमने उस कर्म्मका यह फल प्राप्त किया है। अणि-माण्डव्य बोले, कि हे धर्म्म! मेरी बाल्यावस्थामें किये हुए छोटेसे दोषका तुमने ऐसा कठोर दण्ड दिया है, इस हेतु तुम मनुष्य होकर शूद्र योनिमें जन्म लोगे। आजसे मैं कर्म्मके फल भोगनेके विषयमें लोकोंमें यह नियम स्थापन करता हूं, कि जब तक चोदह वर्षकी आयु पूरी न होवे तबतक पाप करनेसेभी पाप नहीं होगा! चोदह वर्षके पीछे पापकर्म्म करनेसे उसके फल की प्राप्ति होगी।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि इस दोषके हेतु महात्मा अणि माण्डव्यके शापसे धर्म्मने विदुरके स्वरूपमें शूद्रयोनिमें जन्म लिया था; पर वह धर्म्म और अर्थके विषयमें पण्डित क्रोध और परिणामदर्शी होकर कुरुवंशके हित साधनेमें सदा उत्साही थे।

सम्भवपर्व्वमें एकसौ आठ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले; कि अनन्तर उन तीन कुमारोंके जन्म लेने पर कौरवगण, कुरुजाङ्गल देश और कुरुक्षेत्र इन तीनोंकी पूरी उन्नति हुई। तब भूमिमें बहुत शस्य उपजने लगे, शस्य रसयुक्त हुए, बादलोंके उचित समयमें वृष्टि करनेसे वृक्षोंके अपरिमित फल और फूल होने लगे। उनदिनों सब वाहन प्रसन्न, मृग पक्षी प्रमुदित, माला गन्धयुक्त और फल अच्छे रसयुक्त होते थे। तब नगर, वाणिज्य, और शिल्प पर जीनेवालोंसे भरा पूरा था; और शूरलोग, विद्वानलोग और साधुगण सुखी होने लगे। उस समयमें कोई लुटेरा वा अधर्म्मशील न था, सो राज्यके सब प्रदेशोंमें मानो सत्ययुग प्रवृत्त हुआ। प्रजा धर्म्मशील, यागशील, सत्यशील, और आपसमें प्रेमशील होकर विशेष रूपसे बढ़ने लगी। सम्पूर्ण जन क्रोध लोभ और अभिमानवर्ज्जित होकर धर्म्मानुसारही परस्पर आनन्द मानने लगे। उस कालमें वह नगर बड़े भारी समुद्रके समान भरा सैकड़ों बड़े बड़े भवनोंसे पूरा और बादल दलके सदृश द्वार और तोरणोंसे संयुत होकर अमरावती कीसी अपूर्व शोभा पाने लगा। मानवगण नदी, वन, तड़ाग, सरोवर, रमणीय फुलवाड़ी और पर्व्वतोंकी समभूमि पर प्रसन्न चित्तसे विहार करने लगे। दक्षिण कुरुलोग उत्तर कुरुओंसे एक दूसरेको अहङ्कार दिखा कर सिद्ध ऋषि और चारणोंके साथ विचरने लगे। कुरुओंसे बढ़े हुए उस सुन्दर जनपदमें कोई कृपण नहीं था और कोई नारी विधवा नहीं होती थी। कूप, उपवन, तड़ाग, सभा और ब्राह्मणोंकी वस्ती सर्व्व सम्पदयुक्त हुई, और सब स्थानोंमें सदा उत्सव होने लगे। वह राज्य भीष्मसे धर्म्मानुसार इस प्रकार रक्षित हुआ, कि अनेक देशोंके यज्ञयूपोंसे चित्रित होकर अति रमणीय बन गया; भीष्मके विधानसे उस राज्यमें धर्म्मचक्र ऐसा प्रवर्तित

हुआ, कि बहुतेरे दूसरे राज्योंको छोड़कर उस राज्यमें बसने लगे। महात्मा कुरु-कुमारोंसे किये जाते हुए कार्य्योंको देखकर जनपद और पुरवासी सब अति उत्साहयुक्त हुए। हे नराधिप! प्रधान कौरवों और पुरवासियोंके घरोंमें "खाओ, पीओ" यह बात सदा सुनाई देने लगी।

धृतराष्ट्र, पाण्डु और महामति विदुर जन्म होसे भीष्मसे पुत्रकी भांति प्रतिपालित, जातिके योग्य संस्कारोंसे संस्कृत, व्रत तथा पठनमें नियुक्त, और श्रम तथा व्यायाममें पण्डित होकर उचित समयमें यौवनदशाको प्राप्त हुए। वे धनुर्व्वेदमें, वेदमें, गदा-युद्धमें, खड्ग-चर्म्म चलानेमें, गजशिक्षामें और नीति शास्त्रमें दक्ष हुए। वे वेद वेदाङ्गके तत्त्वज्ञ होकर इतिहास, पुराण और दूसरे नाना विषयोंकी शिक्षा आदि सब विषयोंमें पण्डित हुए थे। विक्रमी पाण्डु धनुर्व्विद्या और महीपति धृतराष्ट्र पराक्रममें सबोंसे श्रेष्ठ भये। हे राजन्! तीनों लोकोंमें विदुरके समान धर्म्मशील, और धर्म्म विषयमें परम तत्त्वज्ञ कोई दूसरा नहीं था। उस कालमें राजा शान्तनुके नष्ट होते हुए वंशको फिर जगते देखकर सम्पूर्ण राज्योंमें ऐसी प्रशंसा की बात उड़ने लगी, कि वीर प्रसविनी, स्त्रियोंमें दोनों काशीराजकी बेटियां, देशोंमें कुरुजाङ्गल, सर्व्व धर्म्मज्ञ जनोंमें भीष्म और नगरोंमें हस्तिनापुर श्रेष्ठ है। धृतराष्ट्रको जन्मान्ध होने और विदुरको शूद्राणीके गर्भमें जन्म लेनेके हेतु राज्यकी प्राप्ति नहीं हुई, सो पाण्डु ही राज्याधिप हुए। अनन्तर एक समय नीति-शास्त्रमें पण्डित गङ्गानन्दन धर्म्मतत्त्वज्ञ विदुरको यथोचित यह बात बोले।

सम्भवपर्व्वमें एक सौ नौ अध्याय समाप्त।

भीष्मजी बोले, कि हमारा यह सर्व्वगुणयुक्त और सर्व्वत्र प्रख्यात कुरुकुल पृथ्वी भरमें दूसरे सब पृथ्वीपालोंपर अधिकार फैलाता आया है। इस विषयमें, कि धर्म्मशील, महात्मा राजाओंके द्वारा पहिलेसे रक्षित इस कुलकी कभी उखड़नेकी दशा न होवे, मेरे, सत्यवतीके और महात्मा कृष्णद्वैपायनके प्रयत्नसे तुम तीन कुलतन्तु उत्पन्न हुए हो। अब तुम लोगोंहीपर कुल स्थापित हुआ है, सो तुम्हारी और मेरी ऐसी चेष्टा होनी चाहिये कि, यह कुल सागर सदृश बढ़े। सुन चुका हूं, कि यदुवंशी शूरसेनकी कन्या, सुबल राजपुत्री और मद्र-देशाधिपकी बेटी, यह तीन कन्या हमारे वंशके योग्य हैं। हे पुत्र! क्षत्राणियोंमें श्रेष्ठ वे कन्यायें कुलीन, रूपवती और हर बातमें हमारे साथ सम्बन्धके योग्य हैं; हे धीमान् विदुर! मैं समझता हूं, कि इस वंशकी सन्तानके निमित्त उन्हीसे विवाह करना उचित है, अथवा तुम्हारी समझमें जो अच्छा होवे, कहो। विदुर बोले, कि आप हमारे पिता हैं, आपही हमारी माता हैं और आपही हमारे परम गुरु हैं, अतएव आपही स्वयं विचारकर जो इस वंशका मङ्गलदायी होवे, वही कीजिये।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि कुरुपितामह भीष्मने ब्राह्मणोंके मुखसे सुना, कि शुभ-लक्षणयुक्त सुबलपुत्री गान्धारीने भगनामक देवताके नेत्रहारी वरदायी महादेवकी आराधना कर सौ पुत्र पानेका वरलाभ किया है। हे भारत! अनन्तर भीष्मने गान्धारराजके निकट दूत भेजा। धृतराष्ट्र अन्धे हैं, सो गान्धारराजने बहुत विचार किया। आगे उन्होंने कौरवोंके कुल, प्रसिद्धि और चरित्रकी भले प्रकारं आलोचना करके धृतराष्ट्रको गान्धारी नाम्नी कन्या दान करना निश्चय किया। हे भारत! अनन्तर गान्धारीने सुना, कि धृतराष्ट्र अन्धे हैं और उस अन्धेसे उनका विवाह होगा। तब उन्होंने पतिव्रता होनेके हेतु वस्त्र लेकर कई फेरा लगा करके अपने

नेत्रोंको बांधा, क्योंकि उन्होंने यह निश्चय किया था, कि मैं पतिसे डाह न करूंगी। अनन्तर गान्धारराजकुमार शकुनिने रूप यौवनवती परम सुकृता भगिनीको लेकर कौरवोंके निकट आ करके धृतराष्ट्रको सम्प्रदान किया, तब भीष्मके मतानुसार दोनोंका विवाह कर दिया गया। वीर शकुनि धृतराष्ट्रको यथोचित वस्त्रादि देकर बहिनको सम्प्रदान करके भीष्मसे भले प्रकार आदर सत्कार पाकर निज नगर को पधारा। हे भरतवंश तिलक! सुन्दरी गान्धारी शीलता, सदाचार और यत्नसे सम्पूर्ण कौरवोंका सन्तोष उपजाने लगी। सुव्रत वाली गान्धारी सुन्दर व्यवहारसे गुरुओंकी सेवा किया करती थी, वाक्यसेभी कभी अन्य पुरुषका नाम नहीं लेती थी।

सम्भव पर्व्वमें एकसौ दश अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि शूरनामक यदुकुलमें श्रेष्ठ एक महात्मा वसुदेवके पिता थे। उनको पृथा नाम्नी एक कन्या थी। वह कन्या ऐसी रूपवती थी; कि भूमण्डलमें कोई नारि उनके रूपकी बराबरी नहीं कर सक्ती थी। हे भारत! सत्यवादी शूरने कृपाकांक्षी निःसन्तान पितृ-स्वसीय प्रिय मित्र महात्मा कुन्तीभोजराजसे पहिले स्वीकार किया था, कि अपनी पहिली सन्तान तुमको दे दूंगा; उस स्वीकारके अनुसार प्रथम गर्भसे जन्मी हुई उस कन्याको दे दिया। पृथा उस पिताके घरमें ब्राह्मणोंकी सेवा और अतिथियों के सत्कारमें नियुक्त रहती थी, एक समय उसने जितेन्द्रिय व्रतशील उग्रस्वभावी और धर्म्मके गूढ़ तत्त्वोंके जाननेवाले ब्राह्मण दुर्व्वासाको सर्व्व प्रयत्नसे सेवा कर प्रसन्न किया! उस मुनिने भविष्यत्में सन्तान आपद्धर्म्मकी बात सोचकर उसको अभिचारयुक्त मन्त्र दिया और बोले, कि तुम इसमन्त्रसे जिन जिन देवताओंको बुलाओगी उन उन देवताके प्रभावसे तुम्हारे पुत्र उत्पन्न होगा। यशस्विनी बाला पृथाने दुर्व्वासा की यह बात सुन करके अचरज मानकर कन्यावस्थाहीमें सूर्य्यदेवको बुलाया। आगे उस अनिन्दित अङ्गवालीने लोकभावन आदित्य को आते देखकर महत् आश्चर्य्य देखकरके विस्मय माना। सूर्य्यदेव उसके पास आकरके बोले, कि री असिताङ्गि! मैं यह आया हूं, कहो, तुम्हारा क्या प्रियकार्य्य करना होगा; पृथा बोली, कि हे शत्रुनाशी विभो! किसी ब्राह्मणने मुझको विद्या और वर दिया है, उसकी परीक्षाके लिये आपको बुलाया है। मैं इस अपराधके लिये सिर नायकर आपको प्रसन्न करती हूं; नारी यद्यपि बहुत अपराध भी करे, तथापि उसकी रक्षा करना चाहिये। सूर्य्य बोले, कि मैं यह सब जानता हूं, कि मुनि दुर्व्वासाने तुमको वर दिया है, अब तुम भय त्यागकर मुझसे संगम करो। री शुभे! मेरा दर्शन अव्यर्थ है; री भीरु! तुमने जिस कारण मुझको बुलाया, यदि वह व्यर्थ हो, तो इसमें सन्देह नहीं, कि हानि होगी।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे भारत! सूर्य्य इस प्रकार अनेक बातोंसे समझाने बुझाने लगे; पर सुन्दरी यशस्विनी कुन्तीने कन्यावस्थामें रहनेके कारण बन्धुओंके भय और लज्जासे अपनी सम्मति नहीं दी। हे भरतर्षभ! दिवाकरने फिर उससे कहा, कि री राज्ञी! मेरी कृपासे तुम कोई दोषयुक्ता न होओगी। प्रकाशनाय भगवान आदित्य कुन्तीराजकी कन्यासे यह कहकर उससे जा मिले। इससे सर्व्वशस्त्रधारियोंमें प्रधान, देववत् श्रीमान् जन्मके साथ कवच-कुण्डलोंसे सर्व्वलोकोंमें प्रशंसावान् कर्ण नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। अनन्तर परम द्युतिमान आदित्य फिर उसको कन्यावस्था देकर आकाशको गये।

यादव-कन्या जन्मे हुए कुमारको देखकर

दीनचित्तसे सोचने लगी, कि अब कौन उपाय करना चाहिये! क्या करूं, तो मङ्गल होवे! अनन्तर उसने उस बुरी लीलाको छिपानेके लिये महाबली कुमारको जलमें बहा दिया। अति यशवन्त सूतपुत्र राधापतिने जलमें डाले हुए बालकको उठाकर स्त्रीके साथ पुत्रका प्रतिनिधि बनाया। उस बालकने वसु अर्थात् कुण्डल और कवचरूपी धनके साथ जन्म लिया था, इससे राधापति और उसकी स्त्रीने उस बालकका वसुषेण यह नाम रखा। बली और प्रभावी वह बालक ज्यों ज्यों बढ़ने लगा त्यों त्यों अस्त्र विद्याओंमेंभी दक्ष होने लगा। जबतक पीठपर्य्यन्त तापयुक्त नहीं होता था, तबतक वह सूर्य्यकी उपासना करते थे; उपासना करनेके कालमें धीमान वसुषेणके पास भूमण्डलमें ऐसा कोई अर्थ नहीं था, जो वह ब्राह्मणोंको नहीं देते थे। एक समय देवराज इन्द्रने अर्जुनके हित साधनेके निमित्त ब्राह्मणका वेष लेकर भिक्षार्थी होकरके उनके निकट आकर कवच पानेकी प्रार्थना की, उसपर कर्णने करजोड़कर निज शरीरसे स्वभावहीसे मिले हुए कवचको काटकर ब्राह्मणरूपी इन्द्रको दे दिया। सुरनाथ इन्द्रने कवच लेकर कर्णके इस प्रकार कार्य्यसे प्रसन्न होकर उनको एक पुरुष नष्ट करनेवाला शक्तिअस्त्र दे दिया और कहा, कि देव, असुर, मनुष्य, गन्धर्व्व, उरग और राक्षस इनमेंसे चाहे जिस एकको तुम जय करना चाहोगे, इस शक्तिसे वह नष्ट होगा। सूर्य्य पुत्र पहिले वसुषेण नामसे धरतीमें प्रसिद्ध थे, अब कवच काटनेसे कर्ण नामसे प्रख्यात हुए।

सम्भवपर्व्वमें एकसौ ग्यारह अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि कुन्तिभोजकी कन्या प्रशस्त नेत्रवाली पृथा सत्त्वगुणयुक्त व्रतशील और धर्म्मप्रेमी थी; पर ऐसी रूपयौवनवती, तेजस्विनी और अच्छे अच्छे स्त्रीगुणों से भरी हुई कन्याको किसी राजाने प्रार्थना नहीं की थी। हे राजश्रेष्ठ! इस हेतु पिता राजा कुन्तिभोजने राजाओंको बुलवाकर कन्याको स्वयम्बरमें नियुक्त किया। मनस्विनी पृथाने उन सब भूपालोंके मध्य रङ्गभूमिमें भरतवंशश्रेष्ठ राजसिंह पाण्डुको देखा। राजसभामें स्थित दूसरे देवराजके समान सिंह सदृश विक्रमी बैलकी भांति नेत्रवाले महामति, महाबली और आदित्यकी नाईं सब राजाओंकी प्रभा ढंपनेवाले नरश्रेष्ठ पाण्डुको देखकर अनिन्दित अङ्गवाली शुभलक्षणभरी कुन्ती बड़ी विकल हुई; अनन्तर उसने एकाही बार कामसे विह्वल अङ्गयुक्त और चञ्चलचित्त होकरके लज्जाके साथ राजा पाण्डुके गलेमें माला दे दी। कुन्तीके पाण्डुको माला देते देखकर भूपाललोग हस्ती, घोड़े और रथों पर चढ़कर जिस प्रकार आये थे, वैसेही निज निज स्थानोंको पधारे। हे राजन्! अनन्तर कन्याके पिताने यथाविधि उनका विवाह कर दिया। देवराज जिस प्रकार शचीके साथ मिले हैं, उनके समान अतुल सौभाग्ययुक्त कुरुनन्दन कुन्तीभोजकी कन्यासे मिले। हे राजेन्द्र! कुरुश्रेष्ठ! महीपाल कुन्तीभोजने कुन्तीका विवाहकर दामादको अनेक धनोंसे पूजकर बेटीको उनके पुरमें भेजदिया। अन्तर राजा कौरवनन्दन पाण्डु महर्षि और ब्राह्मणोंके अशीससे स्तुति किये जाकर नाना प्रकार ध्वजासंयुक्त अनेक सेनाओंके सहित निज नगरमें उपस्थित हुए। अनन्तर प्रभु पाण्डुने स्त्री कुन्तिको अपने गृहमें रखा।

सम्भवपर्व्वमें एक सौ बारह अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर शान्तनुके पुत्र मतिमान भीष्मने यशवन्त भूपाल पाण्डुका और एक विवाह करना निश्चय किया, वह बद

मन्त्रियों, ब्राह्मणों, महर्षियों और चतुरङ्गी सेनाओंके साथ मद्रेश्वरके नगरको गये। बाह्लीकोंमें श्रेष्ठ मद्रपति भीष्मके आनेकी बात सुनकर आगे बढ़कर यथाविधि उनकी पूजाकर निजपुरमें लिवाय लाये, और पाद्य अर्घ, मधुपर्क और शुक्ल आसन देकर आनेका कारण पूछा। कुरुवंशके प्रधान भीष्म उनसे बोले, कि हे अरिन्दम! मैं कन्याके लिये आया हूं। सुन चुका हूं, कि साध्वी यशस्विनी माद्री नाम्नी आपकी बहिन है, मैं पाण्डुके लिये उसको मांगता हूं। हे राजन् विवाहके सम्बन्धमें आप हमारे योग्य पात्र हैं। हे मद्रेश्वर! इस विषयमें सोच विचारकर आप हमको यथाविधि सम्बन्धीको भांति समझिये। भीष्म की यह बात सुन मद्रपति बोले, कि हे कौरव! मैं समझता हूं, कि हमारे लिये आपसे अच्छे पात्र कोई दूसरे नहीं हैं, पर हमारे वंशमें पहिले के भूपोंने शुल्क लेनेका जो एक नियम किया है, वह भला होवे या बुरा, मैं उसके विरुद्धकार्य्य करने का साहसी नहीं हो सकता; वह नियम प्रकाशही है, सो सन्देह नहीं, कि कि आपभी उससे ज्ञात हैं, अतएव हे वीर! "दान करो" यह बात कहना आपके योग्य नहीं है। हे शत्रुनाशी! शुल्क लेना हमारा कुलधर्म्म है, और वही परम प्रमाण है, सो मैं विना सङ्कोच आपसे यह बात नहीं कह सकता हूं।

जनाधिप भीष्मने तब मद्रराजसे कहा, कि हे राजन्! स्वयं ब्रह्माजीने भी इसको परमधर्म्म कहा है। पूर्व्वके पुरुष इस विधिके अनुसार चलते थे, सो यह दोषयुक्त नहीं है। हे शल्य! यहभी ज्ञात हो, कि यह मर्य्यादा साधुओंको सम्मतियुक्त है। महातेजस्वी गङ्गानन्दनने यह बात कहकर सहस्रों बना तथा बिन बना अपरिमित सुवर्ण, विचित्र रत्न गज, रथ, अश्व, वस्त्र, आभूषण अच्छो मणि, मोती और लाल शल्यको दिये। शल्यने यह सब धन लेकर प्रसन्नचित्तसे कौरवश्रेष्ठ भीष्मको नाना अलङ्कारोंसे सजी हुई कन्या दान की। धीमान् गङ्गापुत्र भीष्म माद्रीको लेकर हस्तिनापुरको लौट कर पुरमें प्रविष्ट हुए।

अनन्तर नराधिप पाण्डुने साधुओंकी सम्मतियुक्त शुभ दिनमें, शुभलग्नमें, विधिपूर्व्वक माद्रीसे विवाह किया। आगे विवाहके निर्व्वाह हो जाने पर कुरुनन्दनने नयी-व्याही स्त्रीके रहनेके लिये एक सुन्दर घर निर्द्दिष्ट कर दिया। राजश्रेष्ठपाण्डु कुन्ती और माद्रीके साथ मनमाने सुखसे बसने लगे। हे प्रभो! राजा पाण्डुने स्त्रीसे तीस रात्रि विहार करके धरतीके जय करनेके लिये यात्रा की। पृथ्वीके जयेच्छुक राजा पाण्डु भीष्मादि वृद्धोंको, धृतराष्ट्रको और कुरुओंमें दूसरे श्रेष्ठ जनोंको प्रणाम नमस्कार और निमंत्रण करके उनकी आज्ञा लेकर मङ्गलाचारयुक्त अशीस सुनते हुए हाथी, घोड़े और रथोंसे भरी हुई बड़ी भारी सेनाके साथ चले। वह प्रसन्न और पुष्ट सेनाओंके सङ्ग शत्रुमण्डलीको खोजके लिये निकले। कौरवोंके यश बढ़ानेवाले नरोंमें सिंहरूपी पाण्डुके पहिलेही दोषी दशार्ण देशके राजाओंको लड़ाईमें परास्त किया। अनन्तर रङ्गविरङ्गे झण्डोंके साथ अगणित हाथी, घोड़े, रथ और पैदलोंसे बनी हुई सेनाको लेकर अनेक राजाओंको हानि पहुंचाये हुए, बल तथा अहङ्कारसे गर्व्वित मगधके दीर्घनामक राजाको राजमन्दिरहीमें बध किया। वहांसे कोष और बहुत वाहन लूटकर मिथिलामें जाकरके विदेह नगरको परास्त किया। हे भरत श्रेष्ठ! अनन्तर उन्होंने काशी, सुह्म और पुण्ड्रदेशमें जाकर निज भुजवीर्य्यसे कौरव वंशका यश फैलाया। तब बाणरूपी समूह शिखासे सुशोभित और शस्त्ररूपी तेजसे प्रज्वलित शत्रुनाशी पाण्डुरूपी

अग्निसे भूपाललोग जल कर मरनेलगे। सेना सहित पाण्डुने सेनासहित नरेशोंके बलको तोड़ कर और वशमें लाकर अपने काममें नियुक्त किया।

धरती परके सब भूपोंने पाण्डुसे परास्त होकर मानवोंमें उनको ऐसा वीर समझा, कि जैसे देवोंमें इन्द्र हैं; और सब कर जोड़ उनको प्रणाम कर नाना अस्त्र मणि, मुक्ता, प्रवाल, सुवर्ण चांदी गौ, घोड़े, हाथी, गदहे, ऊंट, भैंसे, बकरे, भेड़ कम्बल, मृगचर्म्म, और रंकुमृगके बने चंदवे इत्यादि नाना धन भेट लेकर उनके सामने खड़े हुए। हस्तिनापुरके नाथ पाण्डुने उनसबोंकोले लिया। अनन्तर वह अति प्रसन्न सेनाओंके साथ निज राज्यकी प्रजा और पुरवासियों को आनन्द देनेके लिये हस्तिनापुरमें लौट गये। तब राजा और मन्त्रिगण पुरवासी और ग्राम वासियोंसे मिलकर प्रसन्न चित्तसे आपसमें यह करने लगे, कि धीमान् भरत और राजओंमें सिंहरूपी शान्तनुकी कोर्त्ति बिगड़नेपर हुई थी, पर अब पाण्डुने फिर उसका उद्धार किया। जिन राजाओंका धन और राज्य हर लिया गया था, अब नागपुरनाथ पाण्डुने उनको करदेनेवाले बनाये।

आगे पाण्डुके निकट आनेपर भीष्म आदि कौरव हृदयसे उनको लौटा लानेको चले। वे हस्तिनापुरसे कुछ दूर जाकर राजाके साथियोंको बहुत धनसे भरा पूरा देखकर प्रसन्न हुए; नाना यानों पर लाये हुए बड़े बड़े हाथी घोड़े, रथ, ऊंट, भेड़ आदि नाना धन रत्न इतने अधिक आरहे थे, कि उन्होंने उनका अन्त नहीं देखा; कौशल्याके आनन्द बढ़ानेवाले पाण्डुने चचा भीष्मके पांव छूकर नगर तथा जनपदवासियोंकाभी यथोचित सम्मान किया। भीष्म शत्रुपुरजयकारी मनोरथ सफल करके लौटे हुए भतीजे पाण्डुको गलेसे लगाकर आनन्दसे आंसू बहाने लगे। पाण्डुने अनेक तूर्य और भोंपू आदिके घोर शब्दसे सम्पूर्ण पुरवासियोंको प्रसन्न कर हस्तिनापुरमें प्रवेश किया।

सम्भवपर्व्वमें एकसौ तेरह अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर धर्म्मात्मा पाण्डुने धृतराष्ट्रकी आज्ञा लेकर अपने भुजबलसे लाभ किये हुए धनको भीष्म, सत्यवती और माता कौशल्याको भेंट दी और कुछ विदुरके पास भेजा। उन्होंने आत्मजनोंको धनसे सन्तुष्ट किया। हे भारत! भीष्मने पाण्डुके जीते लाये हुए नाना रत्नोंसे सत्यवती और यशस्विनी कौशल्याको प्रसन्न किया। शची जिसप्रकार जयन्तको गलेसे लगाकर सुखको प्राप्त करती है, वैसेही कौशल्याने अतुल तेजस्वी नरश्रेष्ठ पाण्डुको गले लगा करके आनन्द पाया। धृतराष्ट्र, वीरवर पाण्डुके बलार्जित इतने अधिक धनसे पञ्चमहायज्ञ किया करते थे, कि उस धनसे सैकड़ों सहस्रों गुणा अधिक दक्षिणा युक्त सैकड़ों अश्वमेध यज्ञ हो सकते थे। हे भरतकुलप्रदीप! अनालसी पाण्डु, कुन्ती और माद्रीके साथ एकत्र होकर वनमें जा बसे! वह सुखदायी भवन और कोमल बिस्तर छोड़के वनमें सदा बसते हुए आखेट खेलने लगे। वह हिमालय पहाड़के मनमोहन दक्षिने छोरमें घूमघाम कर बड़े बड़े साल वनोंसे सोहते हुए पहाड़की पीठ पर बसने लगे। श्रीमान पाण्डु, कुन्ती और माद्रीके संग वनमें बसते हुए दो हथनियोंके बीचमें ऐरावतके समान शोभा पाने लगे। दो स्त्रियां साथ लिये खड्ग बाण और चाप धरे हुए, परमास्त्र चलानेमें दक्ष, विचित्र कवचसे सुशोभित, विचरते हुए पाण्डुको देख करके वनवासी लोग देवता समझने लगे। धृतराष्ट्र की आज्ञासे मनुष्यगण सदा आलससे

रक्षित होकर वनमें, उनके लिये कामना और भोजनकी सामग्री पहुंचाने लगे ।

इधर गङ्गापुत्र भीष्मने सुना, कि महीपाल देवककी शूद्राणीके गर्भसे जन्मी हुई रूप और यौवनयुक्त एक कन्या है। अनन्तर उन्होंने राजा देवकसे मांगकर वह कन्या ला करके महामति विदुरका विवाह कर दिया। कुरुनन्दन विदुर ने उस क्षत्रियके वीर्य्य और शूद्राणीके गर्भसे जन्मी हुई कन्यासे अपने समान गुण और नम्रतायुक्त अनेक पुत्रोंको जन्म दिया।

सम्भवपर्व्वमें एक सौ चौदह अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे जनमेजय! अनन्तर धृतराष्ट्रके वीर्य्य गान्धारीके गर्भसे सौ पुत्र और वैश्याके गर्भसे एक पुत्रने जन्म लिया और पाण्डुके वंशकी रक्षाके लिये देवोंने कुन्ती और माद्रीके गर्भसे महारथी पांच पुत्र उत्पन्न किये।

जनमेजयने पूछा, कि हे द्विजश्रेष्ठ! गान्धारीके गर्भसे क्योंकर और कितने दिनोंमें सौ पुत्र उत्पन्न हुए उनकी आयु कितनी थी? धृतराष्ट्रने वैश्याके गर्भसे क्योंकर एक पुत्रको जन्म दिया? धृतराष्ट्र अपनी प्यारी स्त्री गान्धारीसे कैसा व्यवहार किया करते थे? महात्मा मृगरूपी मुनिके शाप देनेपर क्योंकर पाण्डुके पांच महारथी पुत्र उत्पन्न हुए? हे विद्वान् पण्डित तपोधन! यह सब कथा विस्तृतरूपसे यथारीति कहिये, कुलका चरित्र सुनकर मैं तृप्त नहीं हुआ हूं।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि एक समय भगवान् द्वैपायनके भूख और थकावटसे कातर होकर गान्धारीके पास आ पहुंचनेपर गान्धारीने उनको सन्तुष्ट किया था; उससे व्यासने गान्धारीकी प्रार्थनाके अनुसार यह वर दिया, कि तुम्हे पतिके समान वीर्य्यवान सौ पुत्र पैदा होंगे। अनन्तर गान्धारी थोड़े कालमें धृतराष्ट्रसे गर्भवती हुई। गर्भ होनेके पीछे दो वर्ष बीते पर तौभी सन्तान नहीं हुई, इससे वह बड़ी दुःखी होने लगी; आगे यह सुन कर, कि कुन्तीके बाल सूर्य्यके समान पुत्र भये हैं, अपने गर्भको स्थिर देख चिन्तायुक्त होकर अति मनःपीड़ासे धृतराष्ट्रके जाननेमें बड़े यत्नपूर्व्वक अपने पेटमें आघात किया, उससे दो वर्षका वह गर्भ कटो हुई लोहेकी गेंदके समान मांसपेशी स्वरूपसे भूमिपर गिरा। गान्धारीके उसे त्यागनेपर होतेही जापकोंमें श्रेष्ठ द्वैपायनने उस बातसे ज्ञात होकर तुरन्त वहां पहुंच करके उस मांसपेशीको देखा; अनन्तर सुबलकन्यासे बोले, कि तुम यह क्या करनेको उद्यत हुई हो। गान्धारीने महर्षिसे अपनी यह सच्ची इच्छा प्रगटकर, कि कुन्तीके सूर्य्यके समान प्रकाशमान पुत्र उत्पन्न हुए सुनकर अति दुःखसे मैंने पेटमें चोट मारी है। आपने पहिले मुझको वर दिया था, कि सौ पुत्र उत्पन्न होंगे, अब सौ पुत्रोंके बदले यह मांसपेशी पैदा हुई है। व्यासजी बोले, कि हे सुबलपुत्री! जो कहा था, सोही होगा, कदापि बात नहीं पलटेगी, इसीसेंभी मैंने कभी भूठी बात नहीं कही है, फिर क्यों वह बात उलट जायगी? अब घृतसे सौ घड़े भरकर निरालेमें यत्नसे रखो और ठण्डे जलसे इस मांसपेशीको नहलाओ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले,कि हे नरेश! अनन्तर नहलाते नहलाते वह मांसपेशी बहुत भागोंमें बंट गयी। काल पूर्ण होनेपर उनकी संख्या सौ हुई; और प्रत्येक भाग अगूठेके पोरके समान हुआ। अनन्तर वह सब मांसपेशी घृतभरे घड़ोंमें रक्षित होकर भले अच्छे गुप्त स्थानमें भली भांति रखी जाने लगीं। भगवान व्यास तब सुबलकन्यासे बोले,कि इतने समयमें अर्थात् दोवर्ष पीछे यह सब घड़े खोलना। धीमान

भगवान द्वैपायन यह कहकर वह सब गर्भ स्थापन कर फिर तपके लिये हिमाचलको पधारे। अनन्तर योग्यकालमें उन टुकड़ोंमें से पहिले राजा दुर्य्योधनका जन्म हुआ, पर राजा युधिष्ठिर पहिले जन्म लेनेके हेतु ज्येष्ठ भये थे। यह बात धीमान विदुर और धृतराष्ट्रके कानोंमें पहुंची। जिस दिन दुर्य्योधनका जन्म हुआ, उसी दिन महाभुज वीर्य्यवान् भीमनेभी जन्म लिया था। हे महाराज! दुर्य्योधन जन्म लेतेही गदहेके समान शब्द करने और चिल्लाने लगा, उसे सुनकर गिद्ध, गदहे, सियार और कौए कोलाहल मचाने लगे, हवा वेगसे बहने लगी और दिशायें जलने लगीं। हे महाराज! राजा धृतराष्ट्र इससे भय खाकर भीष्म, विदुर, ब्राह्मण, मित्र, और कौरवोंको बुलवाकर बोले, कि हमारे वंश बढ़ानेवाले राजपुत्र युधिष्ठिर ज्येष्ठ हैं, सो वह अपनेही गुणसे राज्यको पा सकते हैं, उस विषयमें मुझे कुछ कहना नहीं है, पर मेरे इस पुत्रने युधिष्ठिरके पीछे जन्म लिया है, उससे क्या यह कुमार भी राजा हो सकेगा? इस विषयमें जो निश्चय हो, वह आप ठीक ठीक कहिये। हे भारत! इस बातके कहे जाने पर सियार और मांस खानेवाले कुटिल जन्तु अमङ्गलकारी शब्द मचाने लगे। हे महाराज चारों ओर यह सब अमङ्गल चिन्ह देख कर के ब्राह्मणगण और महामति विदुर धृतराष्ट्रसे बोले, कि हे पुरुषश्रेष्ठ महाराज! आपके ज्येष्ठ पुत्रके जन्म लेतेही जिस प्रकार यह सब भयानक अमङ्गल चिह्न दीख पड़ते हैं, उससे यह प्रकाश हो रहा है, कि आपका यह पुत्र कुलहानि करनेवाला होगा, इसको त्याग देनेहीसे कुल की शान्ति हो सकती है, नहीं तो बड़ी हानि होगी, हे महीपाल भारत! यदि आप अपने कुलकी शान्ति रखनी चाहते हों, तो यही अच्छा होगा, कि इस एक पुत्रको त्याग दीजिये; तब आपके निनानवे पुत्र तो बचेंगे, आप एकको छोड़ कर इस वंश और जगत्का हित कीजिये। हे महाराज! कहा है, कि कुलकी रक्षाके लिये एकको त्यागना, ग्रामकी भलाईके लिये कुलको त्यागना, देशकी भलाईके लिये ग्रामको त्यागना और आत्माके लिये पृथ्वीको त्यागना उचित है।

उन सब द्विजों और विदुरके ऐसा कहने पर राजा धृतराष्ट्रने पुत्रके स्नेह से उनकी बात नहीं सुनी। हे पृथ्वीनाथ! अनन्तर महीने भरमें धृतराष्ट्रके सो पुत्र और एक कन्या ने जन्म लिया। गान्धारी जब बढ़ते हुए गर्भकी पीड़ासे कातर थी, उसी वर्ष उस वैश्याके गर्भसे धृतराष्ट्रके अतियशयुक्त धीमान युयुत्सु नामक एक पुत्रने जन्म लिया। वैश्याके गर्भ और क्षत्रियके वीर्य्यसे जन्म लेनेके हेतु वह पुत्र करण करके कथित हुआ है। इस प्रकार धीमान धृतराष्ट्रसे महारथी वीर सौ पुत्र और एक कन्या और महातेजस्वी युयुत्सुने जन्म लिया था।

सम्भव पर्व्वमें एकसौ पन्द्रह अध्याय समाप्त।

जनमेजय बोले, कि हे अनघ! धृतराष्ट्रके ऋषिकी कृपासे सौ पुत्रोंका जन्म लेना आप कह चुके, पर ऋषिकी प्रसन्नतासे कन्याके उत्पन्न होनेकी कोई कथा आपने नहीं कही है। आप धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंसे अधिक एक वैश्याके गर्भसे जन्म लिये हुए, पुत्र, युयुत्सु और गान्धारीके गर्भसे जन्म ली हुई एक कन्याके जन्म लेनेकी कथा कह चुके; पर नस्वल्प तेजयुक्त महर्षि व्यासजी बोले थे, कि गान्धारराजपुत्रीके सौ पुत्र जन्म लेंगे, हे भगवन्! अब आपने क्योंकर गान्धारीके गर्भमें सौ पुत्रोंसे अधिक एक कन्याकी बात कही? यदि महर्षिने उन मांसपिण्डियोंको सौ भागोंसे बांटा हो और यदि सुबलपुत्रीका फिर गर्भ न हुआ

हो; तो, क्यों कर दुःशलाकी उत्पत्ति हुई? हे विप्रवर इस विषयको सुननेके लिये मुझे बड़ी इच्छा हुई है, आप यथावत कह सुनावें।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे पाण्डव! अपने अच्छा प्रश्न किया है। मैं आपसे व्यक्त रूपसे कहता हूं। भगवान व्यासने स्वयं ठण्डे जलसे उन मांसपेशियों को नहलवा कर उन्हें अलग अलग बांट डालनेकी कल्पना करी। हे महाराज! वह ज्यों ज्यों बांटने लगे, त्यों त्यों धात्री उन्हें घृतके घड़ोंमें छोड़ने लगी। इस समय कठोर व्रत करनेवाली सती सुन्दरी देवी गान्धारी कन्यास्नेह की आलोचना कर मनही मनमें सोचने लगी, कि इसमें सन्देह नहीं है, कि इन मांस पेशियोंसे सौ पुत्र उत्पन्न होंगे, क्योंकि मुनिकी बात कभी मिथ्या नहीं होती; पर यदि मुझे सौ पुत्रोंसे अधिक कनिष्टा एक कन्या हो, तो मेरे हृदयको बड़ा सन्तोष मिले और उससे मेरे पति दौहित्रसे मिलते हुए पुण्यलोकके बाहर न होवें; विशेष नारी मात्रको दामादसे बड़ी प्रीति होती है; सो यदि मेरी सौ पुत्रोंसे ऊपर एक पुत्री भी होवे तो, मैं पुत्र और नातियोंसे घिरी जाकर कृतार्थ होऊं। यदि मैंने सच्चीरीति पर तप दान वा (ब्राह्मणोंसे) हवन किया हो अथवा यदि गुरुओंको प्रसन्न किया हो तो, मुझे एक कन्या भी होवे। इस अवसरमें ऋषिओंमें श्रेष्ठ भगवान श्रीकृष्णद्वैपायन जी स्वयं उन मांसपेशिओंको बांट रहे थे। वह पूर्ण सौ भाग गिन कर गान्धारीसे बोले, कि लो तुम्हारे सौ बेटे हुए; मैंने तुमसे झूठी नहीं कही थी। दैव संयोगसे ऊपर एक भाग बचा रहा, तुम्हारी इच्छानुसार इस भागसे एक सुन्दरी कन्या होगी। अनन्तर महातपा तपोधनने दूसरे एक घृतके घड़ेको मंगवाकर उसमें कन्याके भागको छोड़ दिया। हे अनघ भरतवंश श्रेष्ठ! दुःशलाकी जन्म-कथा आपसे यह कह चुका। हे राजेन्द्र! कहिये, फिर क्या कहना होगा।

सम्भवपर्व्वमें एकसौ सोलह अध्याय समाप्त।

जनमेजय बोले, कि धृतराष्ट्रके बड़े होटेके क्रमसे सब लड़कोंके, और हरेकका अलग नाम आद्योपान्त कहिये। श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे महाराज! दुर्य्योधन, युयुत्सु, दुःशासन, दुःसह, दुःशल, जलसन्ध, सम, सह, विन्द, अनुविन्द, दुर्द्धर्ष, सुबाहु, दुष्प्रधर्षण, दुर्म्मर्षण, दुर्म्मुख, दुष्कर्ण, कर्ण, विविंशति, विकर्ण, शल, सत्त्व, सुलोचन, चित्र, उपचित्र, चित्राक्ष, चारुचित्र, शरासन, दुर्म्मद, दुर्व्विगाह, विवित्सु, विकटानन, ऊर्णनाभ, सुनाभ, नन्द, उपनन्द, चित्रवाण, चित्रवर्म्मा, सुवर्म्मा, दुर्व्विलोचन, अयोबाहु, महाबाहु, चित्राङ्ग, चित्रकुण्डल, भीमवेग, भीमबल, बलाकी, बलवर्द्धन, उग्रायुध, भीमकर्म्मा, कनकायु, दृढ़ायुध, दृढ़वर्म्मा, दृढ़क्षत्र, सोमकीर्त्ति, अनूदर, दृढ़सन्ध, जरासन्ध, सत्यसन्ध, सदःसुवाक्, उग्रश्रवा, उग्रसेन, सेनानी, दुष्पराजय, अपराजित, कुण्डशायी, विशालाक्ष, दुराधर, दृढ़हस्त, सहस्त, वातवेग, सुवर्च्चा, आदित्यकेतु, बह्वाशी, नागदत्त, अग्रयायी, कवची, निषङ्गी, कुण्डी, कुण्डधार, धनुर्द्धर, उग्र, भीमरथ, वीरबाहु, अलोलुप, अभय, रौद्रकर्म्मा, दृढ़रथ, अनाधृष्य, कुण्डभेदी, विरावी, दीर्घलोचन, प्रमथ, प्रमाथी, दीर्घबाहु दीर्घरोम, दीर्घबाहु, महाबाहु, व्यूढ़ोरु, कनकध्वज, कुण्डाशी, विरजा, यह सौ पुत्र और कन्या दुःशला है। महाराज! धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंके और सौके अतिरिक्त कन्या दुःशलाका नाम यह कह चुका, हे महाराज! इन नामोंके क्रमके अनुसार इनके जन्मका क्रमभी जानना। वे सबके सब महारथी शूर, युद्धमें दक्ष, वेदमें पण्डित और अस्त्र चलानेमें निपुण थे। हे महीपाल! धृतराष्ट्रने परीक्षाद्वारा योग्य

कन्याओंका निश्चयकर उचित समयमें यथारीति उन सबोंका विवाह कर किया। हे भरतकुल प्रदीप! अनन्तर महाराजा धृतराष्ट्रने योग्य कालमें जयद्रथ को दुःशला नाम्नी कन्या सम्प्रदान कर दी।

सम्भवपर्व्वमें एक सौ सत्तरह अध्याय समाप्त।

जनमेजय बोले कि, हे ब्रह्मवादिन्! आप मनुष्य धृतराष्ट्रके पुत्रोंके श्रेष्ठ अलौकिक आर्ष जन्मकी कथा और उनके अलग अलग नाम भी कह चुके हैं। हे ब्राह्मण! वह सब आपसे सुन लिया है, अब पाण्डवोंके चरित्रकी कथा कहिये; आपने वंशोंके अवतरणमें कहा है, कि पाण्डवगण सब महात्मा तथा इन्द्रके समान पराक्रमी थे और देवोंके अंशोंसे जन्म लिया था; सो मैं उन अलौकिक कर्म्म करने वाले पाण्डवोंकी जन्मसे लेकर आद्योपान्त सम्पूर्ण कथा सुना चाहता हूं, हे वैशम्पायन! आप उसी कहे जाइये।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि महाराज! राजा पाण्डुने मृगव्यालोंसे भरे एक बड़े बनमें घूमते घामते मैथुन धर्म्ममें आसक्त एक यूथपति मृगको देखा। आगे उन्होंने सोनेकी पूंछसे सुशोभित सुन्दर परवाले नोकदार और तेज चलनेवाले पांच वाणोंसे उस मृग और मृगीको विद्ध किया। हे महाराज! कोई बड़े तेजस्वी तपोधन ऋषिकुमार मृगका स्वरुप लेकर स्त्रीके साथ उस प्रकारसे मिले थे। वह उस मृगीसे लिपटे रहते ही बाणाघातसे क्षण भरमें धरतीपर गिरकर मनुष्यकी बातें में विकलचित्तसे पाण्डुसे बोले, कि काम क्रोधयुक्त हीनबुद्धिजनभी ऐसा निष्ठुर कार्य्य नहीं करता; पर मानवी बुद्धि दैवका पार नहीं पा सकती; दैवही मानवी बुद्धिसे बढ़ चढ़ जाताहै, सो दैवी विषयको बुद्धिमान जनभी समझ नहीं सकते। हे भारत! तुम सदाके धर्म्मयुक्त प्रधान वंशमें जन्म लेकर क्योंकर काम लोभसे अभिभूत हुए, और क्योंकर तुम्हारा चित्त ऐसा डगमगाया? पाण्डु बोले, कि हे मृग! राजालोग शत्रु नाशने में जैसा किया करते हैं, मृग बेधने में वैसाही करते हैं, सो तुम्हे मोहसे मुझको ऐसा लाञ्छन नहीं करना चाहिये। छिपकर और कौशलसे मृग बध करना राजाओंका धर्म्म है; तुम फिर क्यों उस विषयमें निन्दा कर रहे हो? ऋषि अगस्त्यने यज्ञकर सम्पूर्ण वनमें सर्व्वदेवोंके उद्देशमें सम्पूर्ण मृगोंको संयनकर मृगया की थी। उन्होंने अभिचार कर्म्मके लिये तुम्हारी बसासे हवन किया था; सो प्रमाणित धर्म्मके अनुसार तुम मुझसे मारे गये हो, फिर क्यों हमारी निन्दा कर रहे हो। मृग बोला, कि मनुष्यलोग शत्रुको भली भांति न देखकर बाण नहीं चलाते, विशेष जिस समय शत्रुसे दोष होता है, उसी समयमें शत्रु वधनेका सुन्दर अवसर करके कहा है। पाण्डु बोले, कि ऐ मृग! मृग प्रमत्त रहें वा अप्रमत्तही रहें, लोग नाना कठोर उपायोंसे खुलाखुली उनका वध करते हैं, अतएव तुम क्यों निन्दा करते हो? मृग बोला, कि महाराज! तुमने मृग मारा है, इस लिये मैं अपने लिये तुम्हारी निन्दा नहीं करता! पर तुमको इस समय निष्ठुर व्यवहार न कर मेरे मैथुनकाल तक ठहरे रहना चाहिये था। सर्व्वभूतोंके प्रिय और सर्व्वभूतोंके हितयुक्त ऐसे समयमें क्या कोईभी विद्वान जन वनमें मैथुन करते हुए, मृगको बध कर सकता है? हे राजेन्द्र! मैं आनन्दसे इस मृगीसे सन्तान पैदा करनेके लिये लिपट गया था, तुमने वह व्यर्थ कर दिया। महाराज! तुमने शुद्ध कर्म्म करनेवाले पौरव राजोंके वंशमें जन्म लिया है, सो यह कार्य्य तुम्हारे योग्य नहीं हुआ है। हे भारत! यह बड़ा निष्ठुर कर्म्म स्वर्गनाशी, यशनाशी धर्म्मनाशी और सर्व्व लोकोंके कने

अनुचित हुआ है, हे देवोपम! तुमने शास्त्र जाननेवाले धर्म्मार्थ तत्त्वोंके जाननेवाले, और स्त्रीसे मिलनके सुखको अनुभव करनेवाले होकरकेभी जो यह स्वर्गनाशी कार्य्य किया है, वह तुम्हारे योग्य नहीं हुआ है। हे नरेशोंमें श्रेष्ठजन! जो सब लोग निष्ठुर कार्य्य करनेवाले पापाचारी और धर्म्मार्थ कामसे रहित होते हैं, तुम्ही उनका दण्ड करते हो। हे महाप्राज्ञ! मैं मृगके स्वरूपमें फल-मूल पर जीता हुआ मुनि हूं, मुझको विना अपराध मार कर कौनसा बड़ा लाभ उठाया? मैं शमशील होकर नित्य वनमें रहता हूं, तिसपरभी तुमने विनादोष मुझको मारा! सो तुमको शाप देता हूं, कि तुमने जिस प्रकार स्त्री-पुरुष से कठिन व्यवहार किया है, उस प्रकार जब स्वयं कामयुक्त होकर विवश होओगे, तब तुमभी ऐसीही जीवनाशी दशा प्राप्त करोगे। मैं किमिन्दम नामक तपस्वी मुनि हूं, मनुष्योंकी लज्जासे बचनेके लिये मृगीसे मिल रहा था। तुम्हारे यह न जाने रहनेसे कि मैं मृगाकास्वरूप लेकर मृगोंसे घने वनमें चरा करता हूं, मुझको मारडालनेके कारण तुम पर ब्रह्महत्याका पाप न लगेगा। रे मूर्ख! जैसे कि तूने मृगके स्वरूपधारी मुझको इस प्रकार मारडाला, त्यों तूभी इसका फल योंही प्राप्त करेगा। तू कामवश प्रियासे मिलतेही इसी दशामें प्रेतलोकको सिधारेगा। हे मतिमन्! तुम अन्तकालमें जिस स्त्रीसे मिलोगे, वह प्यारीभी सर्व्वलोकोंके लङ्घनके अयोग्य प्रेतलोकोंमें भक्ति-पूर्व्वक तुम्हारे साथ चली जायगी। मुझको जिस प्रकार सुख समय तुमसे दुःख मिला, वैसेही तुमभी सुख पानेके काल दुःख प्राप्त करोगे।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि मृगने यह बात कहकर अति दुःखी होकर प्राण छोड़ा। राजा पाण्डुभी क्षण भरमें दुःखके समुद्रमें डूबे।

सम्भवपर्व्वमें एकसौ अठारह अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि राजा पाण्डु अपने मित्र समान उस ऋषिको छोड़कर स्त्रियोंके सहित शोक और दुःखसे पीड़ित और विकल होकर बहुत बिलपने लगे। वह कहने लगे, कि हाय! बुरी आत्मायुक्तजन अच्छे वंशमें जन्म लेने पर भी कामके फन्देमें फंसकर अपने कर्म्मके दोषसे कुगति प्राप्त करता है। मैंने सुना है, कि मेरे पिता विचित्रवीर्य्य धर्म्मात्मा शान्तनुसे जन्म लेकरके केवल कामयुक्त आत्मा होनेहीसे बालिपनहीमें परलोकको सिधारे थे; उन कामयुक्त राजाके क्षेत्रमें साक्षात् भगवान् ऋषि संयतवादी श्रीकृष्णद्वैपायनने मुझे जन्म दिया था; ऐसे मनुष्यके पुत्र होनेपरभी मैं बुरी रीतिसे केवल वनहीमें घूम फिर रहा हूं! आज मेरी बुरी बुद्धि व्यसनके विषयमें लिप्त हुई है, तो देवोंने मुझको त्याग दिया है, क्योंकि मेरा पुत्रका मुख बिना देखे स्वर्ग पानेका पथ रुक गया। अब मैं मोक्षमार्गका पथिक बनूं! पुत्र उत्पादन आदि सांसारिक बन्धन ही अति दुःखका कारण हुआ है, सो मैं ब्रह्मचारी बनकर जन्मदाता व्यासजीसे किये जाते हुए कार्य्यमें नियुक्त होऊंगा। मैं अपने चित्तको बिना सन्देह कठोर तपमें नियुक्त करूंगा, उससे भार्य्यादि त्याग कर अकेले सिर मुड़ाकर मुनि हो आश्रमोंमें स्थित इन सब वृक्षोंमेंसे एक एकसे भीख मांग मांग जीवनको बचाऊंगा। सब प्रिय और अप्रियको छोड़कर धूलसे देहको नहला कर खाली घरमें वा पेड़की जड़में बसूंगा, किसी प्रकारसे नतो हर्ष और न शोक करूंगा, अपनी निन्दा और प्रशंसाको समान समझूंगा, आशीस वा प्रणाम की इच्छा न करूंगा; और बिना बखेड़ा तथा किसीसे दान न लेकर दिन काटूंगा। मैं किसीपर न तो हंसूंगा और न भौंह चढ़ाऊंगा; सदा प्रसन्नमुख होकर सर्व्वभूतोंके हितमें नियुक्त रहूंगा; अण्ड, स्वेद,

जरायु और उद्भिदसे जन्म लिये हुए इन चार प्रकारके स्थावर जंगम प्राणियों पर हिंसा प्रगट नहीं करूंगा; अपनी प्रजावत सर्व्व भूतों पर तुल्य दृष्टि रखूंगा। नित्य पांच वा दश घरोंमें एकही बार भीख मांगूंगा; उनसे भीख न मिलै, तो बिना भोजनभी दिन गंवाऊंगा; स्वल्प भोजन किया करूंगा, पर तौभी एक बारमें न मिलै, तो फिर कभी भीख न मांगूंगा; सात वा दश घरमें मांगनेपर यदि भीख न मिलै, तो लोभसे दूसरे घरमें फिर नहीं जाऊंगा। चाहे लाभ होवे वा नहीं, मैं सबोंको समान समझूंगा और कठोर तप करूंगा! किसीके बसूलेसे मेरे एक हाथको काटने और चन्दनसे दूसरे हाथको सुगन्धयुक्त कर देनेमें दोनोंमेंसे किसीको नतो हित और न अहितकी इच्छा करूंगा। मैं जीवन और मृत्युसे आनन्द वा द्वेष प्रगटकर न तो कभी उछल उठूं और न कभी मुर्झाऊंगा। चेतनयुक्त जन निमिषादि कालके नियमसे जो सब स्वर्गादि फलदायी मङ्गलयुक्त कार्य्य कर सकते हैं, मैं सम्पूर्ण रूपसे चितके पापको धोकर उन सब क्रियादिको कर कर धर्म्मार्थ त्याग और अनित्य फल देनेवाली सब इन्द्रियोंकी क्रियाओंको त्याग दूंगा और अविद्यादि सर्व्व प्रकारके जालको फाड़कर सब पापोंसे साफ होकर वायुका गुण लिये रहूंगा, किसीके वशमें नहीं जाऊंगा। सदा ऐसी रीतिसे चलकर निर्भय पथको आश्रय करके देह छोड़ूंगा; वीर्य्यवर्जितहोकर आत्मतत्त्वरूपी धर्म्मसे सदा च्युत निजवीर्य्यनाशी कुमार्ग पर कभी पांवको न रखूंगा। काम रहित होनेपरभी जो कामयुक्त होकर दीनके समान फिर काम-क्रियामें फंसता है, वह सुकार्य्य करे वा कुकार्य्य करे अवश्यही कुत्तेके पथमें चलता है अर्थात् जूठा चाटनेवाला है।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर राजा अति दुःखीचित्तसे यह सब बातें कहकर लम्बी सांस छोड़कर कुन्ती और माद्रीकी ओर आंख फेर कर बोले, कि कौशल्या, विदुर, बन्धुसहित राजा धृतराष्ट्र आर्य्या सत्यवती, भीष्म राजपुरोहितलोग, व्रतशील सोम पीनेवाले महात्मा ब्राह्मणगण और जितने नगरके वृद्धजन मेरे आश्रयमें हैं, उन सबोंसे प्रसन्नकर कहना, कि पाण्डु प्रव्रज्या आश्रमको शरण लेकर वनमें गया है! कुन्ती और माद्री वनवासका संकल्प ठाने हुए पतिके वचन सुनकर यथायोग्य वाक्य बोलीं। हे भरतश्रेष्ठ! दूसरे बहुत आश्रम हैं, जिनको आश्रयकर आप इन दो धर्म्मपत्नियोंके साथ कठोर तपस्या कर सकेंगे, और इसमें सन्देह नहीं है, कि देह छोड़नेके लिये महाफलको पाकर स्वर्गको प्राप्त करेंगे। हम दोनोंभी पतिलोकयुक्त होकर अब इन्द्रियोंको रोककर कामना और सुखको तजकर कड़ी तपस्या करेंगी। हे महाप्राज्ञ प्रजानाथ! आप हमको छोड़ देंगे तो बिना सन्देह हम आजही प्राण छोड़ेंगी। पाण्डु बोले, कि तुम्हारा यह निश्चय यदि धर्म्मके अनुसार होवे, तो मैं अपने पिताकी अव्ययवृत्तिको आश्रयकर लूंगा। ग्रामके भोजन और ग्रामके सुखको छोड़कर वल्कल पहिन कर और फल मूल खाता हुआ भारी तपकर घने वनमें घूमूंगा; चीर, चर्म्म और जटा धारणकर नियमित भोजन कर, भूख प्यास पर ध्यान न रखकर ठण्ढी हवा और धूपको सहकर और अङ्गोंको दुबला पतला बनाकर दोनों समय नहाता और अग्निमें हवन करता हुआ कठोर तपस्यासे इस शरीरको सुखा डालूंगा। निरालेमें रहकर कच्चा और पक्का और वाणप्रस्थके योग्यशास्त्रकी चर्चा करता हुआ, बनके फल, जल और बातोंसे पितर और देवोंका तर्पन करूंगा; ग्रामवासियोंकी बात तो दूर रही, एकही घरमें टिके हुए, वाणप्रस्थोंकाभी कभी

अप्रिय कार्य्य नहीं करूंगा; जबतक यह देह न छूटेगी तबतक मैं योंही इनसब वनकी शास्त्रोंकी कठोर विधियोंकी पालन करता हुआ जीवित रहूंगा।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि कौरवनन्दन राजा पाण्डु दोनों स्त्रियोंसे यह बात कह कर चूड़ामणि, निष्क, अङ्गद, कुण्डल, मूल्यवान वस्त्र और स्त्रियोंके आभूषण आदि सब वस्तु ब्राह्मणो को देकर, साथियोंसे बोले, कि तुम हस्तिनापुरमें जाकर कहना, कि कुरुनन्दन पाण्डु अर्थ, काम, सुख, और परम प्रिय स्त्रीसे मिलनेके सुख सबको तज प्रव्रज्याश्रम लेकरके स्त्रियोंके संग वनको पधारा है। अनन्तर उनके साथी और नौकर उन भरतवंशके सिंह-रूपी नरेशकी नाना करुणा की बातें सुनकर अति दुःखयुक्त कोलाहलसे हाहाकार करते हुए रोने लगे; आगे राजाको तज कर शोकके आंसू गिराते हुए उनकी सब बातोंके साथ विना विलम्ब हस्तिनापुरमें जा पहुंचे। नरश्रेष्ठ धृतराष्ट्र उनके मुखसे उनकी सब घटनाओंको सुन कर पाण्डुके लिये बड़ा शोक करने लगे। वह भाईके शोकसे विकल होकर उन्हीं बातोंको सोचसोच सेज, आसन, भोग किसीसे सुख नहीं पासके। हे कौरववंशी! इधर राजकुमार पाण्डु फल मूल खाते हुए दोनों स्त्रियोंके साथ नागशत पर्व्वतको पधारे। आप उस चैत्ररथ पर चढ़ कर कालकूट पर्व्वतको पीछे रखके हिमाचलसे होते हुए गन्धमादनमें जा पहुंचे। हे महाराज! वह महाभूत, सिद्ध और परम ऋषियोंसे रक्षित होकर समभूमि और ऊंचे स्थानोंमें वासकर चुके। अन्तमें इन्द्रद्युम्न तालको प्राप्तकरके हंसकूटको पीछे छोड़ कर शतशृङ्ग नामक पहाड़ पर कठोर तप करने लगे।

सम्भवपर्व्वमें एकसौ उन्नीस अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजो बोले, कि हे भारत! वीर्य्यवन्त पाण्डु उस स्थानमें बड़ी अच्छी तपस्यामें सदा नियुक्त रहकर सिद्धचारणोंके अति प्रिय बने। वह गुरुसेवक, अहङ्कारवर्ज्जित, संयतात्मा और जितेन्द्रिय होकर निज वीर्य्यसे स्वर्गको प्राप्तकरनेके योग्य पराक्रमी बने। कोई कोई ऋषि उनको भाई, दूसरे मित्र समझने लगे और सब अन्यऋषि उनको पुत्रवत पालने लगे। हे भरतश्रेष्ठ! अनन्तर पाण्डु बहुत दिनों तक विना कलङ्क तपोबल बटोरकर ब्रह्मर्षि समान बने। एक समय अमावस्या तिथिमें व्रतशील महर्षि लोग भगवान् स्वयम्भूके दर्शनके लिये एकत्र होकर ब्रह्मलोकमें जा रहे थे, कि ऐसे समयमें पाण्डु उन ऋषियों को जाते हुए देखकर बोले, कि हे वाक्निपुण महर्षियो! कहिये, आप कहां जायंगे! ऋषिलोग बोले, आज ब्रह्मलोकमें महात्मा देव तथा ऋषियोंकी और महात्मा पितरोंकी बड़ी बटोर होगी; हम ब्रह्मलोकमें जाते हैं।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि पाण्डु महर्षियोंके साथ जानेकी इच्छासे स्वर्गको पार करनेके लिये एकायक उठकर दोनों स्त्रियोंके साथ शतशृङ्गसे उत्तरकी ओर चले। तब तपस्वियोंने उनसे कहा, कि हमने उत्तर की ओर शैलराजसे क्रमशः ऊपरको चलते हुए इस सुन्दर पर्व्वतपर अगणित अगम्य देश देखे हैं, बीच बीचमें देव गन्धर्व्व और अप्सराओंके सैकड़ों यानोंसे भरे और गीतोंसे गूंजते हुए स्थान दीख पड़ते हैं, कहीं कहीं कुवेरकी समभूमि और रूखी फुलवाड़ी, बड़ी बड़ी नदी और दुर्गम कन्दरा हैं; कोई कोई स्थान सदा हिमसे ढपे रहते हैं; वहां न तो वृक्ष मृग, अथवा पक्षी हैं न और कुछ हैं; कहीं कहीं ऐसी भारी वर्षा होती है, कि वह स्थान दुर्गम वा फिसलने हो जाते हैं; किसी पशुकी बात

तो दूर रहो, पक्षिगणभी वहां पहुंच नहीं सकते, केवल अकेला वायु और सिद्ध तथा परम ऋषि लोग वहां जा सकते हैं। इन राज-कन्याओंने कभी दुःख-सहन नहीं किया है, सो दुर्गम शैलराज पर चलनेमें क्यों नहीं मुर्भाविंगी? अतएव हे भरत-श्रेष्ठ! तुम मत आओ। पाण्डु बोले, कि हे महाभागवृन्द! कहा है, कि जिसके सन्तान नहीं है, उसके स्वर्गमें घुसनेके द्वार नहीं हैं; मेरी सन्तान नहीं है, सो अति दुःखसे जलकर आपसे ऐसा कहता हूं। हे तपोधनवृन्द! मैं पितरोंके ऋणसे मुक्त न होनेहीके कारण बड़ा दुःखी बना हूं, मुझको निश्चय होगया है, कि मेरे इस शरीरके नष्ट होने पर पितर लोगभी नष्ट होंगे। मनुष्य लोग पितरोंके, देवोंके, ऋषियोंके और मनुष्योंके इन चार ऋणोंको लेकर इस धरतीमें जन्म लेते हैं और धर्मानुसार उनको वह ऋण भरनाही चाहिये; धर्म जाननेवाले कहते हैं, कि जो मनुष्य इन स्वाभाविक ऋणोंके भरनेके लिये उचित समयमें मन नहीं लगाता है, उसको सुगति नहीं होती है। मानवलोग यागसे देवोंको, पठन तथा तपसे मुनियोंको, पुत्रोत्पादन तथा पिण्ड दानसे पितरोंको और निष्ठुरतासे रहित होकर मनुष्योंको तुष्टकर उनके ऋणोंसे मुक्त होते हैं। मैं देव, ऋषि और मनुष्य, इनके ऋणसे धर्मानुसार मुक्त हुआ हूं, पर मेरे शरीरके नष्ट होने पर पितरोंको नष्ट होना पड़ेगा। हे तपस्वीगण! जो लोग नरोंमें श्रेष्ठ हैं, वे पितरोंके ऋणको भरनेको सन्तान पैदा करनेके निमित्त पृथ्वीमें जन्म लेते हैं, पर मैं अभीतक उक्त ऋणसे मुक्त नहीं हो सका हूं, सो पूछताहूं, कि मैंने जिस प्रकार पिता विचित्रवीर्यके क्षेत्रमें महर्षि व्याससे जन्म लिया है, क्या वैसेही मेरे इस क्षेत्रमें सन्तान उत्पन्न हो सकेगी? ऋषिलोग बोले, कि हे धार्मिक नरेश! हम दिव्य नेत्रोंसे देखते हैं, कि तुम्हारे पाप-रहित देववत् शुभ पुत्र उत्पन्न होंगे, सो हे नर-व्याघ्र! तुम कर्मसे देवोंका अभिप्राय पूरा करो, क्योंकि बुद्धिमान जन न घबराकर सुन्दर फल प्राप्त करते हैं! ऐ महाराज! तुम्हारा फल दीख पड़ता है, तुम सन्तान उत्पन्न करनेका प्रयत्न करो, उससे अवश्यही आनन्द देनेवाले सब्बे गुणोंसे सजे हुए पुत्र पा सकोगे। श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि राजा पाण्डु तपस्वियोंकी वह बात सुनकर और यह स्मरणकर, कि मृगके शापसे उनकी पुत्र पैदा करनेकी शक्ति नष्ट हो गयी है, चिन्तायुक्त हुए। आगे वह यशस्विनी धर्मपत्नी कुन्तीसे निरालेमें बोले, कि हे कुन्ती! तुम इस विपत्कालमें पुत्र उत्पन्न करनेका प्रयत्न करो; देखो, धर्म कहनेवाले सदा कहते हैं, कि सन्तान इन तीनों लोकोंमें धर्म भरी प्रतिष्ठासी हुई है। याग, दान, तपस्या और भले प्रकार अनुष्ठान किया हुआ नियम, यह सब उनको पवित्र नहीं करते हैं, जिनके कि सन्तान नहीं होती। हे सुन्दरी! यह जाननेही कारण मैं सोचके देखता हूं, कि मेरे पुत्र पैदा न होनेसे मैं शुभलोकको नहीं प्राप्त कर सकूंगा। री भीरु! पहिले जैसे मैं बुरी आत्मयुक्त और निष्ठुर कार्य्य में दत्तचित्त था, वैसेही मृगके शाप से मेरी सन्तान पैदा करनेकी शक्ति जाती रही है। धर्मशास्त्रोंमें कहा है, कि ६ प्रकारके पुत्र वन्धुके धनके अधिकारी होते हैं, और ६ प्रकारके पुत्र उसके अधिकारी नहीं होते। री पृथे! मैं उन बारह प्रकारके पुत्रोंकी बात कहता हूं, सुनो। (पहिला) औरस अर्थात् जो व्याही स्त्रीसे निजके द्वारा पैदा हो, (दूसरा) प्रणीत, अर्थात् जो अच्छे पुरुषके द्वारा निज क्षेत्रसे पैदा हो, (तीसरा) परिक्रीत, अर्थात् जो मोल लिये हुए वीर्य्यके द्वारा निज क्षेत्रसे पैदा हो, (चौथा) पौनर्भव अर्थात् जो विधवाके गर्भसे अन्यके द्वारा पैदा हो,

(पांचवा) कानीन अर्थात् जो कन्यावस्थामें पैदा हो, (छठवां) रजस्वलाके गर्भसे पैदा हुआ, अर्थात् जो गूढ़ वा कुण्ड नामसे प्रसिद्ध है, (सातवां) दत्त अर्थात् जो पूर्व्व पिता मातासे देदिया जाय, (आठवां) क्रीत, अर्थात् जो धन देकर ले लिया गया हो (नवां) उप-क्रीत, अर्थात् जो कृत्रिम हो, (दशवां) स्वयं उपागत अर्थात् मैं तुम्हारा पुत्र बना, यह कह-के जो स्वयं आवे, (ग्यारहवां) ज्ञातिरेता सहोढ़ अर्थात् जो भाई आदिसे गर्भवती स्त्रीसे विवाह करने पर उसके गर्भसे पैदा हो, (बार-हवां) हीनयोनिधृत, अर्थात् जो हीन जाति की स्त्रीसे पैदा हो। इन बारह प्रकारके पुत्रोंमें पहिला न बन पड़े, तो उससे पिछला, फिर उससे पिछला; फिर वहभी न हो तो उससे पिछला, इस प्रकारसे माताको पुत्रकी इच्छा करनी चाहिये। लोग आपत्कालमें उत्तम छोटे सहोदर भाईसे पुत्रको कामना किया करते हैं। स्वायम्भुव मनुने कहा है, कि मनुष्यगण अपने वीर्य्यके बिना अन्य जनसे-भी धर्म्म-फल देनेवाले श्रेष्ठ पुत्र प्राप्त कर सकते हैं। अतएव हे कुन्ती! मैं इस समय सन्तान पैदा करने की शक्तिसे रहित हुआ हूं, सो तुमको नियोग करता हूं, तुम सत्य वा श्रेष्ठ-जनसे यशस्वी पुत्र प्रसव करो। हे पृथे! शरदण्डायनकी कन्याकी कथा कहता हूं,सुनो। वह वीरकी स्त्री पतिसे पुत्रपैदा करनेको नियुक्त होकर ऋतु-स्नान करके रात्रिको चौराहे पर खड़ी हुई। आगे एक सिद्ध ब्राह्मणको वरण कर पुंसवन यज्ञमें अग्निकी आहुति चढ़ाकर उस धर्म्मको पूरा करनेके पीछे उनसे मिली। इससे दुर्जय आदि तीन महारथियोंका जन्म हुआ। हे कल्याणि! उस प्रकार तुमभी मेरे नियोगसे ऐसे किसी ब्राह्मणसे, जो मुझसे तपमें श्रेष्ठ हो,शीघ्र सन्तान पैदा करने की चेष्टा करो!

सम्भवपर्व्वमें एकसौ बीस अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे महाराज! कुन्ती यह बात सुन कर कुरुवंशियोंमें श्रेष्ठ भूपति पाण्डुसे बोली कि, हे धर्म्मज्ञ राजीवनेत्र! मैं आपको धर्म्मपत्नी और आपहीके प्रेममें फंसी हूं; सो आपको मुझसे ऐसा कहना कभी उचित नहीं है। हे वीर महाभुज! धर्म्मा-नुसार आपही को मुझसे अपने वीर्य्यके द्वारा सन्तान पैदा करनी चाहिये। हे मानवोंमें व्याघ्ररूपी पुरुष! ऐसाही होनेसे मैं आपके साथ स्वर्गमें जा सकूंगी; अतएव हे कुरुनन्दन आपही सन्तानके लिये मुझसे मिलिये क्योंकि मैं मनसेभी दूसरे पुरुषसे मिला नहीं चाहती; विशेष इस भूमण्डलमें ऐसा कौन है, जो आपसे श्रेष्ठ हो सके? हे धार्म्मिक, विशालाक्ष! पहिले मैंने एक पौराणिक कथा सुनी थी, उसको आपसे कहती हूं, सुनिये। पूर्व्वकालमें कुरुवंश-बढ़ानेवाले परम धार्म्मिक व्युषिताश्व नामक एक प्रसिद्ध राजा थे। उन धर्म्मात्मा महाभुज नरेशके याग आरम्भ करदेने पर इन्द्र सहित देवता और देवर्षिलोग वहां आ पहुंचे थे। आगे उन महात्मा राजर्षि व्युषिताश्वके यज्ञमें देवराज सोमरस पीकर और ब्राह्मणलोग दक्षिणा पाकर उन्म-त्तके समान हो गये थे,वे देवगण और ब्रह्मर्षि-लोग स्वयं कर्म्म पूरा करने लगे। हे राजन्! जिस प्रकार हिम अन्तहोनेपर भगवान् आदित्य सम्पूर्ण भूतोंको पीछे रखकर आगे बढ़कर प्रकाशमान होते हैं, वैसेही व्युषिताश्व सर्व्व-लोकोंको पीछे रखकर सोहने लगे। हे श्रेष्ठ-भूप! वह प्रतापी राजेन्द्र व्युषिताश्व दश हस्तीके समान बल रखते थे, सो अश्वमेधयज्ञमें पूर्व्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण, इन चारों ओरके राजाओंको हराके पकड़ पकड़ कर अपने वशमें लाये थे। हे कुरुकुल-श्रेष्ठ! पुराण कहनेवालेलोग यह कथा कहा करते हैं, कि यश-वन्त व्युषिताश्वके पृथ्वीनाथ होनेसे उन्होंने समुद्र-

तक इस धरतीको जीतकर सब लोकोंका इस प्रकार पालन किया था, कि जैसे पिता औरस पुत्रको पालते हैं। उन्होंने अनन्त रत्न बटोरकर सोमसंस्था अर्थात् ज्योतिष्टोमादि महायज्ञोंको बढ़ाकर अगणित सोमलता निचोड़ी और ब्राह्मणोंको प्रचुर धन दिया था। राजा काक्षीवान् की कन्या भद्रा उनकी परम प्यारी स्त्री थी। हे मनुष्योंमें इन्द्ररूपी! भूमण्डलभरमें उस भद्राके समान अनुपम रूपवती नारी कोई दूसरी नहीं थी। उस दम्पतिमें नारी जिस प्रकार पतिहीकी कामना करती थी। उस प्रकार पतिभी उस नारीके प्रेमी थे। अनन्तर भद्राके बड़े प्रेमी व्युषिताश्वको यक्ष्माने घेरा, इससे वह सूर्य्यकी भांति स्वल्प कालके बीचमें अस्त हो गये। उस भूपालके परलोकको सिधारनेपर उनकी स्त्री शोकसे बड़ी विह्वल हुई। हे पुरुषोंमें व्याघ्ररूपी नरेश! भद्राने अति दुःखी होकर जैसा शोक किया था, वह कहती हूं, सुनिये।

भद्रा भर्त्ताको लक्ष्यकर बोली, कि हे परम धर्म्मज्ञ! पतिके बिना नारी अति निष्फला होती हैं। जो नारी पतिके बिना जीवनको धारण किये रहती है, वह सदा दुःखी होकर मरीसी बनी रहती है। हे क्षत्रियश्रेष्ठ! पतिके बिना अबलाओंकी मृत्युही मङ्गलदायी होती है, अतएव मैं तुम्हारे साथ चली जाना चाहती हूं, प्रसन्न होकर मुझको साथ ले चलो। हे महाराज! तुम्हारे बिना मुझे क्षण भर भी जीनेकी इच्छा नहीं है, अतएव प्रसन्न होओ, मुझको बिना बिलम्ब यहांसे ले जाओ। हे राजोंमें व्याघ्ररूपी पुरुष! चाहे समभूमि हो, चाहे रूखा हो, हर स्थानमें मैं तुम्हारे सङ्ग पीछे पीछे जाऊंगी, फिर न लौटूंगी। हे नरव्याघ्र! मैं तुम्हारी प्रिय और हित करनेमें सन्नद्द, परछाहींके समान पीछे जाती हुई और सदा आज्ञा माननेवाली बनी रहूंगी! हे पुष्करेक्षण! तुम्हारे बिना आजसे कष्टदायी हृदय सोखने-हारी चित्तपीड़ा मुझको जकड़ लेगी। मुझको निश्चय जान पड़ता है, कि जो एकत्र रहते हैं, बुरे भाग्यवश मैंने उनको एक दूसरेसे अलग कर दिया था, उस पापहीसे मुझे यह भारी विरह आ पड़ा है! हे पृथ्वीनाथ! जो नारी पतिसे अलग-होकर क्षण भरभी जीती रहती है, वह मानों नरकमें घुसकर बड़े ही कष्टसे दिन काटती है। मैंने पूर्व्वजन्ममें इकट्ठे विराजती हुई दम्पतियोंको एक दूसरेसे अलग कर दिया था, उस पापकर्म्मसे बटोरे हुए दुःखने इस समय विरहका स्वरूप लेकर मुझपर चढ़ाई की है। हे भूपाल! मैं आजसे तुमको आंखोंके सामने रखकर कुशाके बिस्तर पर लेटी रहूंगी; किसी सुखसे सुखी न होऊंगी। हे नरव्याघ्र! दर्शन दीजिये। हे नाथ! हे नरनाथ! कातर होकर विलपती हुई, असुखी इस दीना अधीनाको आज्ञा दी।

कुन्ती बोली, कि इस प्रकारसे वह व्युषिताश्वकी स्त्री उस मुर्देसे लिपटकर बार बार भांति भांतिके विलाप कर रही थी, कि ऐसे समयमें यह आकाशवाणी हुई, कि—"भद्रे! उठो, जाओ; री मधुरहासिनी! तुझको वर देता हूं, मैं तेरेसे सन्तान पैदा करूंगा। री सुन्दरी! अष्टमी चतुर्द्दशीमें तू ऋतुस्नान-कर मुझसे अपने बिस्तर पर लेटना।" यह आकाशवाणी होनेपर पुत्र चाहती हुई देवी पतिव्रता भद्रा उस बातके अनुसार उस प्रकार लेटी रही। हे भरतवंशमें श्रेष्ठ पुरुष! उस देवीने उस शवके वीर्य्यसे तीन शाल्व और चार मद्र, सब सात सन्तान प्रसव कीं। हे भरत-श्रेष्ठ! उस प्रकार आपभी तप और योगके बलसे मानसके द्वारा मुझसे सन्तान पैदा कर सकते हैं।

सम्भवपर्व्वमें एकसौ इक्कीस अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि धर्म्मज्ञ राजा पाण्डु देवीसे यह बात सुनकर फिर उनको अच्छा धर्म्मयुक्त यह वाक्य बोले, कि हे कुन्ति! तुमने जो कहा, वह ठीकही है। व्युषिताश्वने ऐसाही किया था, क्योंकि वह देववत थे; पर धर्म्मज्ञ महात्मा महर्षियोंने पुराणोंमें धर्म्मका जो तत्त्व दिखाया है, वह तुमसे कहता हूं, सुनो, ऐ सुन्दरि! पूर्व्वकालमें स्त्रियोंकी तुच्छ मनाही नहीं थी; ऐ मधुरहासिनी! वे उन दिनों स्वतन्त्र अर्थात् पतिआदियोंसे न रोकी जाकर भोगके सुखकी आशामें घूमा करती थीं। ऐ सुन्दरी! वे कुमारी-दशाहीसे व्यभिचार किया करती थीं, इससे उनको अधर्म्म नहीं होता था, क्योंकि वही पूर्व्वकालका धर्म्म था। ऐ सुन्दरि! आजतक तिर्य्यग् योनिकी प्रजा काम द्वेषसे रहित होकर उस पुराने धर्म्मसे चलती हैं। महर्षिलोगभी प्रमाणसे दर्शाये हुए इस धर्म्मको प्रशंसा किया करते हैं, ऐ सुन्दरि! उत्तर-कुरुओंमें आजतक इस धर्म्मकी पूजा हो रही है, क्योंकि वह सनातन धर्म्म स्त्रियों पर कृपायुक्त है। पर थोड़े कालसे इस विषयमें वर्तमान नियम होरहा है; जिस हेतु जिनसे यह स्थापित हुआ है, विस्तारपूर्व्वक कहता हूं, सुनो।

हमने सुना है, कि उद्दालक नामक एक महर्षि थे। श्वेतकेतु नामसे प्रसिद्ध उनके एक पुत्र भये थे। उन श्वेतकेतुहीने क्रोधित होकर धर्म्मके अनुसार यह मर्य्यादा ठहरायी है। ऐ पद्मनेत्रवती! उसका कारण सुनो। एक समय एक ब्राह्मण श्वेतकेतुके पिताके सामने उसकी मातासे हाथ थामकर बोला, कि आओ हम चलें। अनन्तर ऋषिकुमार श्वेतकेतु अन्य पुरुषसे माताको लिवाये जाते देखकर दुःखी और क्रोधित हुए। उनके पिता उद्दालक उनको क्रोधसे कांपते हुए देखकर बोले, कि बेटा! तुम क्रोधित मत होओ, सनातन धर्म्म ऐसाही है। इस भूमण्डलमें सर्व्व वर्णोंकीही स्त्रियां विना रोक टोक सबोंसे मिलती हैं। ऐ बेटा! गौके समान सर्व्ववर्णोंकी प्रजाभी निज निज वर्णोंसे व्यवहार किया करती हैं। आगे ऋषिकुमारने वह सहनेको असमर्थ होकर भूमण्डलमें स्त्रीपुरुषोंकी यह मर्य्यादा ठहरायी। ऐ महाभागे! हमने सुना है, कि उससे मनुष्य समाजमें यह नियम ठहर गया है; यह दूसरे प्राणियों पर नहीं वर्त्तता है। श्वेतकेतुने यह नियम रचा, कि आजसे जो नारी पतिको तजकर व्यभिचार करेगी, उसको घोर दुःखदायी भ्रूणहत्याका पाप लगेगा। फिरभी इस भूमण्डलमें जो पुरुष कौमारवस्थासे ब्रह्मचारिणी, पतिव्रता प्यारी स्त्रीको तजकर परायी नारीसे मिलेगा उसकोभी वैसाही पाप लगेगा। जो स्त्री पुत्र पैदा करनेके लिये पतिसे न मिलकर उनकी बात नहीं मानेगी, उसकोभी वैसाही पाप पहुंचेगा। हे भीरु! उन उद्दालकके पुत्र श्वेतकेतुने बलपूर्व्वक धर्म्मके अनुसार यह मर्य्यादा ठहरायी थी। ऐ सुन्दरी! हमने सुना है, कि सौदासको स्त्री मदयन्ती पतिसे पुत्र पैदा करनेमें नियुक्त होकर महर्षि वसिष्ठके निकट गयी थी और उनसे अश्मक नामक पुत्र प्राप्त किया था। उस कामिनीने भर्त्ताका प्रियकार्य्य करने होके लिये ऐसा किया था। ऐ पद्मनेत्रे! तुम यहभी जानती हो कि कुरुओंका वंश बढ़ानेके लिये भगवान् कृष्णद्वैपायनसे हम लोगोंका जन्म हुआ। अतएव हे सुन्दरी! इन सब विषयोंको भली भांति आलोचना करके मेरी इस धर्म्मानुसारी बातको मानना तुम्हें उचित है। हे पतिव्रते, राजपुत्रि! धर्म्म जाननेवाले पुरातन धर्म्मको यह व्याख्या तो करते हैं, कि भार्य्या हर ऋतुमें पतिको छोड़कर अन्यत्र न जाय, शेष अन्य समयमें वह स्वतन्त्र हो सकती हैं; पर ऐ राजपुत्री! वेद

जाननेवाले यहभी कहते हैं, कि चाहे धर्म्म वा अधर्म्म होवे, पति भार्य्यासे जो कहे, भार्य्याको वह अवश्य मानना चाहिये। ऐ सुन्दरि! विशेष मैं पैदा करनेकी शक्तिसे हाथ धो चुका हूं, पर पुत्र पानेकी इच्छाभी रखता हूं, सो हे शुभे! मैं पुत्र देखनेकी इच्छासे तुमको प्रसन्न करनेके लिये लाल उंगलियोंसे सुशोभित इस पद्मपत्र समान हथेलीको सिर पर उठाता हूं। ऐ सुकेशिनी! तुम मेरे नियोगके अनुसार अच्छी तपस्यायुक्त ब्राह्मणसे गुणवन्त पुत्र प्रसव करो। हे पृथुश्रोणि! तुमसे मैं पुत्रवान् जनोंकी गति लाभ करूंगा। पतिके प्रिय-कार्य्य और हित चाहनेवाली सुन्दरी कुन्ती, शत्रुपुर नाशनेहारे पति पाण्डुकी यह बात सुन कर बोली, कि बालेपनमें मैं पिताके घरमें अतिथियोंकी सेवामें नियुक्त थी। उन दिनों प्रशंसित व्रतयुक्त ब्राह्मणोंकी भले प्रकार सेवा किया करती थी। एक समय धर्म्मके गूढ़तत्त्व जाननेवाले दुर्व्वासा नामक प्रसिद्ध जितेन्द्रिय महर्षि वहां आये। मैंने उनको सर्व्वप्रकारके प्रयत्नसे सन्तुष्ट किया। उन भगवान्ने मुझको अभिचारयुक्त वर देकर एक मन्त्र दे दिया और कहा, कि तुम इस मन्त्रसे जिन जिन देवोंको बुलाओगी, वह चाहे काम रहे वा नहीं रहे, उसीक्षण तुम्हारे वशमें हो जायंगे। ऐ रानि! उन देवोंकी कृपासे तुम्हारे पुत्र होंगे। हे भारत! पिताके घरमें उन दुर्व्वासाने मुझसे ऐसा कहा था। हे भूपाल! ब्राह्मणकी बात झूटी नहीं होती। अब उसका समय आ पहुंचा है; अतएव हे राजर्षि! आपकी आज्ञा होवे, तो उस मन्त्रसे किसी देवताको बुला सकती हूं, इससे हमें हितकरने वाला पुत्र प्राप्त होगा। हे सत्यकहनेवाले! कहिये, हालमें किस देवको बुलाऊं आपहीकी आज्ञासे मैं इस कार्य्यमें दत्तचित्त होती हूं।

पाण्डु बोले, कि ऐ सुन्दरि! तुम आजही इस बातका यथाविधि प्रयत्न करो। ऐ शुभे! धर्म्मको बुलाओ, क्योंकि वह देवोंमें पुण्यात्मा हैं। ऐ सुन्दरि! धर्म्म हमको किसी प्रकारसे अधर्म्ममें डाल नहीं सकेंगे और लोगभी समझेंगे, यह काम धर्म्मयुक्त ही हुआ है। इसमें सन्देह नहीं है, कि धर्म्मका दिया हुआ वह पुत्र कुरुओंमें धार्म्मिक होगा और उसका मन कभी अधर्म्मसे डसा नहीं जायगा; सो ऐ सुन्दरि! तुम संयत होकर और धर्म्मकी आश्रयकर अभिचार तथा उपचारसे धर्म्म-हीको बुलाओ। श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर वह श्रेष्ठ नारी कुन्ती भर्त्ताकी वह बात सुन उसको मान, पांव छू करके उनकी आज्ञा मानली।

सम्भव पर्व्वमें एक सौ बाईस अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे जनमेजय! जब गान्धारीने वर्षभर गर्भधारण किया था, तब कुन्तीने गर्भके निमित्त अक्षर धर्म्मको बुला करके शीघ्र उनकी पूजा की और पहिले दुर्व्वासाने जो मन्त्र दिया था, उसको यथाविधि जपने लगी। अनन्तर मन्त्रके प्रभाव से धर्म्मराज सूर्य्य-सदृश यानमें आरूढ़ होकर उस स्थानमें, जहां कुन्ती जपकर रही थी, आन पहुंचे और हंसते हुए बोले, कि ऐ कुन्ति! कहो, तुमको क्या देना होगा। कुन्ती कुछ हंसकर बोली, कि मुझको पुत्र दीजिये। अनन्तर सुन्दरी कुन्तीने योगीका स्वरूप लिये हुए धर्म्मसे मिलकर सर्व्वजीवोंका हित करनेवाला पुत्र प्राप्त किया। इसके पश्चात् कार्त्तिक महीनेकी अति प्रशंसित पूर्णा तिथि अर्थात् शुक्ला पञ्चमीकी चन्द्रयुक्त ज्येष्ठा नक्षत्रमें अभिजित् नामक आठवें मुहूर्त्तमें दिन दोपहर के समय कुन्तीने अति यशवन्त एक श्रेष्ठ पुत्र प्रसव किया। उस पुत्रके जन्म लेतेही आकाशवाणी हुई, कि पाण्डुका यह पहिला पुत्र

धर्म्मशील जनोंमें श्रेष्ठ, विक्रमी, नरोंमें उत्तम सत्य कहनेवाला, भूमण्डलका एकही अधिकारी, तीनों लोकोंमें प्रशंसित यशवन्त, तेजवन्त व्रतशील और युधिष्ठिर नामसे प्रसिद्ध होगा।" पाण्डु वह धार्म्मिक पुत्र पाकर फिर कुन्तीसे बोले कि पण्डितलोग क्षत्रिय को बलमें श्रेष्ठ कहते हैं, सो तुम एक बलमें प्रधान हो ऐसे पुत्रको प्रार्थना करो। अनन्तर कुन्तीने पति की यह बात सुनकर पवनदेवको बुलाया। आगे महाबली पवनदेव मृग पर चढ़के उसके पास आये और बोले, कि ऐ कुन्ति तुम्हें क्या दूं? तुम्हारे हृदयमें जो इच्छा हो, सो कहो। कुन्ती लज्जासे मुह नीचाकर कुछ हंस कर बोली, कि हे देवोत्तम! मुझको बड़े शरीरधारी महाबली, सर्व्व अहङ्कारको हरनेहारा एक पुत्र दीजिये। अनन्तर पवनदेवसे महाभुज भीमपराक्रमी भीमका जन्म हुआ। हे भारत! उस महाबली पुत्रके जन्म लेतेही आकाशवाणी हुई, कि "यह जन्म लिया हुआ बालक सम्पूर्ण बलियोंमें श्रेष्ठ होगा।" वृकोदर के जन्म लेतेही यह एक आश्चर्य घटना हुई, कि उसने माताकी गोदसे गिरकर देहसे पत्थर तोड़ डाला—कुन्ती बाघके भयसे भय खाकर एकायक गिर पड़ी; यह समझ नहीं सकी, कि उसकी गोदमें वृकोदर सोता था, सो वह वज्र समान शरीरधारी कुमार पहाड़ पर गिर पड़ा, उसकी देहकी चोटसे पत्थर सैकड़ों भागोंमें चूर होगया। उस आश्चर्य लीलाको देखकर पाण्डुने अचरज माना। हे भरतश्रेष्ठ! जिस दिन भीमने जन्म लिया, उसी दिन पृथ्वीनाथ दुर्य्योधनका जन्म हुआ। वृकोदरका जन्म होनेपर पाण्डु फिर सोचने लगे, कि क्योंकर मेरे एक प्रधान लोकश्रेष्ठ पुत्र पैदा होगा। यह भूमण्डल दैव और पुरुषकारसे पूरा प्रतिष्ठित है; इनमेंसे दैव कालके अनुसार विधि-वश प्राप्त होता है। सुनता हूं, कि इन्द्र देवोंके राजा तथा प्रधान हैं; वह अपरिमित बल और उत्साहयुक्त हैं, और उनका वीर्य्य तथा प्रकाश भी अपरिमित है। तपस्यासे उनको प्रसन्न कर सकूं, तो महाबली पुत्र पा सकूंगा; वह मुझको जो पुत्र देंगे, वह अवश्यही सबोंसे श्रेष्ठ होगा और रणस्थलमें मर्त्यलोक तथा अमर्त्यलोक वालोंको हरा सकेगा, सो मैं कर्म्म, मन और वाक्यसे कठोर तप करूंगा। अनन्तर कौरवनन्दन महाराज पाण्डुने, महर्षियोंसे परामर्श कर कुन्तीको यह आज्ञा दी, कि वर्षभरमें पूर्ण होवे, ऐसा कोई शुभ व्रत करो और आपभी उन स्वर्गनाथको उपासनाकी इच्छासे परम समाधिसे कठोर तपस्याको आश्रयकर एक पांवसे खड़े हो सूर्य्यकी धूममें उदयके कालसे अस्तकालतक तपने लगे। बहुतकाल बीतने पर देवराज उनके पास आपहुंचे और बोले, कि "मैं तुमको तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध एक श्रेष्ठ पुत्र दूंगा; वह पुत्र गौ ब्राह्मण और मित्रोंका हित करनेवाला, अमित्रोंको शोक पहुंचानेहारा, सब बान्धवोंका आनन्ददायी और सम्पूर्ण शत्रुकुलका नाश करनेवाला होगा।" महात्मा इन्द्रके यह बात कहनेपर, धर्म्मात्मा कौरव देवराज की उस बातको स्मरण कर कुन्तीसे बोले, कि ऐ कल्याणि! तुम्हारा कर्म्म सुफल हुआ है। देवनाथ प्रसन्न होकर तुम्हें सङ्कल्पित पुत्रको देना चाहते हैं। ऐ सुन्दरी! अब एक और यशस्वी शत्रु दमनेहारा, नीतियुक्त, महात्मा, सूर्य्य समान तेजपूर्ण न हारनेवाला, क्रियावान, देखनेमें अद्भुत, क्षत्रियतेजसे पूरित ऐसे कीर्त्तियुक्त जैसा मनुष्योंमें दीख नहीं पड़ता, पुत्र उत्पन्न करो। ऐ सुन्दरी! मैंने देवराजको प्रसन्न कर लिया है, तुम उनको बुलाओ। श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि यशस्विनी कुन्तीने यह सुनकर इन्द्रको बुलाया। अनन्तर देवराजने आकर अर्ज्जुनका जन्म दिया। कुमारको

जन्म लेतेही बड़े गम्भीर शब्दसे आकाश गूंजकर आकासवाणी हुई। उससे सम्पूर्ण आश्रममें रहनेवाले प्राणियोंके कानोंमें सुन्दरी कुन्तीको पुकार सहित यह सुन पड़ा, कि ऐ कुन्ति! कार्त्तवीर्य्य सदृश बीर्य्यवान्, शिवि समान पराक्रमी, इन्द्रवत अजीत यह कुमार सर्व्वत्र तुम्हारा यश फैलावेगा। उपेन्द्रसे जिस प्रकार अदितिकी प्रीति बढ़ी थी, वैसेही उपेन्द्रवत यह पुत्र तुम्हारी प्रीति औरभी बढ़ावेगा। यह कुमार मद्र, कुरु, सोमक, चेदि, काशी करुष आदि देशोंको वशमें लाकर कौरववंशकी राजलक्ष्मीधारण करेगा। और इस पुत्रकी भुजवीर्य्यसे अग्निदेव खाण्डवप्रस्थमें सर्व्वभूतोंके मेदसे बड़ा सन्तोष प्राप्त करेंगे। यह महावली धीर पुरुष भाइयोंके सहित सम्पूर्ण महीपालोंको जीतकर तीनवार अश्वमेध यज्ञ करेगा। हे कुन्ति! यह अतियशवन्त पुत्र जामदग्न्य और विष्णु समान पराक्रमी और वीर्य्यवान् जनोंमें श्रेष्ठ होगा। यह युद्धमें महादेव शङ्करको प्रसन्न कर उनसे पाशुपत अस्त्र प्राप्त करेगा और देवराजकी आज्ञासे देवोंके द्वेष करनेवाले निवातकवच नामक दैत्योंको वध करेगा। यह पुरुषोंमें श्रेष्ठ जन, सम्पूर्ण दिव्यास्त्र सीखकर बिगड़ी हुई राजलक्ष्मीको फिर सुधारेगा" कुन्तीने पुत्रके विषयमें यह आश्चर्य वाणी सुनी। बड़े वेगसे उच्चारी हुई उस वाणीको सुनकर शतशृङ्ग पर विराजते हुए, तपस्वियोंको बड़ा आनन्द हुआ और विमानपर आरूढ़ देवगणभी बड़े प्रसन्न हुए। आकाशमें बड़े घोर कोलाहलसे नगाड़े बजने लगे, घोर शब्द होने लगा, बिना रोक टोक फूल बर्षने लगे और सब देव मिलकर पार्थकी पूजा करने लगे। कद्रु और विनताके पुत्रगण, गन्धर्व्वगण, अप्सरागण और प्रजापतिगणके तथा भरद्वाज कश्यप, गौतम विश्वामित्र, जमदग्नि, वशिष्ठ और (सूर्य्यके नष्ट होने पर जो उदित हुए थे, वह भगवान्, अत्रि यह सात महर्षि वहां आये। मरीचि अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, प्रजापति दक्ष) गन्धर्व्व और अप्सरागण यह भी वहां आये। अप्सरावृन्द दिव्यमाला और दिव्यवस्त्र पहिनकर सर्व्व आभूषणोंसे बन ठनकर अर्ज्जुनकी प्रशंसाके गीत गाने और नाचने लगीं। चारों ओर महर्षिलोग स्वस्त्ययनके मन्त्र जपने लगे; श्रीमान् तुम्बुरुने गन्धर्व्वोंके साथ गीत आरम्भ किया। हे नरेश! भीमसेन, उग्रसेन, ऊर्णायु, अनघ, गोपति, धृतराष्ट्र, सूर्य्यवर्चा, युगप, तृणप, कार्ष्णि, नन्दि, चित्ररथ, शालिशिरा, पर्ज्जन्य, कलि, नारद, सद्वा, बृहद्वा, बृहक, महामना, कराल, ब्रह्मचारी, बहुगुण, विख्यात सुवर्ण, विश्वावसु, भुमन्यु, सुचन्द्र, शरु और ललित गीत गानेवाले प्रख्यात हाहा और हूहू यह देव और गन्धर्व्व गीत गाने लगे। प्रशस्तलोचना, महाभागा अप्सरायें सर्व्व आभूषणोंसे सज धजकर प्रसन्न चित्तसे नाचने और गाने लगीं। अनूचाना, अनवद्या गुणमुख्या गुणावरा, अद्रिका, सोमा, मिश्रकेशी, अलम्बुषा, मरीचि, शुचिका, विद्युतपर्णा, तिलोत्तमा, अम्बिका, लक्षणा, क्षेमा, देवी रम्भा, मनोरमा, असिता, सुबाहु, सुप्रिया, सुवपु, पुण्डरीका सुगन्धा, सुरसा, प्रमाथिनी, काम्या और शारद्वती यह सब अप्सरायें जुट बांध नाचने लगीं। और मेनका सहजन्या, कर्णिका, पुञ्जिकस्थला, ऋतुस्थला, घृताची विश्वाची पूर्व्वचित्ती, उम्लोचा और प्रम्लोचा, उर्व्वशी, विशालनेत्रा यह ग्यारह स्वर्गकी वेश्या एकत्र होकर गीत गाने लगीं। धाता, अर्य्यमा, मित्र, वरुण, अंश, भग, इन्द्र, विवस्वान, पूषा त्वष्टा, सविता और विष्णु यह बारह आदित्य और पर्ज्जन्य तथा पावकगण आकाशमें विराजते हुए पाण्डुपुत्र की महिमा बढ़ाने लगे। हे शत्रुनाशी पृथ्वीनाथ! मृग-व्याघ्र, सर्प; अति

यशवन्त निऋति, अजैकपात, अहिर्बुध्न, पिनाकी, दहन, ईश्वर, कपाली, स्थाणु और भगवान् भग यह ग्यारह रुद्र वहां आये। दोनों अश्विनीकुमार, आठो वसु, महाबली मरुद्गण विश्वदेवगण और साध्यगण आनकर वहां विराजने लगे। कर्कोटक, वासुकी, कच्छप कुण्ड और महोरज, तक्षक, यह सब तपयुक्त बड़े क्रोधी महाबली सर्प और दूसरे बहुत नाग वहां आपहुंचे। तार्क्ष्य, अरिष्टनेमि, गरुड़, असितध्वज, अरुण और आरुणि यह सब विनताके पुत्रभी वहां आ गये। विमानों पर चढ़े और पर्व्वत की चोटीपर टिके देवों को तपमें सिद्ध महर्षि लोग देखने लगे, किसी दूसरे ने नहीं देखा। मुनियोंने वह सब अति आश्चर्य लोला देखकर अचरज माना और भी श्रद्धा करने लगे, अति यशवन्त पाण्डुने पुत्रके लोभसे फिर धर्म्मपत्नी कुन्तीको नियोग करना चाहा। उसपर कुन्ती उनसे बोली, कि धर्म्म जाननेवाले लोग आपत्कालमेंभी चौथे प्रसवकी प्रशंसा नहीं करते, क्योंकि चौथे पुरुषसे नारि स्वैरिणी होती है और पांचवें पुरुषसे मिलने से वेश्या होती है। हे विद्वन्! आप यह धर्म्म जानने पर भी क्यों बावलेके समान उसको नांघ कर फिर सन्तान के लिये मुझसे कहते हैं?

सम्भवपर्व्वमें एकसौ तेईस अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर कुन्ती और गान्धारीके पुत्रोंके पैदा होने पर माद्री निरालेमें पाण्डुसे बोली, कि हे शत्रुनाशिन्! आपके मुझपर कृपायुक्त न रहनेके कारण मुझे कोई विशेष दुःख नहीं है, हे अनघ! कुन्तीसे श्रेष्ठ होकर सदा अश्रेष्ठ मुझे बनी रहने परभी दुःख नहीं है, हे नरनाथ कुरुनन्दन! गान्धारीके सौ पुत्र भये सुनकरके भी मुझे कोई बड़ा क्लेश नही हुआ है, पर इसका मुझे बड़ा दुःख है, कि हम दोनों सौत समान हैं, पर तौभी मेरे सन्तान नहीं हुई, भाग्यवश कुन्तीसे आपके सन्तान हुई है, इस समय यदि कुन्तीराजपुत्री मेरे सन्तान होनेके उपाय कर दें, तो मुझपर बड़ी दया होवे और उससे आपकोभी हित हो सकता है कुन्तीपुत्री मेरी सौत है, सो उससे स्वयं कहनेको अभिमान होता है, यदि आप मुझ पर प्रसन्न होवें, तो आपही उनको आज्ञा दीजिये। पाण्डु बोले, कि ऐ माद्रि! इस विषयमें मैं सदा मनही मनमें आलोचना किया करता हूं, पर यह तुम्हारा इष्ट है, वा नहीं यही जानने की अपेक्षामें तुमसे कहनेका साहस नही हुआ था; अब तुम्हारा मत जान लिया, सो उस विषयमें प्रयत्नभी करूंगा, जान पड़ता है, कि मेरे कहनेसे कुन्ती मान लेगी।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर पाण्डु फिर निरालेमें कुन्तीसे बोले, कि ऐ कल्याणि! मेरी प्रीति के लिये लोकोंके प्रिय कल्याणयुक्त ऐसा काम करो, कि जिससे मेरा वंश न उखड़े और मेरे, पितरोंके और तुम्हारेभी पिण्डलोप होने की सम्भावना न रहे। ऐ भामिनि! तुम यशके लिये इस कठिन कार्य्यमें हाथ डालो। देखो, देवोंके अधिकारी होने परभी केवल यशके लिये देवराजने यज्ञ किया था। मन्त्रजाननेवाले ब्राह्मणलोग यशहीके लिये कठोर तप कर कर गुरुकी उपासना किया करते हैं और राजर्षि तथा तपोधन ब्राह्मणलोगोंने केवल यशहीके लिये नाना कठिन कर्म्म किये हैं, अतएव ऐ निन्दा वर्जित प्यारी! तुम सन्तानरूपबेड़ेसे माद्रीका उद्धार करो। उसको पुत्रवती कर परम कीर्त्ति लो। कुन्ती यहसुनकर माद्रीसे बोली, कि तुम एकबार किसी देव का स्मरण करो, इसमें सन्देह नहीं, कि उनसे तुम्हारे उनके सदृश, पुत्र होगा। माद्रीने मनही मनमें विचार कर दोनों अश्विनी कुमारोंको स्मरण किया। दोनों अश्विनी

कुमारोंने वहां आकर नकुल और सहदेव नामक अनुपम रूपवान् दो यमज पुत्रोंको जन्म दिया। तब अकाशवाणी हुई, कि "सत्यरूपी गुणयुक्त यह दो कुमार रूपसम्पदमें दोनों अश्विनी कुमारोंसेभी अधिक प्रकाशित हुए हैं।„ हे पृथ्वीनाथ! अनन्तर शतशृङ्ग पर रहनेवाले ब्राह्मणोंने कुमारोंके पुत्रोंमें आश्चर्य कर्म्म और भक्ति देखकर प्रसन्न चित्तसे अशीस देके नाम रख दिये। उन्होंने कुन्तीके पुत्रोंमें बड़ेका नाम युधिष्ठिर, मझलेका नाम भीमसेन, तीसरेका नाम अर्ज्जुन और माद्रीके दो पुत्रोंमेंसे पहिले जन्म लिये हुए पुत्रका नाम नकुल और दूसरेका नाम सहदेव रखा। कुरु-वंशमें श्रेष्ठ पाण्डुपुत्रगण बालपनमें महाबली, पराक्रमी, महासत्त्वयुक्त और बड़े वीर्य्यवन्त हुए। उनकी आयु जब वर्ष-भरकी हुई, तब वे पांच वर्षकी अवस्थावाले जान पड़ने लगे। नरनाथ पाण्डु उन पुत्रोंको देव समान और बड़े तेजस्वी देखकर बड़े आनन्दित हुए। पाण्डवगण शतशृङ्ग पर रहनेवाले मुनियोंके और उनकी स्त्रियोंकेभी प्यारे बने। अनन्तर पाण्डुने फिर निरालेमें माद्रीके लिये कुन्तीसे विनय की, तब कुन्तीने उत्तर दिया, कि मेरे एकबार कहने से माद्रीने दो पुत्र लाभ किया है, इससे मैं ठगी गयी हूं, सो अब उससे हारनेका भय खाती हूं क्योंकि बुरी नारियोंका स्वभाव ऐसाही होता है। मैं मूर्ख हूं पहिले नहीं जानती थी, कि एकही बार दो देवोंको बुलानेसे दो पुत्र पैदा होते हैं, सो आपसे यह वर मांगती हूं, कि आप इस विषयमें मुझे आज्ञा न कीजिये। महाराज! इस प्रकारसे पाण्डुके देवोंके दिये हुए महाबली कीर्त्तिशाली, कुरुवंश बढ़ानेवाले पांच पुत्र उत्पन्न हुए थे। वे मानवोंमें श्रेष्ठ पाण्डवलोग शुभलक्षणयुक्त, चन्द्रमाके समान देखनेमें प्रिय बड़े चापधारी, सिंह समान छातीवाले, सिंह सत्वयुक्त, सिंहकीनाई आंखधारी, सिंहकी भांति सदृश विक्रमी, सिंहकी भांति गर्दनयुक्त, सिंहके विक्रमसे पूरित स्थानमें जानेवाले और देवोंके समान विक्रमयुक्त होकर दिन पर दिन बढ़ने लगे। पवित्र हिमालयपर एकत्रित महर्षि लोगोंने उनको उस प्रकार बढ़ते देखकर अचरज माना था। जिस प्रकार जलमें थोड़े कालमें पद्मवन खिल उठता है, वैसे ही वे एक सौ पांच कौरव स्वल्प कालमेंही बढ़ उठे।

सम्भव पर्व्वमें एकसौ चौबीस अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर पाण्डु देखनेके योग्य इन पांच पुत्रोंको देखकर केवल अपनी भुजबलके आश्रयसे उस पहाड़पर भारी वनमें सुखसे काल काटने लगे। एक समय प्राणियोंके मोहनेवाले वसन्तके आने पर नाना फूलोंसे रुजे सजाये वनमें राजा पाण्डु स्त्रीके साथ घूमने लगे। देखा, कि चारों ओर गुंजनेवाले भंवरोंसे ढंपे हुए पलाश, तिल, आम, चम्पा, पारिभद्रक, कर्णिकार, केशर, अतिमुक्त, अशोक, कुरुवक, खिले मान्दारवन और दूसरे पौधे नाना फल फलोंसे सजे हैं; कोयल हर घड़ी कुलहलाय रही हैं; मधुमक्खी भनभनाती हुई, गीत गारही हैं; और नाना स्थानोंके ताल खिले पद्मवनोंसे सुशोभित हुए हैं। चित्तको मत्त करनेवाले उन वनोंको देखते हुए राजा पाण्डुके हृदयपर कामदेवका अधिकार प्रगट हुआ। अच्छा वस्त्र पहिरी हुई माद्री अकेली प्रफुल्लितचित्त और देवता समान घूमती हुई उन राजाकी पीछे पीछे चलने लगी। तब पतला वस्त्र पहिरे हुई युवती माद्रीको देखकर राजाके हृदयमें इस प्रकार मदनकी आग सुलग उठी, कि जैसे वनमें आग बल उठती है। वह निरालेमें उस पद्मनेत्रा बालाको देखतेही एकबारही कामके बशमें होगये, किसी प्रकार कामकी रोक नहीं सके।

सो असहाया धर्म्मपत्नीको बलसे पकड़ लिया। तब देवी माद्री अपने पूरे बल और शक्तिसे रोकने लगी पर राजा तब कामसे एकबार ही बावले बने थे, सो प्राणनाशी पूर्व्व कथित शापके भयको उनके चित्तमन्दिरमें स्थान नहीं मिला। हे कौरव! उस कालमें मदनकी आज्ञा से चलते हुए, पाण्डु विधिवश शापके भयको भूलकर मानो जीवन छोड़नेहीके लिये बलसे माद्रीको पकड़कर मैथुनधर्म्मके पथिक बने। उस कामयुक्त पुरुषकी बुद्धि साक्षात-कालसे मोहित होकर इन्द्रियोंकी मंथनकर चेतना सहित जाती रही थी, सो वह परम धार्म्मिक कुरुनन्दन पाण्डु स्त्रीसे मिलकर कालके धर्म्ममें नियुक्त हुए।

अनन्तर माद्री चेतना रहित भूपालसे लिपटी रह करकेही बार बार दुःखसे चिल्लाकर गला फाड़ने लगी। आगे पुत्रोंके साथ कुन्ती और माद्रीके दोनों पुत्र उस शोकयुक्त शब्दको सुनकर एकत्र हो करके वहां जाने लगे, जहां राजाकी वह दशा हुई थी। हे महाराज! तब माद्री कातर स्वरसे कुन्तीसे बोली, कि तुम अकेलीही यहां आओ, लड़के वहीं रहें। कुन्ती यह सुनकर लड़कों को वहीं छोड़कर यह कहके रोती हुई कि "मैं मारी गयी" उसी-क्षण वहां आ पहुंची। वह माद्रीके साथ पाण्डुको धरतीपर लेटे हुए देखकर शोकसे विह्वल हुई और अति दुःखसे बिलपती हुई बोली, कि इस जितेन्द्रिय वीरको मैं सदा बचाती फिरतीथी, इन्होंने ऋषिके शापसे ज्ञात रह करकेभी क्योंकर तुझपर आक्रमण किया? री माद्रि! इस भूपालको तुझे बचाना उचित था, वह न करके तूने क्यों इनको निरालेमें लुभाया? यह शापसे ग्रसित होनेके कालसे सदा दुःखी चित्तसे उस शापके सोचमें रहते थे, फिर निरालेमें तुझे पाकर क्योंकर इनके चित्तमें हर्ष आन खड़ा हुआ? री बाह्लीकि! तू मुझसे धन्य और भाग्यवती है, क्योंकि तूने कामयुक्त भूपालका प्रफुल्ल मुख देखा है! माद्री बोली, कि ऐ देवि! मैं बिलपती हुई, बार बार रोकने लगी, पर राजा शाप-हेतु दुर्भाग्यता सफल करनेहीके लिये अपनेको नहीं रोक सके। अनन्तर कुन्ती बोली, कि मैं बड़ी धर्म्मपत्नी हूं, प्रधान धर्म्मफल मुझकोही मिलता है, सो री माद्री! अवश्यमेव होनेवाले विषयसे मुझे मत रोक; मैं परलोकको सिधारे हुए, पतिके साथ ही जाऊं, तू इनको छोड़कर इन लड़कोंको पालना। माद्री बोली, कि मैंने पतिको पकड़ रखा है, भागने नहीं दिया है, मैंही इनके साथ जाऊंगी, क्योंकि मैं काम-रससे भली प्रकार तृप्त नहीं हुई हूं; तुम बड़ी, हो सो मुझे आज्ञा दो। यह भरत कुलके प्रदीप मुझसे मिलकरकेही कामसे च्युत हुए हैं, सो मैं यमराज के घरमें क्योंकर इनके उस कामको उखाड़ डालूंगी? ऐ आर्य्ये! ऐसा जान नहीं पड़ता है, कि मैं जीती रहकर तुम्हारे पुत्रोंको अपने पुत्रोंकी भांति पाल सकूंगी, सो उस हेतु मुझको पापकी आंच लग सकती है; अतएव ऐ कुन्ति! तुम मेरे इन दोनों पुत्रोंसे अपने पुत्रकी भांति बर्त्ताव करना, यह राजा मेरीही कामना करके परलोक को सिधारे हैं, सो इनके शरीरसे मेरे इस शरीरको ढांपकर फूकना। ऐ आर्य्ये! मेरे इस प्रिय कार्य्यके करनेमें असम्मत मत होना। फिरभी तुम मेरे हित चाहनेवाली होकर लड़कों पर ध्यान रखना, इसके अति-रिक्त मैं नहीं समझती हूं, कि मुझे और कुछ कहनेको है। वैशम्पायनजी बोले, धर्म्मपत्नी यशयुक्ता मद्रराज-कन्या यह कहकर बिना बिलम्ब चिताकी आगमें स्थित पाण्डुके सङ्ग में गयी।

सम्भव पर्व्वमें एकसौ पच्चीस अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि देवोंको भांति मुक्तिदाता महर्षि तपस्वीगण पाण्डुकी मृत्युको देखकर आपसमें कहने लगे, कि अति यशस्वी महात्मा पाण्डुने राज्यको छोड़के इस स्थानमें तप करते हुए तपस्वियोंकी शरण ली थी। वह स्त्री और बालकपुत्रोंको इस स्थानमें तुम्हारे पास न्यासकी भांति रखकर यहींसे स्वर्गको पधारे, सो चलो, हम उन महात्माकी स्त्री पुत्र और देहको लेकर उनके राज्यमें जायें, तभी हमारे धर्म्मकी रक्षा होगी।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि उदारचित्त, सिद्ध और देवसदृश महर्षियोंने आपसमें ऐसी युक्तिकर भीष्म और धृतराष्ट्रके निकट सौंप देनेके लिये पाण्डवोंको आगे करके हस्तिनापुरको जाना चाहा। वे उसीक्षण पाण्डुकी स्त्री, पुत्र और दोनों मुर्दों को लेकर पधारे। पुत्र-प्रेमयुक्त कुन्तीने पहिले सदा सुखी रहने पर भी अब निज देशमें जानेके कौतूहलसे उस दूर पथसे चलनेपर उसको स्वल्प जाना। उस यशस्विनीने स्वल्पकालके बीचहीमें कुरु-जाङ्गलमें पहुंचकर नगरके प्रधान द्वारको प्राप्त किया। तब तपस्वीलोग द्वारवानोंसे बोले, कि राजासे हमारे आनेकी बात कहो। द्वारवानने उसीक्षण राजसभामें जाकर वह समाचार सुनाया। हस्तिनापुरमें सहस्रों गुह्यक और मुनियोंके आनेका समाचार सुन पुरवासी प्रजाओंने अचरज माना। अनन्तर सूर्य्य उगनेके क्षणभर पीछे पुरवासीलोग तपस्वियोंके दर्शनके निमित्त स्त्री पुत्रादिके साथ पहुंचने लगे। यानोंपर चढ़े स्त्री-सहित क्षत्रियगण और ब्राह्मणोंके साथ ब्राह्मणियां चलीं, वैश्य तथा शूद्रोंकीभी बड़ी भीड़ लगी। उस समय किसीने किसी पर द्वेष प्रगट नहीं किया, सबोंकी बुद्धि धर्म्ममार्ग में बनी रही। शान्तनुपुत्र भीष्म, वाह्लीक, सोमदत्त, प्रज्ञानेत्र राजर्षि धृतराष्ट्र, विदुर, देवी सत्यवती, यशस्विनी काशीराजकन्या और राजरानियोंके साथ गान्धारीभी निकली। दुर्य्योधन आदि धृतराष्ट्रके सौ पुत्र भी नाना सुन्दर गहनोंसे सजकर आये। पुरोहितके साथ कौरवलोग उन सब महर्षियोंको देखकर सिर नायकर प्रणाम करके सामने आ बैठे। उस प्रकार नागरिक और ग्रामवासी सभी भूमिपर स्वागतकर फिर नाय करके प्रणाम-पूर्व्वक उनके सामने जा बैठे। हे प्रभो! अनन्तर भीष्म चारों ओर सब लोगोंको चुप चाप देखकर पाद्य और अर्घ्यसे न्यायके अनुसार उन महर्षियोंकी पूजाकर राज्य और राजाका हाल कह सुनाया। इसके पश्चात् उनमें सबोंसे बूढ़े, जटा अजिन धरे हुए, एक महर्षि उठे और साथी ऋषियोंको सम्मति लेकर यह बात बोले, कि कौरव-राज्यके अधीश पाण्डु नामक जो भूपाल कामके भोगको तजकर यहांसे शतशृङ्ग पर गये थे, उनके ब्रह्मचर्य्य व्रतके लेनेपर किसी दिव्य कारणसे उस शतशृङ्ग पर साक्षात् धर्म्मसे इस पुत्रका जन्म हुआ है, इनका नाम युधिष्ठिर है। फिरभी उस महात्मा राजाने पवनसे बलवानोंमें श्रेष्ठ, भीम नामक यह पुत्र प्राप्त किया है! सत्य पराक्रमी इस बालकने देवराजसे कुन्तीके गर्भसे जन्म लिया है, इसकी कीर्त्ति सम्पूर्ण चाप धारि-धारियोंको पराजय करेगी। अन्य, दोनों अश्विनी कुमारोंसे माद्रीने जो दो महा चाप-धारी पुरुष-श्रेष्ठोंको प्रसव किया है, उन पुरुष-व्याघ्रोंकोभी यह देखो। यशस्वी पाण्डुने धार्म्मिक और वनचारी होकरके प्रायः नष्ट होनेवाले पितामह-वंशका फिर उद्धार किया है। तुम पाण्डुके पुत्रोंका जन्म, वृद्धि और वेद पठनकी भली प्रकार आलोचना करके सदा परम प्रीति प्राप्त करोगे। पाण्डु साधु-ओंकी पदवीमें चढ़कर और पुत्र प्राप्त कर आज सातदिन हुए पितृलोकको सिधारे हैं।

पतिव्रता माद्री उनको चितापर स्थित और अग्निके मुखमें आहुति चढ़ते देखकर उस अग्निमें प्रवेश करके अपनाजीवन त्यागकर पतिके साथ पतिलोकमें गयी है। अब उनके परलोककी जो कुछ क्रिया करनी हो, करो! उनके यह दो शरीर और माताके साथ वह श्रेष्ठ पुत्रगण क्रियासे शुद्ध होवें। प्रेतक्रिया हो जानेपर अति यशस्वी सर्व्व-धर्म्म जाननेवाले कुरुवंशियोंमें श्रेष्ठपुरुष पाण्डु पितृ यज्ञको प्राप्त करें। श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि तपस्वी-लोग यह कहकर उनके सामने ही गुह्यकोंके साथ चण भरमें अन्तर्हित हुए। उन ऋषि और सिद्धोंको गन्धर्व्वके नगरकी भांति अर्थात् भ्रमसे आकाशमें भुण्डादियुक्त जो नगर दीख पड़ता है, उसके समान उपस्थित होते और फिर अन्तर्हित होते देखकर सबोंने अचरज माना।

सम्भवपर्व्वमें एकसौ छब्बीस अध्याय समाप्त।

धृतराष्ट्र बोले, कि हे विदुर। राजविधिके अनुसार राजाओंमें सिंहरूपी पाण्डु और माद्री की सम्पूर्ण प्रेतक्रिया भले प्रकार निर्व्वाह करो। पाण्डु और माद्रीके नामसे पशु, वस्त्र, रत्न और नाना, धन,जिनको जितनी इच्छा हो, वह उनको दान कर दो। ऐसा करो, कि कुन्ती माद्रीका सत्कार करे और माद्रीको भले प्रकार ऐसे तोप ताप रखो, कि वह पवन और सूर्य्यसेभी न दीख पड़े। निष्पाप पाण्डुको दशा बुरी नहीं है,क्योंकि देवकुमार समान शूरतापूरित पांच पुत्र उत्पन्न हुए हैं।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे भारत! विदुर उनको "जो आज्ञा हो।" कह कर भीष्मके साथ परम पवित्र स्थानमें पाण्डुके सत्कारमें प्रवृत्त हुए। राजपुरोहितलोग शीघ्रतापूर्व्वक राजपुरोंसे राजा पाण्डुके आज्यकी गन्धसे सुगन्धी प्रज्वलित जातग्निको उनको दाहनेके लिये ले आये। अनन्तर मन्त्री, ज्ञाति और मित्रवर्ग वस्त्रसे पाण्डुके शरीरको तोपकर और भांति भांतिके फूल, अच्छे गन्धयुक्त पदार्थ मूल्यवान वस्त्र और माला आदिसे पाल्कीमें सुशोभित कर उनके निकट जा पहुंचे। उसके पीछे उस सजे सजाये यानमें नरोंको जोत कर उसपर माद्रीसे लिपटे हुए भलीभांति ढंपे नरश्रेष्ठ पाण्डुको ले जाने लगे और शुक्ल छत्र धर कर चंवर हिला कर और अनेक बाजे बजा कर उनकी बड़ी शोभा कर दी। पाण्डुकी और्द्धदैहिक क्रियाके लिये सौकड़ों मनुष्य बहुत रत्न लेकर मांगनेवालोंको बांटने लगे और पाण्डुके लिये शुक्ल छत्र बड़ा चंवर और मनोहर वस्त्र बटोरे। पुरोहित लोग शुक्लवस्त्र पहिन कर जलते हुए अलंकृत अग्निमें आहुति चलाते हुए उनके आगे चलने लगे और सहस्त्रों ब्राह्मण, चत्रिय, वैश्य और शूद्र शोकयुक्त हो-कर रो रो कर यह कहते हुए राजाके पीछे चलने लगे, कि हे नराधिप! आप हमको कठोर दुःखमें त्याग अनाथकर कहां चले?

अनन्तर पाण्डवगण, भीष्म और विदुरने रोते हुए चलकर मङ्गलमयी गङ्गातटके सुन्दर वनयुक्त खण्डमें समभूमि पर सत्यवादी सुकर्म्मी स्त्रीसहित नरसिंह पाण्डुकी पाल्की धरी। उसके पीछे उन्होंने कृष्णअगुरुसे लिप्त, चन्द-नसे चर्चित और सर्व्व सुगन्धसे सुगन्धित पाण्डुकी देहको सुवर्णके घड़ेमें लाये हुए जलसे नह-लाकर चारों ओर श्वेत-चन्दन लगा दिया, आगे कृष्णअगुरुसे मिले हुए तुङ्गरस नामक सुगन्धी पदार्थसे लिप्त कर उनको देशीय शुक्ल-वस्त्रसे तोप दिया। मूल्यवान विस्तर पर महाराज पांडु वस्त्रसे तोपे जाकर जीवितके समान शोभा पाने लगे। अनन्तर ऋत्विकोंकी आज्ञानुसार प्रेतक्रिया होजाने पर उन्होंने घृतमें नहाये और अलंकृत माद्री-सहित राजाको तुङ्ग और पद्मनामक सुगन्धि पदार्थोंसे मिली हुई सुगन्धी

चन्दनकी लकड़ी, तथा दूसरे भांति भांतिके अच्छी गन्धयुक्त पदार्थोंसे विधिपूर्वक दाहने लगे। तब काशीराजकी पुत्री कौशल्या मोहसे "हा पुत्र! हा पुत्र!" यह बात कहती हुई एकायक धरती पर लोट गयी। नगर-वासि तथा जनपदवासी उनकी शोकयुक्त और गिरजाते देखकर राजभक्तिसे दया पूरित और दुःखी होकर रोने लगे। वहांकी तिर्य्यग्योनिसे उत्पन्न हुए सम्पूर्ण प्राणीभी उस रुलाईसे मानों कातर होकर मनुष्यके साथ रोने लगे; अनन्तर दाहकी क्रिया अन्त होने पर पाण्डवोंके साथ भीम, विदुर, धृतराष्ट्र और सम्पूर्ण कौरवी स्त्रियोंने पाण्डुकी जल-क्रिया की। हे महाराज! सम्पूर्ण मन्त्रीगण उन जल क्रिया किये हुए, शोकसे व्याकुल पाण्डवों को लेकर शोक करते हुए घरको लौट आये। हे महाराज! पाण्डवोंने जिस प्रकार बन्धुओंके साथ मिट्टी पर सो सो कर बारह रात काटो, वैसेही ब्राह्मण आदि नगर-वासिभी धरती पर सोये और नगरके लड़कों तक सम्पूर्ण प्रजाओंसेभी पाण्डवोंके साथ साथ बिना हर्ष, बिना आनन्द, बिना स्वास्थ बारह रात गंवायो।

सम्भवपर्व्वमें एकसौ सताइस अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर कुन्ती, धृतराष्ट्र और भीष्मने बन्धुओंके साथ सम्पूर्ण कौरव और सहस्रों अच्छे अच्छे विप्रोंको भोजन कराके और अच्छे अच्छे विप्रोंको रत्न और सुन्दर सुन्दर ग्राम दे दे कर पाण्डुकी स्वधा और अमृतमय श्राद्ध दान किया। आगे भरतवंशियोंमें श्रेष्ठ शौच किये हुए पाण्डवोंको लेकर हास्तिनापुरमें प्रविष्ट हुए। नगर और जनपदवासी अपने मृत मित्रकी भांति उन पुरुष-श्रेष्ठ पाण्डुके लिये सदा शोक करने लगे, अनन्तर महर्षि व्यास आनकर श्राद्ध क्रियाके अन्तमें सब जनोंको दुःखी देखकर मोहयुक्त और दुःख-शोकसे विह्वल माता सत्यवतीसे बोले, कि मा! सुखका दिन जाता रहा है, अब कठोर काल आ पड़ा। दिन धीरे धीरे पापपूर्ण हो रहे हैं, पृथ्वीकी यौवन दशा जाती रही; अब पूर्व्व-वत शस्यकी उपज नहीं होगी; उसके पीछे बड़ी भारी मायासे पूरित, धर्म्मक्रिया और आचारनाशी, नाना विषयुक्त कठोर काल आपड़ेगा; कुरुओंकी बुरी नीतिसे धरती उजड़ जाने पर होगी; सो आप तपोवनमें जाकर चित्तकी वृत्तियोंको रोककर योगमें बैठिये! अपने वंशका घोर सर्व्वनाश न देखिये। सत्यवती "तथास्तु" कहके वह मानकर अन्तः-पुरमें जाकर पुत्रबधूसे बोली, कि ऐ अम्बिके! मैंने सुना है, कि तुम्हारे पौत्रकी बुरी रीतिसे आत्मजनोंके साथ भरतवंशी और नगरवासि नष्ट हो जायंगे, सो यदि तुम चाहो, तो तुम्हारा मङ्गल होवे, चलो हम इस पुत्र शोकसे विह्वल अम्बालिकाको लेकर वनमें जांय। यह कह-कर सुव्रतयुक्त सत्यवती अम्बिकाके साथ भीष्म-को उस प्रकारसे सम्बोधन कर दोनों पुत्र-बधुओंके साथ वनको पधारी। हे भरतश्रेष्ठ महाराज! उन देवियोंने वहां कठोर तप-कर देह छोड़करके मनमानी सुगति प्राप्त की।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर पाण्डव वेदानुसार संस्कारोंको पाकर नाना भोगके पदार्थ भोग करते हुए पिताके घरमें बढ़ने लगे। वे प्रसन्नचित होकर धृतराष्ट्रके पुत्रों के साथ परम सुखसे खेलते कूदते थे और सब लड़कपनके खेलोंमें अपने तेजसे बढ़ चढ़ निकलते थे। वेगके विषयमें, निशानेकी वस्तु लानेमें, सबोंसे पहिले भोजनकी सामग्री लेने-में और धूल फेंकने इत्यादि लड़कपनेके खेलों-में भीमसेन सम्पूर्ण धृतराष्ट्र-कुमारोंको हरा-कर सताया करते थे। हे महाराज! जब

धृतराष्ट्रके लड़के आनन्दसे खेलते थे, तब उक्त पाण्डव उनको पकड़कर एकसे दूसरेको अलग कर देते थे और उनके सिरोंको थाम थामकर एक दूसरेसे लड़ा देते थे। उन बड़े तेजवन्त एकसौ एक कुमारोंको वृकोदर अकेले सहज-हीमें दिक किया करते थे। महावली भीम बलसे उनके केश पकड़ मारते पीटते थे, मिट्टी पर ठेलते, सिर, और गर्द्दन आदि रगड़ कर घसीट लेजाते थे। वे कष्टके मारे चिल्लाकर रोते थे। वह जलमें खेलते हुए, दोनों भुजोंसे दश लड़कोंको पकड़कर जलमें डुबाये रहते थे, आगे उनके मरने पर छोनेसे छोड़ देते थे। जब धृतराष्ट्रके पुत्र पेड़ों पर चढ़कर फल तोड़ते थे, तब भीम उन पेड़ोंमें लात मार मार हिलाते थे; उन लातोंके बलसे हिलने और डगमगाने पर लड़के दसी-दशा पेड़ोंसे छूटकर फलके साथ गिर जाते थे। वास्तवमें वे लड़के, चाहे बाहुयुद्धकी कहिये, चाहे वेगकी कहिये, चाहे शिक्षाकी कहिये किसी बातमें अहंकारपूर्व्वक वृकोदरसे बढ़ नहीं सकते थे। ऐसा नहीं, कि वृकोदर धृतराष्ट्रके पुत्रों की ईको हानि करनी चाहते थे, केवल लड़कपनहीसे वह उस प्रकारसे अहंकार प्रगटकर उनके बड़े अप्रिय कामोंमें हाथ डालते थे। अनन्तर प्रतापी धृतराष्ट्र-कुमार दुर्य्योधन भीमसेनका वैसा अति प्रख्यात बल देखकर बुरा भाव दिखाने लगा। धर्म्म-हीन, पापकर्म्मके देखनेवाले दुर्य्योधनका चित्त अज्ञानता और ऐश्वर्य्यसे लोभसे पाप पर दौड़ा। उनको यह समझ आगयी, कि पाण्डवोंमें मझला यह कुन्तीपुत्र वृकोदर बलि-योंमें श्रेष्ठ है, सो उसको कौशलसे मार डालना चाहिये। अत्यन्त बल बिक्रमयुक्त महावीर वृकोदर अकेला हो हम सबोंसे अहङ्कार करता है, जब वह नगरकी फुलवाड़ीमें सो रहेगा तब उसे गङ्गामें डाल दूंगा, आगे उसके छोटे भाइयोंको और बड़े युधिष्ठिरको बलसे बांधकर पृथ्वीमें एकही राजा हूंगा, पापात्मा दुर्य्योधन यह निश्चय कर महात्मा भीमसेनको सदा ढूंढ़ने लगा। हे भारत! अनन्तर उस पापात्माने जलक्रीड़ाके गङ्गाजीके तटपर प्रमाण-कोटि नामक स्थानमें जल और स्थलपर वस्त्र और कम्बलका एक सुन्दर बड़ा भवन बनवाकर उसमें सम्पूर्ण कामके पदार्थोंसे भरे, फहराती हुई ध्वजासे सुशोभित नाना घर रचवाये। हे भारत-नन्दन! उस भवनका नाम उदक-क्रीड़न भया; रसोईबनानेमें दक्ष रसोई वालोंने उसमें चबाने, चूसने, चाटने, पीनेकी नाना भोजनकी वस्तु बनवाकर रखीं; आगे सब ठीक होनेपर टहलुओंने दुर्य्योधनको वह समाचार सुनाया। आगे दुर्म्मति दुर्य्योधन ने पाण्डवोंसे कहा, कि चलो हम सब भाई मिलकर वन बगीचोंसे सुशोभित गङ्गाजीके किनारे जाकर जलमें खेलें। युधिष्ठिरके सम्मत होनेपर शूर कौरव लोग पाण्डवोंके साथ नग-रके समान बड़े रथ और बड़े बड़े शरीरयुक्त हाथियोंपर नगरसे निकले। आगे वे वीर भाईवर्ग बगीचेमें पहुंचकर साथियोंको विदा-करके उपवनकी शोभा देखते हुए सिंहके पर्व्वतकी कन्दरामें घुसनेकी नाईं उसके भीतर जा घुसे। देखा, कि राजलोगोंसे साफ किये हुए, चित्र करनेवालोंसे चित्रित, सुफेद बैटके और गृहकी चोटियां सुहा रही हैं। वहां जंगले, फौहारे अर्थात् जिनसे सैकड़ों धारोंसे जल निकलकर ओसकी भांति घरके भीतर भागको भर देता है, ऐसी ऐसी कलोंकी अपूर्व्व शोभा दीख पड़ती हैं; खिले पद्मके वनसे ढंपे जलभरे पोखरे और तालोंकी बड़ी शोभा हो रही है और ऋतुसे उपजे हुए फूलों-से वहांकी भूमिभी घिरो है। अनन्तर पाण्डव और कौरव वहां जा बैठे और नाना स्थानोंसे मङ्गाये हुए कामके पदार्थोंका स्वाद लेने

लगे। वे सुन्दर फुलवाड़ीमें खेलते हुए एक दूसरेके मुहमें खानेकी वस्तु देने लगे। इस अवसरमें पापात्मा दुर्य्योधनने भीमसेनको मार डालनेकी इच्छासे भोजनकी वस्तुमें विष मिलाया; तब उस पापात्माने, जिसके हृदयमें अस्तुरा और बातमें अमृत सा था, स्वयं उठकर भाई और मित्रवत् भीमसेनके मुखमें उस विषैली वस्तुका एक बड़ा भाग डाल दिया। भीमसेननेभी कोई दोष न जानकर उसे भोजनके पदार्थके समान खा लिया। तब पुरुषोंमें बड़ा अधम दुर्य्योधन अपनी इच्छा पूरी हुई जानकर मानों मनहीमनमें हंसने लगा। आगे धृतराष्ट्रके लड़के और पाण्डवलोग सब प्रसन्न चित्तसे एकत्र होकर जलमें खेलने लगे। जलमें खेलनेके पीछे कुरुवंशियोंमें श्रेष्ठ वीरगण पवित्र वस्त्र पहिनकर अलंकृत हुए और खेलसे थककर दिन बीतने पर होनेसे उस विहारके घरहीमें रहना चाहा। महाबली भीम जलमें खेलते हुए कुमारोंको बहुत लड़ा करके थककर आराम करनेको इच्छासे उस प्रमाण-कोटिके स्थलभागमें आकरकेही सो गये। पाण्डु-पुत्र भीम एक तो थके और विषके नशेमें अचेतन ही थे, फिर तिसपर ठंढी हवा पाकर और सर्व्व शरीरमें विषके वर्त्ताव होनेके कारण एकबारही अज्ञान हो गये। तब दुर्य्योधनने मरेके तुल्य हुए भीमको लताजालसे स्वयं बांधकर स्थलसे जलमें गिराया।

चेतना-रहित पाण्डव जलमें डूबकर नागोंके घरमें सर्पोंके बच्चोंपर जा गिरे! अनन्तर अगणित, काटनेमें तेज विषैले सर्प मिलकर भीमको काटने लगे। तिनसे काटे जाकर भीमसेनके शरीरका स्थायी विष चलते हुए सर्प-विषसे दूर हो गया। उन सर्पोंके दांतोंसे भीमसेनके मर्म्मस्थानमें चोट लगनेपरभी उनकी बड़ी भारी छातीकी कठिनाईके कारण चमड़ातकभी भेदा नहीं गया। अनन्तर कुन्तीपुत्र चेतना पाकर बन्धनोंको काटकर उन सर्पोंको गाड़ने लगे; उनमेंसे कुछ सर्प भय खाकर वेगसे भाग गये। उन मारसे बचे हुए सर्पोंने देवराजके समान सर्पराज वासुकिके पास जाकर कहा, कि हे वीर नागेन्द्र! एक मनुष्य किसीसे बांधे जाकर जलमें गिराया गया था, हमको जान पड़ता है, कि उसने विष पिया था; क्योंकि जब हमारे आगे गिरा तब वह अचेत था, आगे जब हमने उसे काटना आरम्भ कर दिया तब वह चेतना पाकरके, जगकर, अपने शरीरके बन्धन काटकर हमको मारने लगा; आपको जानना चाहिये, कि वह महाभुज कौन है। अनन्तर वासुकिने साथी नागोंके साथ वहां आकर भारी पराक्रमी महाभुज भीमको देखा। तब कुन्तीके पिताके मातामह आर्य्यक नामक नागराजने नातीके नाती भीमको देखकर उनको गलेसे लगाया; इससे अति यशस्वी नागेन्द्र वासुकि उन पर प्रसन्न होकर नागराज आर्य्यकसे बोले, कि इनका क्या प्रियकार्य्य करना चाहिये? इनको धनादि अनेक रत्न दो। वासुकिकी यह बात सुनकर आर्य्यक बोले, कि हे नागेन्द्र! यदि आप प्रसन्न हुए हों, तो इसको धनरत्नकी आवश्यकताही क्या पड़ी है? आप जब प्रसन्न हुए हैं तब यह कुमार रस पीकर बली होवे; उस कुण्डमें सहस्र हाथियोंका बल धरा है, सो यह बालक उक्त कुण्डका जितना रस पी सके उतना इसको पीने दीजिये। नागराज वासुकिके सम्मत होने पर भीमसेन पवित्र होकर और नागोंसे मङ्गल आचरण किये जाने पर पूर्व्व ओर मुख करके बैठकर रस पीने लगे। महाबली भीमने एकही दममें कुण्डा भर रस पी लिया और इस प्रकारसे आठ कुण्डोंको खाली कर दिया। अनन्तर शत्रुनाशी महाभुज भीमसेन

नागोंकी दी हुई दिव्य सेज पर परम सुखसे सोरहे।

सम्भव पर्व्वमें एकसौ अठाइस अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर सम्पूर्ण कौरव और भीमके बिना पाण्डव गण खेल और विहार कर रथ, हाथी, घोड़े और दूसरे यानों पर हस्तिनापुरको लौटे; जानेके कालमें कहने लगे, कि भीम हमारे पहिले गया होगा। पापात्मा दुर्य्योधनने उनमें भीमको न देख कर प्रसन्नचित्तसे नगरमें प्रवेश किया। धर्म्मात्मा युधिष्ठिर अपनेमें कोई पापबुद्धि नहीं रखते थे, अपने दृष्टान्तसे शत्रुकोभी साधु समझते थे। वह भ्रातृप्रेमी कुन्तीनन्दन माता कुन्तीके पास जाकर प्रणाम कर बोले, कि कि क्यों मा! भीम यहां आया है? ऐ शुभ चाहनेवाली! वह अभी तक क्यों नहीं दीख पड़ता? तब वह कहां गया होगा? हम वनमें फुलवाड़ियोंमें चारों ओर उसकी खोज कर चुके, पर कहीं उस वीर वृकोदरको नहीं देखा; अन्तमें सबोंने यह समझ लिया, कि भीम हमारे पहिले ही आया होगा। ऐ महाभागे यशस्विनी! हम व्याकुल हृदयसे आ रहे हैं, सो कहिये, कि महाभुज भीम यहां आकर कहां गया है? आपने उसको कहीं भेजा तो नहीं? ऐ शोभने! उस वीरके विषयमें मेरा चित्त धड़बड़ा रहा है, क्योंकि स्मरण होता है, कि भीम सोता था, उसके पीछे फिर नहीं आया, सो मारा गया होगा। धीमान् धर्म्मपुत्रकी यह बात सुनकर कुन्ती हाहाकार करती हुई दुःखसे उनसे बोली कि, बेटा! मैंने भीमको नहीं देखा है, भीम मेरे पास नहीं आया, सो छोटे भाइयोंको लेकर तुरन्त उसकी खोजका प्रयत्न करो, कुन्ती सन्तापित चित्तसे ज्येष्ठ पुत्र युधिष्ठिरसे यह कहकर विदुरको बुलवाकर उनसे बोली, कि भगवान् क्षत्त! भीमसेन कहां गया है, वह दीख नहीं पड़ता है। दूसरे भाईलोग भाइयोंके साथ फुलवाड़ीसे लौट आये हैं; केवल अकेले महाभुज भीम मेरे पास नहीं आया है; उसको देखकर दुर्य्योधनकी आंखेभी प्रसन्न नहीं होती, वह सुयोधन बड़ा पेंचीला, दुर्म्मति, नीच राज्यलोभी और आंखों की लज्जासे वर्ज्जित है, सो कहीं ऐसा न हो, कि उसने क्रोधवश उस वीरको मारडाला हो, इस भयसे मेरा चित्त विकल और हृदय जल रहा है। विदुर बोले, कि ऐ कल्याणि! आप यह बात न प्रगट कीजिये, शेष पुत्रोंको रक्षा कीजिये, क्योंकि वह दुरात्मा दुर्य्योधन लाञ्छित होनेसे आपके शेष पुत्रोंकोभी मार सकता है। महामुनिने कहा है, कि आपके पुत्रगण दीर्घजीवन पावेंगे, सो आपका पुत्र लौट आकर अवश्यही आपको प्रीति बढ़ावेगा।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि विद्वान् विदुर यह कहकर अपने घरको गये। कुन्ती सोचती हुई, पुत्रोंके साथ घरमें रहने लगी। अनन्तर आठवें दिन महाबली पाण्डुपुत्र भीमसेन जगे और उस समय उस रसके पच जानेसे अप्रमेय और बलवन्त बन गये। सर्पगण उस पाण्डवको जगते देखकर शीघ्रतापूर्व्वक समझाने लगे और यह बात बोले, कि हे महाभुज! तुमने जो वीर्य्य देनेहारा रस पी लिया है, उससे तुम दश सहस्र नागके समान बली और रणस्थलमें अजीत योग्य होगे। हे कुरुश्रेष्ठ! आज तुम इस दिव्य और शुभ जलसे स्नानकर अपने घरको लौट जाओ, तुमको न देखकर तुम्हारे भाईलोग दुःखी हुए हैं।

अनन्तर महाभुज महाबली भीमने स्नानकर और शुचि होकर शुक्लवस्त्र और श्वेतमाला पहिनकर नागोंका दिया हुआ परमान्न भोजन किया। आगे शत्रुनाशी

पाण्डव सर्पोंसे आदर और असीस पाकर दिव्य आभूषण पहिनकर नागोंको सम्भाषण करके प्रसन्नचित्तसे नागलोकसे निकले। नागोंने उस कमलनेत्रवाले कुरुनन्दनको जलसे उठाकर उसी वन-खण्डमें छोड़ दिया, आगे उनके सम्मुखसे अन्तर्हित हुए। इसके अनन्तर महाभुज, महाबली कुन्तीपुत्र भीमसेन वहांसे उठकरके वेग पूर्व्वक चलकर माताके पास आगये। शत्रुनाशी वृकोदर माता और ज्येष्ठ भाईके पांव छूकर छोटे भाइयोंके सिर चूम करके माता और भाइयोंके गले लगे और वे आपसमें मित्रता दिखा दिखाकर वार वार यह कहने लगे, कि "कैसा आनन्द है, कैसा आनन्द है!" आगे महाबल-पराक्रमी भीमसेनने भाइयोंसे दुर्य्योधनके कार्य्योंको कह सुनाया और नागलोकमें भला वा बुरा जो कुछ हुआ था, वह सबभी भली भांति प्रकाश किया। अनन्तर राजा युधिष्ठिर उनसे यह अर्थयुक्त वाक्य बोले, कि तुम चुप हो जाओ, यह सब हाल कभी प्रकाश मत करना। हे कुन्तीपुत्रो! तुम अबसे यत्न पूर्व्वक आपसमें अपनी रक्षा करना। महाबाहु धर्म्मराज युधिष्ठिर यह कहकर भाइयोंके साथ सावधान बने रहे। धर्म्मात्मा विदुर उनको ऐसा परामर्श देते थे, कि जिसमें उन पृथापुत्रोंको चूक न हो। उसके अनन्तर दुर्य्योधनने भीमसेनके भोजनके पदार्थमें फिर नया तेज विष मिलाया। वैश्याकुमार युयुत्सुने पाण्डवोंके हितके लिये वह प्रकाशकर दिया, पर तौभी बिना विकार वृकोदरने उसे खाकर पचा लिया। वह विष तेज और भीमके नाशनेयोग्य होने परभी भीममें विकार उपजा नहीं सका, सो भीमने उसको पचा डाला। इस प्रकार दुर्य्योधन, कर्ण और सुबलपुत्र शकुनिने नाना उपायोंसे पाण्डवोंको नष्ट करनेकी चेष्टा की थी। हे शत्रुनाशिन्! पाण्डवगण वह जानने परभी विदुरके मतमें रह कर उस बातपर क्रोध प्रगट नहीं करते थे।

सम्भवपर्व्वमें एकसौ उनतीस अध्याय समाप्त।

जनमेजयजी बोले, कि हे ब्रह्मन्! कृपके जन्मकी भी कथा कहिये। उन्होंने क्योंकर शरकण्डेकी लकड़ी से जन्म लिया था, और क्योंकर अस्त्रोंको लाभ किया था? श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि महाराज! महर्षि गौतमके शरद्वान नामक एक पुत्र थे; उन गौतमने शरकण्डेसे जन्म लिया था। हे शत्रुनाशिन्! धनुर्व्वेदमें उनकी जैसी बुद्धि थी, वेद पठनमें वैसी बुद्धि नहीं हुई थी; जिस प्रकार ब्रह्मचारीलोग तपसे वेदको ज्ञात होते हैं, वैसेही उन्होंने तपहीसे सर्व्वास्त्रोंको प्राप्त किया था। उन गौतमने धनुर्व्वेदमें अपरिमित ज्ञान और अनन्त तपस्यासे देवराजकोभी बहुत डरपाया था। हे कौरव! अनन्तर देवेन्द्रने जानपदी नाम्नी देवबालाको यह आज्ञा देकर उनके सामने भेजा, कि तुम गौतम-की तपस्यामें विघ्न डालो। बाला जानपदी गौतमजीके सुन्दर आश्रममें जाकर धनुषबाण धारी उन शरद्वानको लुभाने लगी। उस वनमें अनुपम सुन्दरी एक वस्त्र पहिरे अप्सरा को देखकर गौतमके नेत्रोंमें प्रफुल्लता छा गयी; उनके हाथोंसे धनुषबाण धरती पर गिर पड़े, और देह कांपने लगी। पर उन महाप्राज्ञ ऋषि-कुमारके उत्तम ज्ञान और तपस्यामें दृढ़ प्रतिज्ञा रहनेसे वह परम धीरज धरे रहे। महाराज! उनमें एकायक जो विकार आन पहुंचा था, उसीसे उनका वीर्य्य गिर गया था, पर वह उस बातको नहीं जान सके थे। अनन्तर वह धनुर्व्वाण, कृष्ण-सार मृगका चर्म्म और उस आश्रम और अप्सराको तजकर अन्य स्थानमें चले चले गये। उनका वीर्य्य शरकण्डे की लकड़ी पर गिरा था, इसलिये वह दो भाग

होगया, उससे एक कन्या और एक पुत्रका जन्म हुआ। अनन्तर मृगयाके लिये मनमाने घूमने वाले, नरनाथ शान्तनुके एक सैनिकने वनमें उस पुत्र और कन्याको देखा और वहां धनु-र्व्वाण और मृगका चर्म्म देखकर समझा, कि यह दोनो धनुर्व्वेदमें दक्ष किसी ब्राह्मणकी सन्तान होंगी। तब उस सैनिकने धनुर्व्वाण और दोनों बच्चोंको लेजाकर नरनाथको दिखाया। नरनाथने कृपापूर्व्वक उन बच्चोंको लेलिया और यह कह कर, कि "यह मेरी सन्तान हुई" अपने स्थानको पधारे। अनन्तर प्रतीपके पुत्र नरश्रेष्ठ शान्तनुने गौतमके उस पुत्र और कन्याको सम्पूर्ण संस्कारसे सुधार और पाल पोषकर बढ़ाया और गौतमभी उस आश्रमसे आनकर धनुर्व्वेदमें दत्तचित्त रहे। महीपाल शान्तनुने यह समझ कर, कि "मैंने कृपापूर्व्वक इन इन बच्चोंको जिलाया है" उनके कृप और कृपी यह नामही रख दिये। गौतमजी तपके द्वारा यह जान सके थे, कि उस स्थानमें दोनों सन्तान रखी हुई हैं, सो तब वहां आनकर अपने गोत्रादि सब कह गये। उन्होंने कृपको चार प्रकारके धनुर्व्वेद, नाना शास्त्र-विद्या और दूसरे गुप्त विषयोंकी शिक्षा दी। कृप स्वल्प कालके ही बीचमें परम आचार्य्य बने। महारथी धृतराष्ट्र पुत्रगण, महाबली पाण्डवगण और नानादेशोंसे आये हुए दूसरे भूपाल उनसे धनुर्व्वेद सीखने लगे।

सम्भवपर्व्वमें एकसौ तीस अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर भीष्म पौत्रोंको विशेष रूपसे विद्या पढ़ाने और विनय सिखानेके लिये यत्न चलानेमें दक्ष, अस्त्रविद्यामें पण्डित, वीर्य्यवन्त आचार्य्य ढूंढ़ने लगे। यह समझकर, कि जो अच्छे बुद्धिमान महाभाग नाना अस्त्रोंके चलानेमें पण्डित और देव-समान महात्मा न होवें, उनसे कौरवोंको अस्त्र विद्या न सीखना चाहिये। भरत-वंशियोंमें श्रेष्ठपुरुष भीष्मने पाण्डव और कौरवोंको भरद्वाजके पुत्र वेदमें पण्डित धीमान् द्रोणके शिष्य बना दिया। अस्त्र चलानेवालोंमें श्रेष्ठ महाभाग और अति यशवन्त द्रोणाचार्य्यने महात्मा भीष्मसे शास्त्रानुसार भले प्रकार पूजे जाकर सन्तोषपूर्व्वक उन सबोंको शिष्य बनाया। आगे उन्होंने उनको विशेष प्रकारसे धनुर्व्वेद सिखाया। हे महाराज! वे अनन्त तेजयुक्त पाण्डव और कौरवलोग स्वल्पकालहीमें सर्व्व शास्त्रोंमें पण्डित होगये।

जनमेजयने पूछा, कि हे ब्राह्मण! वह वीर्य्यवन्त द्रोण किसके पुत्र थे? किस प्रकार उनका जन्म हुआ था? क्योंकर उन्होंने शास्त्रोंको प्राप्त किया था? और क्योंकर कौरवोंसे मिले? फिर भी अश्वत्थामा नामक सर्व्वशास्त्रोंमें दक्ष प्रधान उनके पुत्रने क्योंकर जन्म लिया था? यह सब भले प्रकार सुना चाहता हूं आप कहिये।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि गङ्गाद्वारके निकट भरद्वाज नामसे प्रख्यात सदा प्रशंसित व्रतयुक्त भगवान् महर्षि वसते थे। एक समय वह अग्निहोत्र करनेके अभिप्रायसे पहिले ही महर्षियोंके साथ गङ्गाजीके किनारे नहाने गये थे; वहां देखा, कि रूप-यौवनवती, मदगर्व्विता और मदसे झूमती हुई घृताची नाम्नी अप्सरा नहाकर उठी; फिर उस समय उसका वस्त्रभी गिर गया। धीमान महर्षि उस विवस्त्राप्सरा को देखकर कामके वशमें होगये; उनका चित्त घृताची पर झुकनेसे वीर्य्य गिर गया। ऋषिने तब द्रोणनामक यज्ञके बर्त्तनमें उस वीर्य्यको रखा। धीमान् भरद्वाजके द्रोणमें रखे हुए उस वीर्य्यसे द्रोणका जन्म हुआ। उन्होंने वेद और वेदाङ्ग सब पढ़ लिये थे। अस्त्र विद्या जाननेवालोंमें प्रधान प्रतापी भरद्वाजने पहिले अग्निवेश नामक महाभाग महर्षिको अस्त्रास्त्र दिया था। हे भरतश्रेष्ठ! अग्निसे जन्म लिये

हुए उन ऋषि अग्निवेशने अपने गुरुपुत्र द्रोणको वह अग्न्यास्त्र दे दिया। पृषत नामक एक राजा ऋषि भरद्वाजके मित्र थे। भरद्वाजके पुत्र होनेके कालमें उनकेभी द्रुपद नामक एक पुत्र हुआ था। वह पृषत्पुत्र नित्य भरद्वाजके आश्रममें जाकर द्रोणके साथ खेलते और पढ़ते थे। हे नरनाथ! अनन्तर राजा पृषतके परलोक सिधार जानेपर महाभुज द्रुपद उत्तर पाञ्चाल देशके राजा हुए। उस समय भगवान् ऋषि भरद्वाजका स्वर्ग गमन हुआ और अतितपयुक्त द्रोणभी उसीस्थानमें रहकर तप करने लगे। अनन्तर वेद वेदाङ्गोंमें पण्डित और तपस्याके बलसे निष्पापी उन अतियशवन्त द्रोणने पिताके पहिलेके नियोगानुसार पुत्रके लोभसे शरद्वतकी कन्या कृपीसे विवाह किया! उसके अनन्तर अग्निहोत्रमें वाक आदि बाहरी इन्द्रियोंके रोकनेमें और धर्ममें प्रेमी उस गौतमपुत्री कृपीने अश्वत्थामा नामक पुत्रप्राप्त किया। पुत्रने जन्म लेतेही उच्चैःश्रवा अश्वकी भांति शब्द किया, वह सुनकर उसकालमें आकाश स्थित किसी बिन देखे प्राणीने कहा था, कि घोड़ेकी नाईं शब्द करनेवाले इस बालकका स्थाम (शब्द) नाना दिशाओंमें पहुंचा है, इस कारण इसका नाम अश्वत्थामा होगा। उससे भरद्वाज-पुत्र धीमान् द्रोणने उस पुत्रसे बड़ी प्रीति प्राप्त की, और स्थानहीमें रहकर धनुर्व्वेदमें सन्नद्ध रहे। हे महाराज! उन्होंने उस समय सुना, कि सर्व्वशस्त्र धरनेवालोंमें श्रेष्ठ, सर्व्वज्ञानयुक्त, शत्रुनाशी ब्राह्मण महात्मा जामदग्न्य रामने ब्राह्मणोंको सब धन बांट देनेकी इच्छा की है। रामके धनुर्व्वेद और दिव्यास्त्रों का समाचार पाकर उन्होंने वह सब और नीति शास्त्रोंको उनसे सीखना चाहा। उसके अनुसार वह अति तपोयुक्त महाभुज भरद्वाज तपस्वी और व्रतयुक्त शिष्योंसे घिरे रहकर महेन्द्रपर्व्वत पर गये। आगे वहां पहुंचकर शत्रुकुलनाशी क्षान्त और दान्त भृगुनन्दनको देखा। अनन्तर उनने शिष्योंके साथ उनके पास जाकर अपना नाम और अङ्गिराके कुलमें जन्म होनेकी बात आदि कही और भूमिपर सिर रगड़कर उनके दोनों पांवोंमें प्रणाम किया। उसके पीछे द्रोण सब छोड़ छाड़ वनमें जानेकी इच्छा किये हुए महात्मा जामदग्न्यसे यह बोले, कि हे महामते! मैं बिन योनिसे जन्मा हुआ हूं. भरद्वाजसे द्रोणीमें उत्पन्न हुआ हूं, हालमें धनकी लालसासे यहां आया हूं। क्षत्रियकुलनाशी महात्मा परशुरामने उनसे कहा, कि हे द्विजश्रेष्ठ! तुम भले आये हो, जो चाहते हो, कहो! रामके यह बात कहनेपर भरद्वाजपुत्र उन नाना धनदानके इच्छुक योधोंमें प्रधान जामदग्न्यसे बोले, हे महाभाग व्रतशील! मैं अपरिमित धन मांगता हूं। राम बोले, कि हे तपोधन! मेरा सुवर्ण और दूसरा धन जो कुछ था, सब ब्राह्मणोंको दे चुका हूं, ग्राम और नगरोंकी मालासे सजी हुई, सागरतक चली गयी हुई, यह पृथ्वी भी कश्यपको दे दी है, अब मेरे केवल बड़े मूल्यवान् अस्त्र शस्त्र और मेरा यह शरीरही शेष है, हे द्रोण! अब अस्त्र अथवा शरीर देनेको उद्यत हूं। शीघ्र कहो, कि इन दोनोंमेंसे क्या चाहते हो, वह तुमको दे देता हूं। द्रोण बोले, कि हे भार्गव! प्रयोग, उपसंहार और रहस्योंके साथ सम्पूर्ण अस्त्रोंको भले प्रकार मुझको दीजिये। भार्गवने तथास्तु कहकर उनको सम्पूर्ण अस्त्र और रहस्य और नियमोंके साथ धनुर्व्वेदको विशेषरूपसे दे दिया। द्विजोंमें श्रेष्ठ द्रोण सब अस्त्र शस्त्रों को लेकर कृतार्थ होकरके प्रसन्नचित्तसे प्रिय मित्र द्रुपदके पास गये।

सम्भवपर्व्वमें एकसौ इकतीस अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर प्रतापी भरद्वाजके पुत्र भूपाल द्रुपदके यहां आकर बोले, कि हे महाराज! मुझको मित्र करके जानो! मित्र भारद्वाजके प्रेमसे समान कहनेपर नरनाथ पाञ्चालराज वह बात सह नहीं सके। वह ऐश्वर्य्यके अहङ्कार से उन्मत्त थे, सो क्रोध अमर्षसे जीभ और भौंहको बिगाड़ करके आंखे लालकर द्रोणसे यह बोले, कि, हे विप्र! तुम्हारी बुद्धि नहीं सुधरी और पक्की नहीं हुई है, क्योंकि तुमने एकायक मुझसे कहा, कि मैं तुम्हारा मित्र हूं। हे स्वल्पबुद्धे! अनन्त ऐश्वर्य्ययुक्त भूपालोंकी कभी ऐसे श्रीवर्ज्जित और निर्धनजनोंसे मित्रता नहीं होती; काल सब वस्तुओंको तोड़ फोड़ देता है, उससे मित्रता भी टूट जाती है; पहिले समान होनेके कारण तुमसे मेरी मित्रता हुई तो थी; पर भूमण्डलमे मित्रता कभी किसीके हृदयमें बनी नहीं रहती है, क्योंकि कालसे वह दूर हो-जाती है, अथवा क्रोधसे वह जड़सहित उखड़ जाती है; सो तुम उस पुरानी मित्रताकी पूजा मत करो, ऐसा न समझो, कि वहभी बनी है। हे द्विजोंमें श्रेष्ठजन! अवश्यही किसी प्रयोजनसे तुमसे मेरी मित्रता हुई थी; देखो, दरिद्र कभी धनीका मित्र नहीं होता; मूर्ख कभी पण्डितसे मित्रता नहीं कर सकता है, वीर्य्यवर्ज्जित जन कभी वीरका मित्र नहीं हो सकता, फिर तुम क्यों पहिलेकी मित्रता चाहते हो? जिनका धन समान है, जिनका बल समान है, उनहीमें आपसकी मित्रता हो सकती है, पुष्ट और अपुष्ट जनोंसे कभी मित्रता वा शत्रुता नहीं हो सकती है; जो श्रोत्रिय नही है, वह कभी श्रोत्रियका मित्र नहीं हो सकता है, रथवालेसे रथ वर्ज्जितजन कभी मित्रता नहीं कर सकता है, राजा न होनेसे राजाके साथ मित्रता नहीं कर सकता है, सो तुम क्यों पहिलेकी मित्रता चाहते हो? वैशम्पायनजी बोले कि, प्रतापी भारद्वाजने द्रुपदकी यह सब बात सुनकर क्रोधसे जलकर क्षणभर सोचा; वह बुद्धिमान मनही मनमें पाञ्चाल-राज की पराजयका उपाय निश्चयकर हस्तिनापुर नामक कौरवोंके नगरको गये।

सम्भवपर्व्वमें एकसौ बत्तीस अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि द्विजश्रेष्ठ भारद्वाज हस्तिनापुरमें आकर कृपाचार्य्यके घरमें छिप कर रहनेलगे। वहां उनके पुत्र प्रभावी अश्वत्थामा कृपाचार्य्यके शिक्षा दे लेनेके पीछे, कुन्तीके पुत्रोंको अस्त्रकी शिक्षा देते थे, पर उनको कोई जान नहीं सका था। इस प्रकार भारद्वाज द्रोण कृपाचार्य्यके घरमें कुछ काल छिपकर बसे। अनन्तर एक समय युधिष्ठिर आदि वीर लड़के मिलकर हस्तिनापुरसे निकलकर (वीटा) अर्थात् गेंदका खेल खेलते हुए प्रसन्नचित्तसे घूमने लगे। खेलनेके काल उनकी वह गेंद कूपमें गिर गयी। अनन्तर लड़कोंने ध्यान लगाकर उस गेंदके उठानेके लिये बड़ा प्रयत्न किया, पर किसी प्रकार मनोरथ सुफल नहीं हो सका। इससे वे लज्जासे मुंह नीचा कर एक दूसरेके मुखकी ओर ताकने लगे और उसके उठानेका उपाय न देखकर बड़े सोचमें पड़े। ऐसे समयमें उन्होंने देखा, कि श्याम बूढ़े, दुबले अग्निहोत्रसे पुरस्कृत, आह्निक किये हुए, एक ब्राह्मण पासही खड़े हैं। तब उपस्थित कार्य्यमें विफल मनोरथ, सुतरां उत्साह खोये हुए वे लड़के उन महात्मा ब्राह्मणको देखकरकेही उनके पास जाकर चारों ओर घेर कर खड़े हो गये। वीर्य्यवन्त द्रोण लड़कोंको विफल मनोरथ देखकर दक्षताके कारण कुछ हंसकर बोले, कि छि! तुम्हारे क्षत्रिय बलपर धिक्कार है, तुम्हारी अस्त्र शिक्षा परभी धिक्कार

है! क्योंकि तुम भरतकुलमें जन्म लेकरके भी इस गेंदको उठा नहीं सके; अब यदि तुम मुझे खानेको दो, तो मैं गेंद और मुंदरी दोनों तिनकोंसे उठा सकता हूं। शत्रुनाशी द्रोणने कुमारोंसे यह कहकर उस जलसे खाली कूपमें अपनी मुंदरी डाल दी। तब कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर उनसे बोले, कि ब्रह्मन्! कृपाचार्य्यकी आज्ञासे आप हमारे पास सदा रहनेकी भिक्षा लीजिये। ऐसा कहे जाकर द्रोण हंसकर भरत-कुमारोंसे बोले, कि यह मुट्ठी भर इषीका अर्थात् सरकण्डेपर मैं अस्त्रका मन्त्र फूंक देता हूं, दूसरे अस्त्रमें जो वीर्य्य नहीं है, इसमें वही देखोगे। इस इषीकासे वह गेंद भेद कर दूसरी इषीकासे इस इषीकाको भेद करूंगा फिर और इषीकासे उस दूसरेको भी बिद्ध करूंगा, इस प्रकार क्रमसे इषीकाके योग से उस गेंदको थाम लूंगा। अनन्तर द्रोणने जैसा कहा, ठीक वैसाही कर दिखाया। लड़कोंने अचरजके मारे आंखे चढ़ाकर वह लीला देखी और यह मानकर, कि यह बहुत आश्चर्य्य है, कहा कि हे विप्रर्षे। यह मुन्दरी भी तुरन्त निकालिये। अनन्तर अति यशस्वी प्रभु द्रोणने शरासन लेकर बाणसे उस मुन्दरीको बिद्धकर ऊपर उठा लिया। आगे बाण सहित उस मुन्दरीको लेकर विकारहित चित्तसे विस्मययुक्त कुमारोंको दे दिया। कुमारोंने बाणसे उस मुंदरीको उठा देखकर कहा, कि ब्रह्मन्! यह विद्या दूसरोंमें दीख नहीं पड़ती, सो आपको प्रणाम करते हैं, जानना चाहते हैं, कि आप कौन, किसके पुत्र हैं; और यह भी कहिये कि हम आपका क्या उपकार करें। कुमारोंकी वह बात सुनकर द्रोणने उत्तर दिया, कि तुम भीष्मके पास जाकर मेरा आकार और गुणकी बात ठीक ठीक कहो। इससे वह बड़े तेजस्वी भीष्म मुझको पहिचान लेंगे।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, अनन्तर लड़कोंने वह मानकर भीष्मके पास जाकर उन ब्राह्मणका ठीक ठीक हाल और उनके आश्चर्य कार्य्यकी बात कह सुनायी। भीष्म कुमारोंके मुखसे सब सुनकर उन ब्राह्मणको द्रोण करके जाना। और सोचा, कि यही आचार्य्य-कार्य्यके योग्य हैं। अनन्तर शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ भीष्मने स्वयं उसीक्षण वहां जाकर उनको आदरपूर्व्वक लिवा लाकर आनेका कारण योग्य रूपसे पूछा; द्रोण आद्योपान्त सब सुनाकर बोले कि, हे आयुष्मन्! मैं पहिले धनुर्व्वेद और अस्त्र शिक्षाके लिये महर्षि अग्निवेशके यहां गया था, वहां ब्रह्मचारी, नम्र जटाधारी और गुरुकी सेवामें उत्साहित होकर अनेक वर्ष गंवाये; उन दिनों पाञ्चालराज-कुमार महाबली प्रभावी यज्ञसेन उन गुरुके निकट अस्त्र विद्या और धनुर्व्विद्या सीखनेके लिये रहते थे। हे प्रभो! वहां वह मेरे उपकारी, मित्र और प्यारे थे, उनके साथ एकत्र रहकर मैं बहुत दिन सुखसे था; हे कौरव! बालेपनसे उनके साथ एकत्र मैंने पढ़ा था, इस लिये वह सदा मेरे प्रिय करनेवाले और प्रिय कहनेवाले मित्र थे। हे भीष्म! वह मेरी प्रीति के लिये सदा मुझसे यह कहा करते थे, कि "हे द्रोण! मैं महानुभव पिताका बड़ा प्यारा पुत्र हूं, सो मैं तुमसे यह सत्य प्रतिज्ञा करता हूं, कि जब पाञ्चालराज मुझको राज्यपर बैठावेंगे, तब वह राज्य तुम भोग करोगे, ऐ मित्र! मेरा भोग, ऐश्वर्य्य और सुख सब तुम्हारे हाथ रहेंगे।" आगे जब उनकी अस्त्र-शिक्षा अन्त हुई, तब वह गुरुसे सम्मान पाकर वहां से चले गये। मैंने तभीसे सदा उनकी वह बात मनमें रख ली। अनन्तर मैंने पिताके नियोगसे पुत्र पानेके लोभसे स्वल्प केशी अति बुद्धिमती व्रतशीला और अग्निहोत्र तथा याग करने और इन्द्रियोंके रोकनेमें सदा

नियुक्त कृपीसे विवाह किया। कृपीने मेरे वीर्य्यसे अश्वत्थामा नामक भीमविक्रमी सूर्य्य-समान तेजस्वी एक पुत्र प्राप्त किया। भरद्वाज मुझको पाकर जिस प्रकार प्रसन्न हुए थे, मैं भी उस सन्तानको प्राप्तकर उसीप्रकार कृतार्थ हुआ। अश्वत्थामा बालिपनमें एकदिन धनीके पुत्रोंको दूध पीते देखकर ऐसा रोने लगा, कि उससे मेरी सुध बुध जाती रही! यह सोचकर, अपने यागादि कर्म्म करनेवाले स्नातक जन अप्रसन्न न होवें, अर्थात् यदि याग-शील जनके थोड़ी गाय रहें, तो उनसे गायका प्रतिग्रह करनेसे उनका धर्म्म लोप हो सकता है, मैने धर्म्मयुक्त विशुद्ध प्रतिग्रह करनेके लिये बहुत वार उस देशमें भ्रमण किया। हे गङ्गा नन्दन! देशके एक छोरसे दूसरे छोरतक घूमने परभी दूध देनेवाली एकभी गाय नहीं मिली। आगे दूसरे लड़कोंने पिष्टोदक (चावलको बुकनीके साथ मिले हुए जल) से उस लड़केको लुभाया। हे कुरुनन्दन! बालक अश्वत्थामा उस पिष्टोदकको पीकर बालिशनके कारण मुग्ध होकर यह कह करके, कि मैंने दूध पी लिया है, उठकर आनन्दसे नाचने लगा। उस पुत्रको लड़कोंसे घेरे जाकर और उनकी हंसीका विषय ज्ञात होकर, नाचते देखकर मेरे हृदयमें अति दुःख छा गया; विशेष चिढ़ानेवालोंसे यह बात सुन-कर, कि "दरिद्र द्रोणपर धिक्कार है! जो धनके बिना पोनेका दूधका ठिकाना नहीं कर सकता, जिसका पुत्र दूधकी प्याससे पिष्टो-दक पीकर प्रसन्न हृदयसे मैंने दूध पीया, कहके नाचा था" मेरी बुद्धि बिगड़ गयी। आगे आपही अपनी निन्दाकर सोचने लगा, कि मैं ब्राह्मणोंसे त्याग दिये जाने और निन्दा पाने परभी वसा रहूंगा, तौभी धनके लोभसे पाप-कर्म्म—परायो सेवा नहीं करूंगा। हे भीष्म! पहिले ऐसा विचार करने परभी मैं प्यारे पुत्र और स्त्रीको लेकर, पहिलेके स्नेहके हेतु राजा द्रुपदके यहां गया; यह सुनकर, कि मेरे वह प्रिय मित्र राज्यपर बैठे हैं, अप-नेको कृतार्थ जानकर प्रसन्नचित्तसे उनके पास गया। हे प्रभो! उनसे एकत्र वास और उनकी प्रतिज्ञाको स्मरण करते हुए, मैंने उनके पास जाकर मित्रतासे कहा, कि हे पुरुष व्याघ्र! मैं तुम्हारा मित्र हूं; यह कहकर मित्रवत् निकट जाकर उनसे मिला। इससे नीच मनुष्यकी भांति मुझपर हंसकर उन्होंने कहा, कि हे ब्राह्मन्! तुम्हारी यह बात बुद्धिमानोंकीसी और सुधरी हुई नहीं हैं। हे द्विज! क्योंकि तुमने एकायक मुझसे कह', कि "मैं तुम्हारा मित्र हूं" कालसे सभी टूट फूट जाता है, सो मित्रताभी टूट फूट जाती है; तुमसे पहिले जो मेरी मित्रता हुई थी, वह उन दिनोंके सम्बन्धहीसे हुई थी; वास्तवमें अश्रोत्रिय जन श्रोत्रियसे, रथहीन जन रथयुक्तसे और राजा न होनेसे राजासे मित्रता नहीं कर सकता है, अतएव तुम क्यों पहिली मित्र-ताकी इच्छा करते हो? दोनोंके समान होनेसे मित्रता होती है, पर आपसमें छोटे बड़े होनेसे क्यों कर मित्रता हो सकती है? इस भूमण्डलमें किसीकी मित्रता कभी सदा बनी नहो रहती है; क्योंकि कालसे वह दूरी हो सकती है, अथवा क्रोधसे उखड़ जाती है; अत एव तुम उस पुरानी मित्रताकी इच्छा करनी छोड़ दो, अब उसी बनीबनायी मत जानो। हे द्विजोंमें श्रेष्ठ जन! किसी प्रयोजनहीसे तुमसे मेरी मित्रता हुई थी; देखो दरिद्रजन धनीका, मूर्ख पण्डितका, और वीर्य्य-वर्ज्जित जन वीरका मित्र नहीं हो सकता है, सो तुम क्यों पहिली मित्रताकी इच्छा कर रहे हो? हे स्वल्प बुद्धे! जो अनन्त ऐश्वर्य्ययुक्त भूपाल हैं, उनकी कभी ऐसे दरिद्रोंसे मित्रता नहीं हो सकती। मैंने राज्यके विषयमें तुमसे जो प्रतिज्ञा

की थी, वह मुझको स्मरण नहीं होती; पर तुम एक रात जो कुछ खाना चाहो, वह मैं देनेको सम्मत हूं। उनकी वह बात सुनकर, ऐसी प्रतिज्ञा करके जोकि मैं बिनाविलम्ब पूर्ण कर सकूंगा स्त्रीके साथ लौट आया। हे भीष्म! मैं राजा द्रुपदसे इस प्रकार लज्जित होकर गुणवन्त शिष्योंकी खोजमें कुरुराज्यमें उपस्थित हुआ था, आगे आपको इच्छानुरूप कार्य्य करनेके लिये इस सुन्दर नागपुरमें आया, कहिये इस समय क्या करना होगा?

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि द्रोणको यह बात सुनकर भीष्मने उनसे कहा, कि शरासनके गुणको ढीलाकर लीजिये; इन कुमारोंको भले प्रकार अस्त्रविद्या दान कीजिये। कुरुवोंके घरमें पूजे जाकर भोगके पादर्थ भोगिये; कुरुराजके इस राष्ट्रके साथ राज्य और जो कुछ ऐश्वर्य्य हैं, आप सबके राजाके समान बने रहिये; सम्पूर्ण कौरव आपहीके हुए। हे ब्राह्मन्! जान लीजिये, कि आपकी जो कुछ प्रार्थना थी, वह सब पूरी हो हो गयी हैं। विप्रर्षे! हमारे भाग्यसे आप महत् जन कृपासे यहां आ गये हैं।

सम्भवपर्व्वमें एकसो तेंतीस अ ाय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर अति तेजस्वी मनुष्योंमें श्रेष्ठजन द्रोण, भीष्मसे पूजे जाकर कुरुवोंके घरमें आदरपूर्वक रहने लगे। आगे आचार्य्यकी थकाई दूर होनेपर भीष्मने पौत्रोंको ले जाकर उनके शिष्य बना दिये और प्रसन्न होकर नाना धन देकर उनके रहनेके लिये धन-धान्यसे भरा पूरा साफ एक गृह ठहरा दिया था। बड़े धनुषधारी द्रोणने प्रसन्न चित्तसे उन कुरु-पाण्डव और धृतराष्ट्रके पुत्रोंको शिष्य बना लिया। अनन्तर द्रोण अकेले उन सब निकटके कौरवोंसे निरालेमें विश्वासपूर्वक बोले, कि हे अनघगण! कोई एक वाञ्छित विषय मेरे मनमें जग रहा है। सो वह सत्य कर बोलो कि, जब तुम लोग अस्त्र विद्यामें दक्ष बनोगे, तब मेरी वह इच्छा पूरी करना। हे पृथ्वीनाथ! कौरवलोग यह सुनकर चुप हो रहे। अनन्तर शत्रु दमनेहारे अर्जुनने उनकी सब कामनाओंको पूरी करनेका प्रण ठाना। तब द्रोणने बार बार अर्जुनका सिर चूमकर प्रसन्नतासे उनको गलेसे लगाया और हर्षके मारे उनकी आंखोसे आंसू गिरने लगे। अनन्तर वह वीर्य्यवन्त द्रोण पाण्डुनन्दनको दिव्य और मानवी नाना प्रकारके अस्त्रोंकी शिक्षा देने लगे। हे भरतश्रेष्ठ! तब दूसरे अनेक राजकुमारभी आकर वे अस्त्रशिक्षाके लिये द्विजोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्य्यके पास एकत्रित होने लगे। वृष्णिवंशी, अन्धकवंशी और अनेक देशोंके भूपालपुत्र तथा राधाकुमार सूतपुत्र कर्ण द्रोणाचार्य्यके निकट आकरके शिष्य बने। सूतपुत्र अति द्वेषयुक्त होकर अर्जुनसे अहङ्कार दिखाकर दुर्योधनको ओर झुककर पाण्डवोंका अनादर करने लगे। अर्जुन धनुर्व्वेद सीखनेके लिये सदा द्रोणाचार्य्यके निकट रहते थे। वह शिक्षा भुजबल, उद्योग और अस्त्र-विद्यामें यत्नरखनेके कारण सबोंसे विशेष बन गये। अस्त्र चलानेमें समान होनेपरभी उस विषयमें शीघ्र और कौशलके विषयमें अर्जुनही सम्पूर्ण शिष्योंसे बढ़कर निकले। तब द्रोणने समझा, कि कोईभी शिक्षाके विषयमें इस इन्द्रपुत्र अर्जुनके समान नहीं हो सकेगा; आचार्य्य द्रोण इस प्रकार बाण और अस्त्र विद्याकी शिक्षा देने लगे। इसलिये, कि जल लानेमें विलम्ब हो; वह सब शिष्योंको एक एक कमण्डल अर्थात् छोटा मुंहवाला जलका वर्त्तन देते थे, और शीघ्र कार्य्य पूरा करनेके लिये अपने पुत्र अश्वत्थामाको एक कलसा देते थे; इसका अभिप्राय यह है, कि अश्वत्थामाके शीघ्र जल लानेपर द्रोणाचार्य्य उसको किसी किसी श्रेष्ठ

प्रकरणका उपदेश किया करते थे। पाण्डुपुत्र फाल्गुनने तर्कसे उनके उस कामको जान लिया था; सो वह वरुणास्त्रसे कमण्डल भरकर आचार्य्यके पुत्र अश्वत्थामाके साथ एकही समयमें गुरुके पास आ जाते थे; इससे अस्त्र पण्डित मेधायुक्त पार्थ किसी विशेष गुणके विषयमेंभी आचार्य्यके पुत्रसे अलग और कम कम नहीं हुए। वह गुरुकी सेवामें बड़ा यत्न और अस्त्रोंके सीखनेमें बड़ा ध्यान देने लगे, सो द्रोणाचार्य्यके बड़े प्रिय बने। आचार्य्य द्रोण फाल्गुनको अस्त्रोंकी शिक्षामें सदा सन्नद्ध देखकर रसोईदारको निराले में बुलाकर बोले, कि तुम कभी अंधेरेमें अर्जुनको खानेके लिये अन्न मत देना और अर्जुनसे यह भी नहीं कहना, कि मैंने तुमसे ऐसा कहा है। अनन्तर एक समय अर्जुन खा रहे थे, कि ऐसे समयमें हवा चलने लगी, इससे जलते हुए प्रदीपके बुझजाने पर भी तेजस्वी अर्जुन तब अंधेरेमें भोजन करने लगे; अभ्यासके कारण उनका हाथ मुखको किसी और स्थान में नहीं गया; इससे महाभुज पाण्डुनन्दन अर्जुनने, यह समझ कर, कि अभ्याससेही ऐसा होता है, रातके समय न देखने योग्य निशानेसे बाण चलानेका अभ्यास आरम्भ कर दिया। हे भारत! आचार्य्य द्रोण रात्रिके समय उनके बाणोंके छूटनेका शब्द सुनकर उठकरके वहां गये और गले लगाकर अर्जुनसे बोले, कि तुमसे कहता हूं, कि ऐसा प्रयत्न करूंगा, कि मर्त्यलोक भरमें कोई दूसरा धन्वा धरने वाला तुम्हारे समान न होवे।

श्रीवैशम्पायनजी बोले कि अनन्तर वीर्य्यवत्त द्रोणाचार्य्यने अर्जुन को घोड़े पर, रथ पर हाथी पर और भूमिपर युद्ध करनेकी विशेष शिक्षा दी और गदायुद्धमें, खड्ग चलानेमें तोमर, प्रास, शक्ति आदि विशेष विशेष अस्त्रोंके फेंकनेमें और संग युद्धमें अर्थात् एकही समय अनेक बाण चलाने अथवा एकवारही अनेक जनोंके संग युद्ध करनेमें सुशिक्षित किया। सहस्रों राजा और राजकुमार उनके उस कौशलकी बातको सुनकर धनुर्व्वेद सीखनेके लिये इकट्ठे होने लगे। हे महाराज! हिरण्यधनु नामक निषाद राजकुमार एकलव्य द्रोणके पास आया। धर्म्मज्ञ द्रोण यह समझ कर, कि यह व्याधका पुत्र है, राजकुमारोंके चिढ़नेके भयसे उसको नहीं लिया। हे शत्रुनाशि! एकलव्यने द्रोणाचार्य्यके पावों पर सिर रखकर, वनमें जाकर मिट्टीसे द्रोणकी एक प्रतिमा गढ़ी और उस प्रतिमूर्त्तिमें अच्छे आचार्य्यकी बुद्धि देकर नियमसे एकचित्त होकर धनुर्व्वेद सीखने लगा। उसकी बड़ी श्रद्धा और एकचित्तताके कारण अस्त्रोंका विमोचन, आदान और सन्धान बड़ा सहज हो पड़ा। अनन्तर किसी समय शत्रुदंसनेहारे कुरुपाण्डव लोग द्रोणाचार्य्यकी आज्ञासे रथ पर आरूढ़ होकर मृगयाके लिये गये। हे राजन्! तब एक मनुष्य मृगयाके योग्य जालादि लेकर, एक कुत्तेको साथ लेकर, अपनी इच्छानुसार पाण्डवोंके सङ्ग चलने लगा। आगे उस वनमें जब सब लोग अपना अपना काम पूरा करनेके लिये घूम घाम रहे थे, तब उनका साथी वह कुत्ता किसीसे न देखे जाकर व्याधकी ओर गया और उसको काला, विष्ठासे शरीर रङ्गा हुआ, काला चमड़ा पहिने हुए और जटाधारी देखकर उसके सामने खड़ा होकर भोंकने लगा। व्याधपुत्रने अस्त्र चलानेमें शीघ्रता दिखा कर उस चिल्लाते हुए कुत्तेके मुहमें एक वारही सात बाण चलाया। बाणोंसे मुह बन्दहोने पर कुत्ता पाण्डवोंके पास आया। वीर पाण्डवोंने उसको उस दशामें देखकर बड़ा अचरज माना और सबलोग अस्त्र चलानेवालेकी बड़ी फुर्ती तथा शब्द बेधनेकी सामर्थ देखकर बड़े लज्जित

हुए और सब प्रकारसे उसकी प्रशंसा करने लगे। हे राजन्! तब पाण्डवोंने उस वनमें रहनेवाले अस्त्र चलानेहारेको वनमें ढूंढ़ते हुए देखा, कि वह हरघड़ी वाण चला रहा है; पर उन्होंने उस स्वरूप बिगाड़े हुए व्याधको नहीं पहिचाना; अन्तमें पूछा, कि आप कौन हैं? किसके पुत्र हैं? एकलव्य बोला कि, हे वीर गण! मैं निषादराज हिरण्यधनुका पुत्र हूं, द्रोणाचार्य्यका शिष्य होकरके सदा धनुर्व्वेद सीखनेके लिये परिश्रम कर रहा हूं।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर पाण्डवोंने उसको ठीक पहिचानकर लौट कर वह सब आश्चर्य वृत्तान्त सच सच द्रोणाचार्य्यको कह सुनाया। हे राजन्! कुन्तीपुत्र अर्ज्जुन एकलव्यको स्मरण करते हुए द्रोणके पास पहुंच कर प्रेमसे निरालेमें बोले, कि हे आचार्य्य। पहिले आपने अकेले मुझको गलेसे लगाकर प्रेमसे यह कहा था कि, मेरा कोई शिष्य तुमसे श्रेष्ठ न होगा" फिर क्यों वीर्य्यवन्त निषाद-राजका पुत्र आपका शिष्य होकर मुझसे, वरन सम्पूर्ण लोगोंसे श्रेष्ठ हुआ? अनन्तर द्रोण उस बातको क्षणभर निश्चयरूपसे सोचकर सव्यसाची अर्ज्जुनको साथ लेकर उस निषाद-राजपुत्रके यहां गये और देखा, कि विष्ठासे देह रङ्गा हुआ जटाधारी, चीर पहिने एकलव्य हाथोंसे चापको थामकर सदा वाण चला रहा है। एकलव्यने निकट आये हुए द्रोणाचार्य्यको देखकर निकट आके पांव छूकर प्रणाम किया, विधिपूर्व्वक पूजकर तथा यह कहकर, कि मैं आपका शिष्य हूं, दोनों हाथ जोड़ सामने खड़ा रहा। हे राजन्! अनन्तर द्रोणने एकलव्यसे कहा, कि हे वीर! यदि तुम मेरे शिष्य हो,तो मुझको दक्षिणा दो। एकलव्यने सुनकर प्रसन्न चित्तसे कहा, कि कि भगवान्! आज्ञा कीजिये, कि क्या दूं? हे ब्रह्मज्ञोंमें उत्तम! आप मेरे गुरु हैं, गुरुको मुझे कुछभी अदेय नहीं है। द्रोणाचार्य्य बोले, कि यदि तुम अवश्य देनेपर हो, तो मुझको दाहिने हाथका अंगूठा देदो। एकलव्य सदा सत्य पर खडा था, सो आचार्य्य द्रोणकी वह कठोरवाणी सुनने पर भी चित्तमें दुःख न मानकर और मुखको प्रसन्न कर अपनी प्रतिज्ञा पूरी करके विना विचार अपने दाहिने अंगूठेको काट कर द्रोणाचार्य्यको दे दिया। हे नरेश! अनन्तर निषादराज-कुमार शेष उङ्गलियोंसे बाण चलाने लगा, पर पहिले की समान शीघ्रतासे काम न कर सका। तब अर्ज्जुन प्रसन्नचित्त हुए, उनकी मनःपीड़ा जाती रही और आचार्य्य द्रोणने पहिले जैसे कहा था, कि कोईभी अर्ज्जुनको परास्त नहीं कर सकेगा, अब वह बात सच्ची ठहरी। दुर्य्योधन और भीम द्रोणके यह दो शिष्य गदायुद्धमें दक्ष बने, उनमेंसे एक दूसरेपर सदा क्रोधित बना रहता था। अस्त्र चलानेके सब रहस्योंके जाननेमें अश्वत्थामा सबोंसे अच्छे निकले। नकुल और सहदेव खड्गके बेंट फकड़नेमें सबोंको नांघ गये। युधिष्ठिर रथियोंमें प्रधान हुए। धनञ्जय हर बातमेंही श्रेष्ठ निकले थे। वह बुद्धि, उपाय, बल और उत्साहसे सम्पूर्ण अस्त्र चलानेमें दक्ष रथीदलके स्वामियोंके दलपति होकर समुद्रसे लेकर सम्पूर्ण धरतीमें प्रसिद्ध हुए। विशेष अस्त्रोंके चलाने और गुरुकी भक्ति करनेके विषयमें उनके समान कोई दूसरा नहीं था। सबों पर बराबर अस्त्रोपदेश होने परभी वीर्य्यवन्त अर्ज्जुन सौष्टव अर्थात् स्थिति मुष्टि आदिकी शुद्धिसे सब कुमारोंसे अद्वितीय अतिरथ करके गिने गये! हे शत्रुनाशि! दुरात्मा धृतराष्ट्रपुत्रगण बड़े बली भीमसेन और विद्या सीखे हुए अर्ज्जुनको देखकर द्वेषसे जलने लगे। हे पुरुषर्षभ! एक समय द्रोणने अस्त्र सम्बन्धी सम्पूर्ण विद्याओंमें शिक्षित उन सब शिष्योंको

एकत्रकर यह जानना चाहा, कि किसने कैसी शिक्षा ली है। इससे पहिले उन्होंने कुमारोंके न जाननेमें शिल्पकारसे बनवाकर एक कृत्रिम गिद्ध पक्षीको निशानेके लिये एक वृक्ष पर रख छोड़ा था। आगे शिष्योंसे बोले, कि कुमारो! तुम शीघ्र धनुष लेकर उसमें वाण जोड़ करके उस देखे जाते हुए गिद्ध पर निशाना किये रहो मेरी बातके सुनतेही उस पक्षीके सिरका काटना पड़ेगा। ऐ बेटे! मैं एक एक कर तुम सबोंमें जब जिसे जैसे नियोग करूंगा, वह उसीक्षण वैसाही करे।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर अङ्गिरा-वंशियोंमें श्रेष्ठ द्रोण पहिले युधिष्ठिरसे बोले, कि हे दुर्द्धर्ष! वाणसे निशाना करलो, मेरी बात पूरी होतेही उसको चलाना। आगे शत्रुतपनेहारे युधिष्ठिर गुरुकी आज्ञासे पहिले धन्वा लेकर पक्षी पर निशाना किये खड़े रहे। हे भरत-श्रेष्ठ! द्रोणने धन्वा पर गुण चढ़ाये हुए कुरुनन्दन युधिष्ठिरसे क्षण भर पीछे कहा, कि राजकुमार! उस वृक्षपरके गिद्धको देखते हो? युधिष्ठिर बोले, कि हां देखता हूं। द्रोणने कुछकाल पीछे फिर कहा, कि तुम इस वृक्षको मुझको अथवा अपने भाइयोंको देखते हो? युधिष्ठिर बोले, कि हां, मैं इस वृक्षको, भाइयों-को और उस पक्षीको देखता हूं। आचार्य्यसे वार वार यों पूछे जाने परभी उन्होंने वार वार वैसाही कहा। इससे द्रोण उन पर अप्रसन्नचित्त होकर लाञ्छन कर बोले, कि तुम चले जाओ, यह लक्ष्य विद्ध करना तुम्हारा काम नहीं है। अनन्तर अति यशवन्त द्रोणने सब शिष्योंकी शक्ति पूछनेके लिये दुर्य्यो-धन आदि धृतराष्ट्रके पुत्रोंसे और भीम, नकुल, सहदेव तथा अन्य देशोंके राजकुमारोंसेभी उस प्रकार वाणके निशाने सहित खड़े रख रखकर पूछा, पर सब यह उत्तर दे देकर, कि वृक्षादि सब देखता हूं, आचार्य्यसे निन्दित हुए। अन-न्तर द्रोण कुछ हंसकर धनञ्जयसे बोले, कि बेटा! अब तुमको यह लक्ष्य विद्ध करना पड़ेगा, सो वह लक्ष्यको देखो, मेरी बातके साथही साथ वाण जोड़कर क्षणभर ठहरे रहो। सव्यसाची अर्ज्जुन गुरुकी आज्ञासे शरासनमें वाण जोड़कर पक्षी पर निशाना जमाकर खड़े रहे। क्षणभर पीछे द्रोणने पहिलेकी नाईं कहा, कि अर्ज्जुन तुम उस वृक्ष-परके पक्षीको और मुझको देखते हो? हे भारत! पार्थने कहा, केवल पक्षीहीको देखता हूं, वृक्षको वा आपको नहीं देखता हूं। अनन्तर दुर्द्धर्ष द्रोण प्रसन्नचित्त होकर क्षणभर पीछे पाण्डवोंमें महारथी उन अर्ज्जुनसे बोले कि यदि तुम पक्षीहीको देखते हो तो कहो, उसको कैसा देखते हो। अर्ज्जुनने उत्तर दिया, कि मैं उस पक्षीका सिर मात्र देखता हूं, शरीर नही देखता। अर्ज्जुनकी यह बात सुनकर हर्षके मारे उनकी देहके रोयें खड़े हो गये और उनसे बोले, कि अब वाण छोड़ो। तब पाण्डुपुत्र अर्ज्जुनने कोई विचार न करके वाणको मारा, उससे उसीक्षण उस तेज अस्तुरेकी नाईं वाणसे वृक्ष-परके पक्षीका सिर कटकर नीचे गिरा। द्रोणाचार्य्यने वह काम पूरा होते देखकर प्रसन्नचित्तसे फाल्गुनको गलेसे लगाया और मनहीमनमें यह निश्चय किया, कि राजा द्रुपद सहायकोंके साथ युद्धमें हार जावेगा। हे भरतकुलमें श्रेष्ठ पुरुष! उसके कुछदिन पीछे द्रोणने शिष्योंके सङ्ग गङ्गा नहाने जाकर ज्योंही जलमें देह डुबायो, त्योंही एक बलवन्त घरियारने मानो कालकी प्रेरणासे उनको उनकी जाङ्घके भीतर तक काटा। द्रोण स्वय उससे बचनेमें समर्थ होने परभी सब शिष्योंसे मानो उनको शीघ्रता देखनेके लिये बोले, कि तुम तुरन्त इस जलचरको नष्ट करके मेरी रक्षा करो! गुरु द्रोणके यह बात

कहतेही बीभत्सुने पांच न रोकने योग्य बाणों से जलमें डूबे हुए जलचरको विद्व किया। दूसरे शिष्य जो जहां थे, वह वहीं मूढ़वत खड़े रहे। तब आचार्य्य द्रोणने अर्जुनको काममें उपयोगी देखकर सब शिष्योंसे उनको श्रेष्ठ समझा और उनपर बड़े प्रसन्न हुए। घरि-यार महात्मा द्रोणकी जांघको तजकर पार्थके बाणोंसे टुकड़े टुकड़े होकर परलोकको सिधारा! अनन्तर महामति भरद्वाजपुत्र अर्जुनसे बोले, कि हे महाभुज! ब्रह्मशिर नामक यह अति दुर्द्धर्ष श्रेष्ठ अस्त्र तुमको प्रयोग और उपसंहार सहित देता हूं, लो; मनुष्य पर कभी इसे न मारना, क्योंकि यह स्वल्पतेजस्वी मानव पर चलाये जानेसे जगन्मण्डलको भी जला सकेगा। बेटा! तीनों लोकोंमें यह अस्त्र असाधारण करके प्रख्यात है; सो तुम इसे यत्नसे रखना और मैं जो कहता हूं, सुनो। हे वीर! यदि कभी मनुष्यके विना कोई और शत्रु तुम्हारी विरुद्धता करे, तो युद्धस्थलमें उसको वध करने-के लिये यह अस्त्र चलाना। बीभत्सुने दोनों हाथ जोड़के, उस बातको मानकर उस परमा-स्त्रको ले लिया। तब गुरुने फिर उनसे कहा, कि इस भूमण्डल भरमें कोई जन तुम्हारे समान चापधारी नहीं होगा; तुम शत्रुओंसे जीते जानेके अयोग्य और यशवन्त होकर रहोगे।

सम्भव पर्व्वमें एकसौ चौंतीस अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे राजन्! द्रोणा-चार्य्य धृतराष्ट्रके पुत्रों और पाण्डवोंको अस्त्रशिक्षामें दक्ष देख कर कृप; सोमदत्त, वाह्लीक व्यास, विदुर और धीमान भीष्मके सामने राजा धृतराष्ट्रसे बोले, कि हे कुरुकुलके श्रेष्ठ महाराज! आपके कुमारोंने विद्या पढ़ ली है, अब आज्ञा हो, तो वे अपनी शिक्षा का परिचय दें? अनन्तर महाराज। उनसे प्रसन्नचित्तसे बोले, कि हे ब्राह्मण कुलमें श्रेष्ठ भारद्वाज आपसे अति महत कार्य्य हुआ है, हालमें आप अस्त्र-परीक्षाके लिये जो स्थान ठहरावें और जहां जिस प्रकार उसका निर्व्वाह होना निश्चय करें, उसके प्रबन्ध की आज्ञा मुझसे कीजिये। जो अस्त्र चला-नेमें पराक्रमी लोग मेरे इन पुत्रोंको देखेंगे, आज मुझमें आखोंके विना, देखने की असा-मता हेतु उन लोगोंकी चाह उभड़ रही है। विदुर! पूजनीय आचार्य्य जैसा कहें, वह सब करो। हे धर्म्मप्रेमी! मैं समझता हूं, कि इससे मेरे लिये कोई कार्य्य प्रिय नहीं होगा। अनन्तर राजासे सम्भाषण करके विदुरके निकलने पर महाप्राज्ञ भारद्वाजने वृक्ष गुल्मादियोंसे रहित, जलके सोते-सहित समभूमि देखकर उसको मापा। अनन्तर समाजके सब लोगोंको सूचनाके द्वारा बुलाये जाने पर बोलनेमें तेज आचार्य्य अच्छे नक्षत्र-युक्त शुभ तिथिमें देवताके नामसे विधिपूर्व्वक उस स्थानका उपहार दिया। हे नराधिप! उनके नियुक्त किये हुए शिल्प करनेवालोंने उस अखाड़ेमें राजाके और नारियोंके लिये शास्त्रानुसार अच्छे सब प्रकारके अस्त्रोंसे सजे सजाये और लम्बे चौड़े देखनेके घर बनाये और नगरवासी धनियोंनेभी वहां ऊंची और बड़ी बड़ी वेदी तथा मचान बनवा रखी। हे जय-शील लोगोंमें श्रेष्ठ! अनन्तर कुमारों के विक्रम दिखानेके निश्चय किये हुए दिनके आजने पर राजा धृतराष्ट्र मन्त्रियोंके साथ और भीष्म तथा आचार्य्यश्रेष्ठ कृपको आगे करके चले और स्थान-स्थानमें मोतियोंकी लड़ी लटकाये और वैदुर्य मणियोंसे सजे सजाये सुवर्णके, सुन्दर दर्शन-भवनमें गये और बड़ी भाग्यवती गान्धारी और कुन्तीभी दर्शन गृहमें गयीं। दूसरी राज-रानियां दासियोंके साथ अपूर्व्व वस्त्र पहिरे आनन्दकी उमंगमें वेदियों पर जा बैठीं उस

समये जान पड़ने लगा कि मानों देवोंकी स्त्रियां सुमेरुकी चोटीपर चढ़ी हैं। ब्राह्मण क्षत्रिय आदि चारों वर्णके लोग कुमारोंकी अस्त्र-विद्याकी योग्यता देखनेके लिये नगरसे निकलकर बड़े वेगसे वहां देखनेकी बड़ी चाहसे क्षण भरमें एकत्र हुए। तब सम्पूर्ण रूपसे बजते हुए बाजोंके शब्द और लोगोंके आश्चर्य-पूरित कलरवसे समाज महासमुद्रके समान लहराने लगा। अनन्तर शुक्ल दाढ़ी, शुक्ल माला और शुक्ल चन्दनसे शोभायमान, तेजवान् आचार्य द्रोण अपने पुत्रके साथ अखाड़ेमें आये। उस समय जान पड़ा, कि मानो मङ्गल ग्रहके साथ प्रकाशमान देव बादलरहित आकाशको जा रहे हैं। महाबली आचार्य्यने उस स्थानमें उचित समयमें देव पूजन किया और मन्त्र जाननेवाले ब्राह्मणोंसे मङ्गलाचरण करवाया। अनन्तर पवित्र-पुण्य दिनकी कथा कही जाने पर नियुक्त किये हुए लोग नाना अस्त्रों और उनके उपकरण ले लेकर अखाड़ेमें जा घुसे। तब युधिष्ठिर आदि भरत-वंशियोंमें श्रेष्ठ महारथी और वीर्य्यवन्त कुमारगण कमर कसके अंगुली रक्षक, तूणीर और धनुषवाण धारणकर वहां प्रविष्ट हुए, वे बड़े छोटेके क्रमसे अति आश्चर्य अस्त्रविद्या प्रगट करने लगे। तब देखनेवालोंमें कोई कोई तो वाणोंके गिरनेके भयसे सिर नीचे किये रहे और कोई कोई बिना भय आश्चर्य चित्तसे देखने लगे। कुमारगण शीघ्र लेजाने वाले घोड़ोंपर नामाङ्कसे शोभायमान नाना वाणोंको शीघ्रतापूर्व्वक चलाके लक्ष्य बेधने लगे। तब देखनेवालोंने धनुषवाण लिये हुए कुमारोंका गन्धर्व्व-नगरके समान वह आश्चर्य लीला देखकर अचरज माना। हे भारत! वहांके सैकड़ों सहस्रों मनुष्य विस्मयसे प्रसन्ननेत्र होकर एकायक चिल्लाकर "साधु, साधु" ऐसी ध्वनि कर उठे। महाबली कुमारगण शरासन और रथ चलानेमें, हाथीपर, घोड़ेपर चढ़ने और हाथाबांहीमें नाना कौशल बार बार दिखाकर अन्तमें खड्ग चर्म्म लेकर फिर मारपीटमें लगकर निशानेके अनुसार नाना प्रकारसे अस्त्रोंका चलाना दिखा करके, अखाड़ेमें घूमने लगे। देखनेवाले उन वीर कुमारोंके असिचर्म्म प्रयोगमें तेज हाथ, कौशल धीरज, मूठोंकी दृढ़ता और अपूर्व्व शोभा देखने लगे। अनन्तर, सदाके अहङ्कारी दुर्य्योधन और वृकोदर गदा हाथमें लेकर एकही चोटीवाले पहाड़ोंके समान अखाड़ेमें उतरे! एक हथनीके लोभसे दो उन्मत्त हाथी जिस प्रकार चिल्लाते रहते हैं। उसके समान बड़ाई चाहने वाले वे दो महाभुज वीर कमर कसकर गर्ज्जने लगे। सदा गदा लिये हुए मदमत्त हस्तियोंके समान महाबली सुयोधन और भीम दहिनी पलट और बांयी पलटके अनुसार गोलाकार होकर अखाड़ेमें घूमने लगे। तब विदुरने धृतराष्ट्रसे, और कुन्तीने गान्धारीके निकट कुमारोंसे किये जाते हुए, सब वृत्तान्तको कह सुनाया।

सम्भवपर्व्वमें एकसौ पैंतीस अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि कुरुराज दुर्य्योधन और महाबली भीमके अखाड़ेमें उतरने पर देखनेवाले पक्षपातसे स्नेह कर दो दलोंमें बंट गये। कोई कोई तो कहने लगे, कि कुरुराज कैसे अच्छे वीर हैं। और दूसरे कहने लगे कि भीम कैसे अच्छे वीर हैं! चारों ओरसे इसी बातका घोर कोलाहल मच उठा; उसके अनन्तर बुद्धिमान भारद्वाज हिलोड़ते हुए समुद्रकी भांति उस अखाड़ेको देखकर प्रिय पुत्र अश्वत्थामासे बोले, कि यह भीम और दुर्य्योधन दोनों बड़े वीर्य्यवन्त और युद्धविद्यामें तेज हैं; सो इनसे कह दो कि, अखाड़ेमें इनमें क्रोध न उपजे। अनन्तर प्रलयकालकी हवासे

लहराते हुए, ऊंचेतटवाले समुद्रके समान उन्मत्त, गदा उठाये हुए भीम और सुयोधन गुरुकुमारसे रोके गये। तब आचार्य्य द्रोण आखाड़ेमें जाकर घने बादलको गड़गड़ाहटके समान बाजों की ध्वनिको रोककर बोले, कि उपेन्द्रके सदृश सर्व्व शास्त्रोंमें प्रधान और मेरे पुत्रसेभो प्यारे वह इन्द्रपुत्र अब दिखाई देवें। तब आचार्य्यकी आज्ञासे तरुणअवस्थाके फाल्गुन मङ्गलाचरण करनेके पश्चात् गुणकी चोट रोकनेवाली चमड़ेकी पट्टी और उंगलीरक्षक कसके बाणसे पूरिततूण, धनुष और सोनेके कवच पहरकर मानों सूर्य्यप्रकाशके समान जलते हुए और इन्द्रधनु तथा बिजलीको चमककी भांति सुहाते हुए, सन्ध्याकालके बादलके सदृश दीख पड़े। उससे अखाड़ेको चारों ओरसे आनन्दको ध्वनि उड़ने लगी और शंख तथा अनेक बाजे बजने लगे। यह श्रीमान् पुरुष कुन्तीके पुत्र हैं, यह मझले पाण्डव हैं, यही कुरुओंकी रक्षा करनेवाले हैं, यही अस्त्र धरनेवालोंमें श्रेष्ठ हैं, यही धार्म्मिकोंमें प्रधान हैं, यही सुशीलोंकी शीलता और ज्ञानके परम आदर्शरूपी हुए हैं;—दर्शकोंकी ऐसी, अनेक बातें सुनकर कुन्तीकी स्तनदुग्ध तथा आंसूसे छाती भीग गयी। उन सब बड़े भारी शब्दोंसे नरोंमें श्रेष्ठ धृतराष्ट्रके कान भर जानेसे उन्होंने प्रसन्नचित्त होकर विदुरसे पूछा, कि हे क्षत्त! अखाड़ेमें हिलोड़े हुए समुद्रको ध्वनिकी भांति यह महाशब्द मानों आकाश फाड़केही क्यों एकायक उठा! विदुर बोले, कि महाराज! यह पाण्डुनन्दन पार्थ अर्ज्जुन कवच पहरकर अखाड़ेमें उतरे हैं, उससे ऐसा घोर कोलाहल मच रहा है। धृतराष्ट्र बोले, कि हे महामते! कुन्तीरूपी वनसे उपजे हुए पाण्डवरूपी तीन अग्नियोंसे मैं धन्य, कृपायुक्त और रक्षित हुआ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अखाड़ेके उन हर्षयुक्त लोगोंके उत्साहित होकर कुछ शान्त होजानेपर अर्ज्जुन आचार्य्यको अस्त्र चलानेकी दक्षता दिखाने लगे। उन्होंने अग्न्यस्त्रसे अग्नि, वारुणास्त्रसे जल, वायव्यास्त्रसे वायु और पार्ज्जन्यास्त्रसे पर्व्वत बनया और अन्तर्द्धान अस्त्रसे अन्तर्हित होगये। वह क्षणभरमें दीर्घ, क्षण भरमें ह्रस्व, क्षण भरमें रथ धूर्व्वीके निकट स्थित, फिर, क्षणभरमें रथके भीतर और क्षणभरमें धरती पर उतरने लगे। गुरुप्रेमी अर्ज्जुन बाणोंसे फूल आदि कोमल वस्तु, गुञ्जा और बाणाग्र आदि सूक्ष्म वस्तु और धातु पत्थर आदि भारी वस्तु कौशलसे फेंकनेकी इच्छासे विद्व करने लगे। उन्होंने चरते हुए, लोहेके बने सुवरके मुखमें मानों एक बाणकी भांति पांच बाणोंको जोड़कर एकही कालमें उनको चलाया। उन महावीरने रस्सी पर लटके हिलते हुए गौके सींगके कोषको इक्कीस बाण छोड़कर विद्व किया। हे अनघ! शास्त्रमें पण्डित कुन्तीपुत्र इस प्रकारसे धनुर्व्विद्यामें असि चलानेमें और गदा फेरनेमें नाना योग्यता दिखाने लगे। हे भारत! वह कृत्रिम युद्ध अन्त होने पर था और लोगोंका कोलाहल और बाजोंकी ध्वनि घट गयी थी, कि ऐसे समयमें द्वारदेशसे उठती हुई शूरता और वीरतासूचक वज्रके गर्ज्जन समाय ललकार सुनी गयी। हे नरनाथ! सब अखाड़ेके लोग समझने लगे, कि हैं, यह क्या है! कदाचित् पहाड़ोंकी पांति टूट रही है! वा धरती फटी जाती है! अथवा घने जलभरे बादल समूह आकाशमें छा रहे हैं! दर्शकसब ऐसेही सन्देहसे उसक्षण द्वारकी ओर मुह फेरके देखने लगे। तब पञ्च ताराके समान हस्त नक्षत्रयुक्त चंद्रमाकी भांति आचार्य्यद्रोण युधिष्ठिर आदि पांच भाइयोंके बीच सुहाने लगे। शत्रुनाशी दुर्य्योधनके उठ खड़े होनेसर उनके उत्साही सौ भाई अश्वत्थामाके साथ

उनको घेर कर खड़े हुए। पूर्व्वकालमें दानवोंको नष्ट करनेके लिये जिस प्रकार देवराज देवोंसे घेरे गये थे, वैसेही उस कालमें केवल गदाधारी दुर्य्योधन अस्त्र-शस्त्रोंसे सुशोभित भाईयोंसे घेरे जाकर शोभा पाने लगे।

सम्भवपर्व्वमें एकसौ छत्तीस अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर देखनेवालोंके विस्मय और प्रसन्न नेत्रोंसे प्रवेशका स्थान देनेपर शत्रुओंके नगरको जय करनेवाले कर्ण बड़े भारी अखाड़ेमें प्रविष्ट हुए। जो सङ्गमें बन्धे हुए कवचको पहिरे थे; जिनका मुख स्वाभाविक कुण्डलोंसे सुशोभित था, जिन्होंने बड़े प्रकाशयुक्त भास्करके अंशसे पृथाके कन्याकालिक गर्भसे जन्म लिया था; जिनका वीर्य्य और पराक्रम सिंह और गजेन्द्र समान है; जिनकी प्रभा सूर्य्यके समान चन्द्रमाकी भांति और तेज अग्नि सदृश है; जो सुवर्णके ताड़के समान लम्बे हैं, उस सूर्य्यकुमार अति गुणवन्त सिंह सदृश शरीरधारी; विशालनेत्र, शत्रुकुलनाशी युवा श्रीमान् महाभुज कर्णने खड्ग बांधकर धनुषबाण लेकर चलते हुए पर्व्वतकी भांति अखाड़ेमें घुस करके चारों ओर आंखे दौड़ा कर आचार्य्य द्रोण और कृपको मानो अनादरसे प्रणाम किया। तब अखाड़े भरके सब लोग यह जाननेके लिये, कि यह कौन है, चुपहो और टकटकी लगाकर अप्रसन्न और आश्चर्य्ययुक्त हुए। सूर्य्यपुत्र सुन्दर बोलनेवाले कर्णने इन्द्रपुत्र अर्ज्जुनको सगा भाई करके न जानकर बादल सदृश गम्भीर शब्दसे उनसे कहा, कि हे पार्थ! तुमने जो कार्य्य किया है, मैं देखनेवालोंके सामने उससेभी विशेष कार्य्य करूंगा, सो तुम अपने कामको आश्चर्य्य करके मत जानना। हे बोलनेवालोंमें श्रेष्ठ जन! सूर्य्यपुत्रकी इस बातके पूरी होते न होतेही सब मानों यन्त्रसे उठाये जाने की भांति उसी समय निज निज स्थानमें जा बैठे। हे मानव श्रेष्ठ! तब दुर्य्योधनके हृदयमें प्रीति प्राप्त हुई और अर्ज्जुनका चित्त क्रोध और लज्जासे अधीर हुआ। उसके अनन्तर पार्थने उस अखाड़ेमें जो जो कर्म्म किया था, सदा युद्ध चाहनेवाले महाबली कर्णने द्रोणकी आज्ञासे वह सब कर दिखाया। हे भारत! अनन्तर दुर्य्योधन भाईयोंके साथ कर्णको गले लगाकर बोले, कि हे महाभुज! आप भले आये हैं, हे मान देनेवाले! मेरे सौभाग्यसे आप आये हैं; अब मैं आपका अधीन हूं, आप इस कुरु-राज्यको मनमाने भोगिये। कर्ण बोले, कि मुझे और किसी बातकी आवश्यकता नहीं है, केवल मित्रताका प्रार्थी हूं, और पार्थसे एकबार द्वन्द्व युद्ध किया चाहता हूं। दुर्य्योधन बोले, कि हे शत्रुनाशि! आप मेरे साथ नाना भोगकी वस्तु भोगते रहिये और बन्धुओंके मङ्गलेच्छुक होकर सम्पूर्ण शत्रुओंको दबाइये।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर पार्थ अपनेको अपमानितसा जानकर भाइयोंमें पर्व्वत समान खड़े होकर कर्णसे बोले, कि कर्ण! जो बिना बुलाये निकट आते हैं और न बुलाये जाकर अहितकी इच्छा करते हैं, उनकी जो गति होती है, मुझसे प्राणखोकर तुम उसको प्राप्त करोगे। कर्ण बोले, कि अर्ज्जुन! यह अखाड़ा सबके लिये समान है, सो मेरे आनेसे तुम्हारी क्या हानि हुई? क्षत्रियलोग बलहीसे प्रधान होते हैं, सो क्षत्रियोंका धर्म्म बलहीकी शरण लेता है; हे भारत दुर्बलकी चेष्टाकी नाई लाञ्छनकी क्या आवश्यकता है? जब तक इन गुरुके सम्मुख चोखे बाणसे तुम्हारा सिर नहीं काटता हूं, तबतक जो कुछ कहना हो, बाणहीसे प्रगट करो।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, अनन्तर शत्रुनगरको जीतनेवाले धनञ्जय द्रोणाचार्य्यकी आज्ञा पाकर

और भाइयोंके गलेसे लगकर युद्धके लिये कर्णके सामने गये। इधर कर्ण दुर्य्योधन और उनके भाइयोंसे मिलकर वाणसहित शरासन लेकरके युद्धके लिये खड़े रहे। इसमें इन्द्र धनुसे सोहते हुए, बिजली तथा गर्ज्जनसे भरे और बगुलोंसे मानो हंसते हुए बादलदलसे आकाशमण्डल ढंप गया। अनन्तर इन्द्रको निजपुत्र अर्ज्जुनपर स्नेहवश अखाड़ेकी ओर ताकते देख कर सूर्य्यने अपने पुत्र कर्णके निकटके जलधरनेवाले बादलोंको नष्ट किया। तब अर्ज्जुन मेघकी छांहसे ढंपे और कर्ण सूर्य्यके किरणोंसे घिरे दीख पड़ने लगे। जिधर कर्ण थे, उधर धृतराष्ट्रके पुत्र और जिधर अर्ज्जुन थे; उधर द्रोण, कृप और भीष्म खड़े रहे। अखाड़ा दो भागोंमें बंट गया और स्त्रियांभी दोदल हो गयीं। कुन्ती-भोजकन्या अपने पुत्र कर्ण और अर्ज्जुनका युद्धमें प्रवृत्त होना जानकर मोहसे विवश हुई। सर्व्व धर्म्मज्ञ विदुरने दासियोंको सहायतासे चन्दनके जलसे उस मूर्च्छित हुई, कुन्तीको चेतनयुक्त किया। कुन्ती चेत पाकर युद्धके लिये सजे हुए दोनों पुत्रोंको देखकर भयभीत बनी रही, कुछ कर नहीं सकी। अनन्तर सर्व्व धर्म्म जाननेवाले, विशेष द्वन्द्वयुद्धकी रीतिको भले प्रकार जानते हुए शारद्वत उन दोनों बीरोंको बड़े बड़े शरासन उठाते देखकर कर्णसे बोले, कि यह अर्ज्जुन कुरुवंशी राजा पाण्डुके पुत्र हैं, कुन्तीके तीसरे गर्भसे जन्म लिया है, यह तुमसे द्वन्द्वयुद्ध करेंगे हे महाभुज! तुमभी जिस राज-वंशके अलङ्कार बने हो, उस कुलका वृतान्त और पिता माताके नाम कहो, उसके जान लेनेसे पार्थ यह निश्चय करेंगे, कि तुमसे लड़ेंगे वा नहीं, क्योंकि राजकुमारगण छोटे कुलसे जन्म लिये हुए, सदाचार वर्ज्जित जनोंसे द्वन्द्वयुद्ध नहीं करते।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि आचार्य्य कृपके इस प्रकार कहनेपर कर्णका मुंह लज्जासे नीचा होकर वर्षाजलसे धोये हुए पद्मकी नाई मलिन हो गया। तब दुर्य्योधन बोले, कि हे आचार्य्य! शास्त्रोंमें यह निश्चय है, कि राजकुलमें जन्म लिये हुए, शूर और सेनापति यह तीन भूपाल हो सकते हैं, सो यदि अर्ज्जुन भूपालके विना किसो अन्यसे न लड़ना चाहें, तो मैं अभी इन कर्णको अङ्गराज्यमें अभिषिक्त करे देता हूं।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर महाबलवन्त महारथी श्रीमान् कर्ण उसीक्षण सुवर्ण पीढ़ेपर स्थित होकर मन्त्रज्ञ ब्राह्मणोंके द्वारा-लाज, फूल और सुवर्ण-घटसे अङ्ग-राज्यमें अभिषिक्त हुए। महाराज! अनन्तर कर्ण जयके शब्दके साथ अच्छे छत्र और चंवरयुक्त होकर कुरु-नन्दन दुर्य्योधनसे बोले, कि हे राजाओंमें व्याघ्र समान महाराज! आपने जो मुझको राज्य दिया, कहिये, मैं आपको इसके योग्य क्या दूं! आप जैसा कहेंगे, मै वैसाही करनेको सम्मत हूं। सुयोधन बोले, कि मैं आपसे अच्छी मित्रताको प्रार्थना करता हूं, ऐसा कहे जाकर कर्णने प्रतिज्ञाके साथ उसको मान लिया और दोनों हर्षसे एक दूसरेको गले लगाकर बड़े प्रसन्न हुए।

सम्भवपर्व्वमें एकसो सैंतीस अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर कांपता, पसीनेसे न्हाया, बूढ़ा अधिरथ लाठी थामकर लटकते हुए चादरसे कर्णको बुलाता हुआ अखाड़ेमें आन पहुंचा, कर्णने उसको देखतेही पितृगौरव वश धनुषवाणको छोड़कर अभिषेकके जलसे भिंगे हुए सिरसे प्रणाम किया। रथके सारथि अधिरथने सम्मानके साथ वस्त्रके अन्त भागसे अपने पावोंको ढांपकर राज्य पानेसे सफल मनोरथ कर्णको पुत्र कहके सम्भाषण किया और स्नेहसे चित्त गलजानेसे गले लगा करके अङ्गराज्यमें अभिषिक्त कर्णके